कारण पात्र

साधक दर्शन और योग-तांत्रिक साधना प्रसंग

अरुण कुमार शर्मा

कारण पात्र

अरुण कुमार शर्मा



ग्रंथ-सार

- तंत्र-मंत्र के नाम पर ढोंग और पाखण्ड करने वाले साधना-उपासना बतलाने वाले, उपदेश-प्रवचन दीक्षा आदि देने वाले और शोषण-व्यभिचार आदि करने वाले लोगों के लिए नर्क का भी फाटक बंद है। उनकी मृत्योपरान्त क्या गति होती है इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

- जो लोग तंत्र-मंत्र की थोड़ी सी सिद्धि प्राप्त कर उसका दुरुपयोग करते हैं। किसी को दुख-कष्ट पहुँचाते हैं: अत्याचार-व्यभिचार करते हैं, ऐसे तांत्रिकों का अन्तिम समय अति दारुण होता ही है और उनकी बड़ी दुगर्ति भी होती है मृत्यु के बाद और उनका जन्म भी अति घृणित योनि में होता है।

- परमात्मा का अर्थ है जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित है। परमात्मा सार अस्तित्व का सन्दर्भ है। परमात्मा अनुभव की वस्तु है, उसका अनुभव किया जा सकता है देखा नहीं जा सकता।







कारण पात्र

साधक दर्शन और सत्प्रसंग



अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज कुमार शर्मा





आस्था प्रकाशन

वाराणसी

- **पुस्तक**

  कारण पात्र

- **प्रकाशक**

  आस्था प्रकाशन

- प्रथम संस्करण

  सन् 2005 ई.

  द्वितीय संस्करण

  सन् 2009 ई.

  तृतीय संस्करण

  सन् 2011 ई.

- **मूल्य**- 200/-

  ISBN 978-81-906795-6-4

- **कार्यालय**

  आस्था प्रकाशन

  बी. 5/23 अवधगर्वी, हरिश्चन्द्र रोड

  वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

  दूरभाष : 05423297913

  मो. : 9336915807

अपने तीस वर्षों के आध्यात्मिक
शोध एवं अन्वेषण का
परिणाम

कारण पात्र

कर्मयोगी स्व. धर्म पत्नी
श्रीमती किरण शर्मा
की
स्मृति में

-अरुण कुमार शर्मा



अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जिनकी लेखनी पिछले पचास वर्षो से अनवरत गतिशील है।

अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे चिन्तक और विचारक का नाम है, जिन्होंने अपने गहन गम्भीर चिन्तन, मनन द्वारा भारतीय गुह्य विद्याओं और उनके आध्यात्मिक तत्वों के अन्तराल में प्रवेश कर उनके विषय में अपने मौलिक विचारों को व्यक्त किया है।

अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे सत्यान्वेषी व्यक्ति का नाम है, जिन्हें योग तंत्र में निहित रहस्यमय सत्यों से परिचित होने के लिए प्रच्छन्न, अप्रच्छन्न भाव से विचरण और निवास करने वाले सिद्ध, सन्त, महात्माओं और योगी–साधकों की खोज में सम्पूर्ण भारत की ही नहीं बल्कि हिमालय और तिब्बत के दुर्गम स्थानों की जीवनमरण दायिनी हिमयात्रा की है।

अरुण कुमार शर्मा एक ऐसे साहित्यकार का नाम है, जिन्होंने अपनी सशक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक कृतियों से संबंधित समकालीनों को सैकड़ों मील पीछे छोड़ दिया है। विलक्षण प्राञ्जल भाषा, मनोहारी शिल्प, आत्मग्राही सज्जा और आकर्षक प्रस्तुतिकरण उनकी कृतियों का विशेषण है।

हजारों पंक्तियों के बीच उनकी पंक्ति को पहचान लेना प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए सरल और सहज है और यही वह तथ्य है जो अरुण कुमार शर्मा को अरुण कुमार शर्मा बनाता है।

उनकी प्रसिद्ध कृति कारण पात्र को प्रकाशित कर आस्था प्रकाशन अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा है। परमात्मा से प्रार्थना है कि इस महान विचारक, तपस्वी, साधक और मनस्वी को दीर्घायु प्रदान करें।

—प्रकाशक

विषय सूची

द्वितीय पात्र

तृतीय पात्र

चतुर्थ पात्र

पंचम पात्र

●

दो शब्द

अध्यात्म विज्ञान, दर्शन और साहित्य से संबंधित विभिन्न विषयों के लेखक तथा तत्व द्रष्टा के रूप में पं. अरुण कुमार शर्मा सर्वत्र ख्यात हैं, इसमें सन्देह नहीं, सौभाग्य से वे हमारे आपके बीच वर्तमान में है।

लगभग पचास वर्षों से अब तक श्री शर्मा जी की लेखनी अनवरत गति से चल रही है। इस दीर्घ अवधि में योग, तंत्र, दर्शन, ज्योतिष के अतिरिक्त अध्यात्म के गूढ़ और रहस्यमय विषयों से संबंधित सैकड़ों की संख्या में लेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार तद् विषयों पर कथा शैली के रूप में भी न जाने कितनी रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में अब तक। लेकिन श्री शर्मा जी ने स्वतंत्र रूप से किसी विषय पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। इसकी पृष्ठभूमि में क्या कारण था यह तो वही जान समझ सकते हैं। मेरा विचार था कि उनके साहित्य का संकलन पुस्तक रूप में प्रकाशित हो, ताकि श्री शर्मा जी के शास्त्रानुशीलन कठोर साधना के अनुभवों साधना के गूढ़ गोपनीय रहस्यों तथा दर्शन के सूक्ष्म तत्वों के अतिरिक्त उनके सुचिन्तित एवं अनुभव सिद्ध निष्कर्षो को एक स्थान पर प्राप्त कर जिज्ञासुओं को अध्यात्म जीवन में अग्रसर होने के लिए नवीन दृष्टि उपलब्ध हो सके, और जब अपने इस उद्देश्य को श्री शर्माजी के सम्मुख रखा तो उनको मेरा तर्क रूचिकर प्रतीत हुआ, यह

तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु मेरे अनुरोध को उनके स्नेह और आशीर्वाद का सहारा अवश्य प्राप्त हो गया।

श्री शर्माजी के लेखो और रचनाओं को एकत्र और संकलित करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अत्यन्त दुःसाध्य कार्य था, लेकिन दत्त चित्त होकर इस कार्य में जुट गया मैं। इस कार्य में श्रीमती रेखा शर्मा, सुश्री नीतू शुक्ला, श्री मंगला प्रसाद दूबे आदि शुभचिन्तकों ने भरपूर सहयोग दिया, जिनका आभारी हूँ मैं। पूरे तीन वर्ष का समय लगा संकलन कार्य में। तत्पश्चात संकलित विषयों के आधार पर पुस्तकों के सोलह शीर्षक बनाए गये और उन शीर्षकों के लिए सोलह कलश भर लिए गये श्री शर्माजी के अथाह ज्ञानसागर से। आध्यात्मिक जगत में षोडश कला पूर्णावस्था का द्योतक मानी जाती है। किन्तु फिर भी श्री शर्माजी के अथाह ज्ञान सागर के सोलह बूंद ही समझे जायेंगे वे सोलह कलश। और उन्ही सोलह कलश में से एक कलश को मैंने शीर्षक दिया है 'कारणपात्र'। तांत्रिक भाषा में मदिरा को कारण कहते है। प्रस्तुत पुस्तक में जिन साधकों का उल्लेख है उनके द्वारा मदिरा का उपयोग साधना की दृष्टि से अधिक किया गया है इसलिए पुस्तक का शीर्षक कारण पात्र रखना उचित प्रतीत हुआ मुझे।

श्री शर्माजी की अन्य पुस्तकों की तरह कारण पात्र भी उपादेय और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा ऐसी आशा है।

विनीत

मनोज शर्मा

अपनी बात

इस समय व्यापक अश्रद्धा का युग है। आश्चर्य और दुःख का विषय तो यह है कि भारत जैसे धर्म प्राण देश में भी यही अवस्था है। जीवन पहले जैसा सरल और सहज नहीं रह गया है। आधुनिक विज्ञान ने और बदले हुए आर्थिक पर्यावरण ने नयी–नयी समस्यायें खड़ी कर दी हैं। सामाजिक जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं बचा है, जिसके सामने कई जटिल प्रश्न चिन्ह खड़े न हों। वैयक्तिक और सामूहिक जीवन का आधार एक बारगी हिल उठा है। सर्वत्र शंका, भ्रम, अविश्वास और अश्रद्धा का घनीभूत है वातावरण।

ऐसी विषम परिस्थिति में प्रबुद्ध लोगो का ध्यान अपनी प्राचीन संस्कृति और आध्यात्मिक साधनाओं के स्वरूप के अनुसंधान के प्रति सचेत और आकृष्ट हो रहा है और इसके अतिरिक्त बहुत समय से उपेक्षित तथा तिमिराच्छन्न विषयों में भी अधिकाधिक रूचि लेने लगे हैं वे लोग। यह आनन्दप्रद लक्षण है। कहने की आवश्यकता नहीं योग और तंत्र भी उन्हीं उपेक्षित विषयों में है। योग और तंत्र एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे पर पूर्ण आश्रित हैं। जहाँ तक योग का प्रश्न है उसका अब प्रवेश पश्चिमी देशों में भी हो चुका है। उसके पैर जमने लगे हैं वहाँ शनैः शनैः। पश्चिम के जिज्ञासु विशेष रूप से रूचि लेने लगे हैं योग और उसके विभिन्न अंगो में। इतना ही नहीं योग से संबंधित

साहित्य का अध्ययन भी बड़े ही मनोयोग से हो रहा है पश्चिमी देशो में। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पश्चिमी देश पूर्ण भौतिक वादी है और उसकी भौतिक उन्नति के समक्ष सम्पूर्ण विश्व नतमस्तक है। लेकिन अब वह स्थिति क्रमशः क्षीण होती चली जा रही है। भौतिकता से ऊब चुका है पश्चिम। पहले जैसा आकर्षण और मोह नहीं रह गया है भौतिकता के प्रति पश्चिमी लोगो के मन में। भयानक, घातक और सर्वनाशक परमाणु शक्ति से खेलने वाला पश्चिमी देश अपने उस भयंकर खेल के कुप्रभावों तथा दुष्परिणामों से सम्भवतः भली–भांति हो चुका है परिचित। अब वह त्राण चाहता है और वह त्राण अध्यात्म की शरण में जाने पर ही प्राप्त हो सकता है उसे। इस सत्य से भी वह पूर्ण रूप से परिचित हो चुका है इसमें सन्देह नहीं।

लगभग तीन चार दशक के अन्तर्गत पश्चिम में योग का भारी प्रचार और प्रसार हुआ है भारतीय योगियों के द्वारा किन्तु उसे अध्यात्मिक दृष्टि से सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। योग के रहस्यमय और गूढ़तम तत्वों से अभी भी अपरिचित है पश्चिम के लोग। जिसके फलस्वरूप उनके सामने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन–मरण की समस्याएं पूर्ववत बनी हुई है। उन समस्याओं का सामना हमको भी करना पड़ेगा कभी न कभी भविष्य में। इस संबंध में हमने कभी भी गहरायी से नही सोचा। हमको तो यह प्रतीत होता है कि जिन विपत्तियों की कल्पना पश्चिम में की जा रही है, वे विपत्तियाँ अभी हमसे बहुत दूर हैं। यह हमारी अदूरदर्शिता है। बुद्धिमानी तो इसी में है कि उस अनागत और अवश्यम्भावी दिन के लिए अभी से हम सोचें समझें और करें तैयारी।

यह पश्चिम की बुद्धिमानी है कि वह यह समझता है कि मानव समाज के त्राण, कल्याण और मानव बुद्धि की परिशुद्धि योग द्वारा ही सम्भव है और उसके शरण में जाने से मनुष्य उस व्यापक आत्महत्या से बच सकेगा, जिसकी ओर वह इस समय तीव्र गति से अग्रसर हो

रहा है। अपनी भौतिक उन्नति की चकाचौंध में उसे मार्ग स्पष्ट दिखायी नहीं दे रहा है और जो कुछ दिखायी दे रहा है—उससे घबराते हुए भी अपने थरथराते, कांपते कदमों को रोक पाने में हो रहा है असमर्थ।

विचार करने योग्य बात यह है कि भारत यदि अपनी पुरानी विधि का आदर करना और उसका उपयोग करना सीख ले तो सम्पूर्ण जगत का कल्याण और हित हो सकता है इसमें सन्देह नहीं।

इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि योग जिस सत्य का साक्षी है उसके प्रति पश्चिमी जिज्ञासुओं के पग सदैव बाह्य जगत की ओर ही उठे हुए होते हैं। परन्तु हिन्दू पिपासु सत्य की खोज स्वयं अपने भीतर करता है। वह इस मार्ग पर पिछले चार हजार वर्षो से चलता आ रहा है उसकी इस लम्बी यात्रा ने प्रारम्भ में ही यह बतला दिया है कि बाहर और भीतर द्रष्टा और दृश्य का भेद एक विशेष दृग बिन्दु पर लुप्त हो जाता है। पश्चिम के जिज्ञासुओं को बड़ी कठिनाई से उसी प्रारम्भिक सत्य का थोड़ा बहुत आभास होने लगा है अब।

जीवन मुक्त योगी के लिए मानव जीवन का और मानव सत्ता का जो शाश्वत बिन्दु है—वही सत्य है। इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ प्रतीत होता है और जो कुछ होता है अनुभव अथवा बुद्धि में जो विचार उठते हैं, वे सब सत्य नहीं है। उस स्तर पर सभी विशेषणों का अतिक्रमण हो जाता है। तर्क के द्वारा उस सत्य को कोई नाम देना व्यर्थ का प्रयास है। उसका नाम हो ही नहीं सकता, अनाम है वह। वास्तव में वह सत्य क्या है? उसका ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व मनुष्य को बहुत कुछ भूलना पड़ेगा। अपने ज्ञान और विवेक के स्तर पर उसको इस बात का पता चलेगा कि उसने बहुत से झूठे तादात्म्य स्थापित कर लिए थे। बहुत सी सांसारिक वस्तुओं को अपना समझ लिया था, जिनसे उसका कोई संबंध नहीं है।

यह कहना असंगत न होगा कि आज भारतीय दर्शन का धीरे—धीरे

हर जगह प्रवेश हो रहा है। अब उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सम्भव है जब कि दर्शन के इतिहास में हम प्लेटो और अरस्तु के नामों के साथ शंकर और नागार्जुन का और हीगेल के साथ अरविन्द का नाम लेने लगेंगे। तब उस अवस्था में यह संसार एकीकरण के लिए तैयार हो जायेगा। उस समय पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियाँ मिलकर मनुष्य की वैचारिक प्रगति का सम्मिलित इतिहास बन जायेगी और इतिहास मनुष्य का बन जायेगा जीवन चरित्र। योग ज्ञान का ऐसा भण्डार है जो अमर है और है स्वाभाविक। जो मनुष्य का अज्ञात के साथ तादात्म्य स्थापित करा देता है। वास्तव में वही तादात्म्य साक्षात्कार भी है और है मोक्ष भी। योग समस्त धर्मो का स्रोत है। वह मनुष्य का विज्ञान है। वह सार्वभौम है। योग का सबसे बड़ा उद्देश्य है—व्यष्टिगत चेतना से ऊपर उठ जाना।

जैसा कि अपनी बात के प्रारम्भ में मैने कहा कि योग—तंत्र भिन्न—भिन्न नहीं है बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। वैसे तंत्र के विषय में मैंने अपनी अन्य पुस्तकों में यत्र—तत्र प्रसंगवश थोड़ा बहुत लिखा है। यहाँ भी आवश्यक समझ कर तंत्र पर संक्षिप्त में प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ मैं।

भारत के आध्यात्मिक विचारों को तीन मुख्य धाराओं में विभक्त किया गया है। पहली धारा है निगम जो वेद मूलक है। इस धारा के अनुयायी वेद को अन्तिम प्रमाण मानते हैं। दूसरी धारा है—बौद्ध, जो भगवान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। तीसरी जैन धारा है। जिसके प्रवर्तक महावीर और उनके पूर्ववर्ती तीर्थकर हैं।

परन्तु इस देश के अध्यात्म प्राण, साधक, विचारक और मनीषी इन तीनों धाराओं पर आश्रित नहीं रहे। समय—समय पर आध्यात्मिक क्रान्ति होती रही। जिसके परिणाम स्वरूप कई उपधाराएं निकली। जिनमे महत्वपूर्ण उपधारा थी तंत्रधारा। कालान्तर में सभी उपधारायें उसमें

समाहित हो गयी। तंत्र के दो सहज भेद हैं—आगम और बौद्ध। तंत्र का जो रूप वैदिक समाज के बीच प्रस्फुटित हुआ उसे आगम कहते हैं। वेद निगम है और तंत्र है आगम। वर्तमान समय में तांत्रिक विचार और उपासना पद्धति प्रचलित हिन्दू धर्म में इतनी घुल—मिल गयी है कि जिसका विभाजन नहीं हो सकता। नित्य, नैमित्तिक, काम्य—सभी प्रकार के कर्म आगम—निगम के सम्मिलन से प्रवाहित गंगा जमुनी जल द्वारा प्रक्षालित हो रहे हैं। कभी तंत्र के भी कई भेद और उप भेद थे, किन्तु वर्तमान समय में उनमें से दो ही प्रौढ़ और पुष्ट रूप में उपलब्ध है—शैव और शाक्त। कभी वैष्णव तंत्र भी बहुत प्रबल था परन्तु अब वह भागवत धर्म के रूप में वैदिक सम्प्रदाय का अविछिन्न अंग बन चुका है। कहने की आवश्यकता नहीं तंत्र साहित्य का भण्डार अतिविशाल है और तंत्र से संबधित समस्त साहित्य प्रायः संस्कृत भाषा में है जो अपने आपमे क्लिष्ट और दुरुह है। और यही कारण है कि सर्वसाधारण लोग तंत्र के दार्शनिक पक्ष, उपासना पक्ष, साधना पक्ष और आध्यात्मिक पक्ष से वर्तमान समय में भी अपरिचित हैं। और अपरिचित होने के फलस्वरूप तंत्र का नाम लेते ही लोगों के हृदय में थर्रा देने वाली स्मृति जाग उठती है जो स्वाभाविक है। यहाँ यह बतला देना उचित है कि तांत्रिक साधना के दो रूप है—बहिरंग रूप और अन्तरंग रूप। अन्तरंग रूप पूर्णरूप से योगपरक और आध्यात्मिक है। बहिरंग रूप की तांत्रिक उपासना साधना में पंचमकार पशुबलि, नरबलि चक्रपूजा, भैरवीपूजा, चक्रार्चन आदि का विधान है। जिनके रहस्यों से सर्वथा अपरिचित होने के कारण लोगों में तंत्र और तांत्रिक साधना—उपासना के प्रति भ्रामक धारणा फैली हुई है। लोग उसे कुत्सित दृष्टि से भी देखते हैं। स्थानाभाव के कारण तंत्र के दार्शनिक, आध्यात्मिक विचार शैली और उपासना, साधना शैली का विवेचन करने में असमर्थ हूँ मैं। हाँ! इस प्रसंग में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तंत्र स्पष्ट रूप से द्विधा विभक्त

है। पहला विभाग चंचु मात्र डूबने वालों के लिए है जिसका संबंध तंत्र के बहिरंग रूप से समझना चाहिए। दूसरा विभाग अच्छे साधकों, मुमुक्षुओं और प्रज्ञावान के लिए हैं जिसका संबंध तंत्र के अन्तरंग रूप से समझना होगा। यह पथ योग से अभिन्न है। इसलिए तंत्र ग्रन्थों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, साधारण और समाधि भाषा में सीधे प्रतीकों के माध्यम से योग की चर्चा बड़े गाम्भीर्य और विस्तार के साथ है। तांत्रिक साधकों में कई प्रसिद्ध योगी हो चुके हैं। ऐसे लोगों की भी चर्चा उपलब्ध है जो सिद्धान्ततः वैदिक होते हुए भी तंत्र सम्मत उपासना शैली के अनुयायी थे। शंकराचार्य इसके उदाहरण हैं और उनकी सौन्दर्यलहरी, इसका है प्रमाण। इस अपूर्व ग्रन्थ में योग और मंत्र, यंत्र का अवर्णनीय संगम है इसमें सन्देह नहीं।

अपनी बात के अन्तिम चरण में अपने पाठकों को यह बतलाना आवश्यक समझता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही साधक और साधिकाओं का विवरण है जिनकी तंत्र साधना पूर्ण रूप से योगपरक थी। उनसे संबंधित जिन तमाम घटनाओं का उल्लेख मैंने पुस्तक में किया है निस्सन्देह वे पाठकों को अविश्वसनीय और असम्भव सी प्रतीत होगी। सम्भवतः पाठकगण यही सोचेंगे कि मैने उनके समक्ष कारण पात्र के रूप में कल्पनाओं का आश्रय लेकर रहस्यपूर्ण कथाओं का ही एक आधुनिक नमूना किया है प्रस्तुत। लेकिन पाठकों को यह बात हृदयंगम कर लेना चाहिए कि अपने पचास वर्ष के लेखन यात्रा काल में अद्भुत सनसनीखेज और अविश्वसनीय सी प्रतीत होने वाली घटनाओं का कथा के रूप में वर्णन करके पाठकों के मन में कौतूहल की सृष्टि करने के सस्ते उद्देश्य से लेखनी नहीं उठाई मैंने कभी। इस प्रसंग में यह भी जान लेना आवश्यक है कि अपने जीवन काल में अब तक लोक सम्पर्क से सर्वथा अप्रभावित ही रहने का प्रयत्न किया है मैंने। संसार समाज और परिवार इन तीनों के प्रति किसी भी प्रकार का आकर्षण अथवा

मोह नहीं है मेरे मन में। जहाँ घोर निराशावादी हूँ वही दूसरी ओर अध्यात्म के प्रति पूर्ण आशावादी हूँ मैं। पारलौकिक जीवन और जगत लोक–लोकान्तर जन्म–मृत्यु, पुनर्जन्म, सिद्ध–साधक, और सन्त–महात्मा आदि उसी आशावादिता के कारण मेरे चिन्तन–मनन एवं अध्ययन के विषय रहे हैं सदैव से।

कभी कदा सोचता हूँ–एकान्त के क्षणों में इस आशावादिता के कारण मेरे जीवन में क्या से क्या हो गया? भीतर कितना कुछ परिवर्तित हो गया इस दीर्घ अन्तराल में? सचमुच जीवन का प्रारम्भ जैसा होता है वैसा अन्त नहीं होता उसका। अन्त तो कुछ और ही होता है। लौकिक दृष्टि से असम्भव प्रतीत होने वाली अद्‌भुत और अविश्वसनीय घटनाओं से कितना भर दिया मेरे जीवन को इस आशावादिता ने। और उस आशावादिता के फलस्वरूप जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ और उस ज्ञान को कर्म में आयत्त करने पर जो मुझे अनुभव हुए कहने की आवश्यकता नहीं उन्हीं अनुभवों को शब्दों के रूप में प्रस्तुत किया है मैंने अपनी सभी पुस्तकों में। जिनमें कारणपात्र भी एक है।

जो लोग अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने की क्षमता रखते हैं वस्तुतः वही कवि, कलाकार और लेखक कहलाने के पात्र हैं और यह पात्रता मुझमें कितनी है, इसका निर्णय स्वयं पाठकगण करेंगे।

अध्यक्ष :
आगम निगम संस्थान
बी. 5/23 अवधगर्वी, हरिश्चन्द्र रोड,
वाराणसी – 221001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 2277093

शुभाकांक्षी
अरुण कुमार शर्मा

प्रारम्भ में

सन् १९४८ ई. से १९७८ ई. की काल सीमा के अन्तर्गत योग–तंत्र से संबंधित अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करने के उद्‌देश्य से जिन प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न सिद्ध साधकों, महात्माओं और योगियों से मेरा सत्संग लाभ हुआ और सत्संग के क्रम में जो गुह्य ज्ञान उपलब्ध हुआ जो अलौकिक अनुभव हुए और साथ ही जो अवर्णनीय परानुभूति हुई मुझे। निश्चय ही वह अतिमहत्वपूर्ण आध्यात्मिक सम्पत्ति समझी जायेगी इसमें सन्देह नहीं। उन्ही सबका परिणाम है 'कारण पात्र'।

भारतीय आध्यात्म का मुख्य विषय है योग और तंत्र। इस विश्व ब्रह्माण्ड में दो सत्ताएं है – आत्मपरक सत्ता और वस्तुपरक सत्ता। पहली सत्ता आन्तरिक है और दूसरी सत्ता बाह्य हैं।

आत्मपरक सत्ता का संबंध आन्तरजगत से है और जिसका विषय है आत्मा। इसी प्रकार वस्तुपरक सत्ता का संबंध है बहिर्जगत से यानी भौतिक जगत से और जिसका विषय है मन।

आत्मा और मन। दो सत्ताओं की तरह इस विश्व ब्रह्माण्ड में एक मूलतत्व भी हैं जिसे आध्यात्मिक भाषा में परमतत्व भी कहते हैं। और उस परमतत्व के दो रूप हैं – आत्मा और मन। लेकिन दोनों का स्वभाव भिन्न–भिन्न है। आत्मा स्थिर है। स्थिरता और साक्षीभाव उसका गुण है जबकि मन है अस्थिर। अस्थिरता और चंचलता उसका गुण है।

योग–तंत्र के अनुसार अनुभूति आत्मा में होती है। भाव आत्मा में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार विचार, अभिलाषा, कामना, इच्छा आदि मन में उत्पन्न होता हैं। इन सभी का नाता–रिश्ता बहिर्जगत से यानी भौतिक जगत से है।

आन्तरजगत में आत्मा में हुई अनुभूति को हम प्रमाणित नहीं कर सकते, क्योंकि वह अनुभूति स्वयं प्रमाण है। जैसे हम स्वप्न में राजा बन गये हैं। क्या हम बहिर्जगत में जागने पर अपने आपको राजा बनने का कोई प्रमाण दे सकते हैं? कभी नहीं। लेकिन बहिर्जगत में हुई किसी घटना का हम प्रमाण दे सकते हैं। और दे सकते हैं साक्ष भी। जैसे हमारे पास रूपया है, उसे दिखा सकते हैं। उसके लिए प्रमाण भी है और साक्षी भी है। यही आत्मपरक सत्ता और वस्तुपरक सत्ता में अन्तर हैं।

योग–तंत्र और उसकी यावत् साधनाओं की मूलभित्ति उपर्युक्त तथ्यों को ही समझना चाहिए।

तांत्रिक साधना के दो प्रकार है—पहले प्रकार की साधना आन्तर साधना है और दूसरे प्रकार की साधना है बाह्य साधना। आन्तर साधना पूर्ण रूप से योगपरक हैं जबकि बाह्य साधना योग पर आधारित बाह्य क्रियाओं पर है आधारित ! तंत्र में इसी को आन्तर्याग और बहिर्याग कहते हैं। आन्तरर्याग का संबंध आत्मपरक सत्ता से है जबकि बहिर्याग का है संबंध वस्तुपरक सत्ता से। यह तो सत्य है कि बहिर्याग की यावत् साधनाएं सम्पन्न होने पर ही आन्तर्याग की साधना भूमि में प्रवेश सम्भव है अन्यथा नही। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो बहिर्याग का साधना मार्ग अत्यन्त कठिन है अतिगहन है और अतिभाव प्रधान है। वस्तु परक सत्ता से संबंधित होने के कारण उसकी साधना भूमि में उन भौतिक वस्तुओं पदार्थो और क्रिया–कलापों का आश्रय लिया जाता है जो साधक के मन, प्राण और चित्त को अस्थिर व चंचल करने वाली होती है और

सिद्ध होती है आत्मा में आकर्षण और मोह उत्पन्न करने वाली। जिसके फलस्वरूप साधक को पथभ्रष्ट और साधनाच्युत होने का बराबर भय बना रहता है। जरा सी भी भूल–चूक आकाश से धरती पर गिरा देता है एक क्षण में साधक को। जरा सी भी असावधानी साधक को न इधर की रहने देती है और न तो उधर की। न संसार का रह जाता है न समाज का और न तो परिवार का ही। साकार नर्क बन जाता है वह अपने लिए। और यही कारण है कि बहिर्भूमि साधना मार्ग में इष्ट और गुरू का होना अतिआवश्यक हैं। इष्ट रक्षा करता है और गुरु करता है मार्ग दर्शन। यह कहना अनुचित न होगा कि इष्ट और गुरु दोनों अपने–अपने स्थान पर अपना महत्व और गरिमा रखते हैं। अनेक जन्मों के शुभ संस्कारों के उदय होने पर इष्ट की उपलब्धि होती है और इसी प्रकार अनेक जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप सद्गुरू का दर्शन लाभ होता है और साथ में योग्यता होनी चाहिए तभी तंत्र साधना मार्ग पर व्यक्ति चल सकता है अन्यथा नहीं। यदि योग्यता नहीं है तो तांत्रिक साधना में न आत्मिक रूचि ही उत्पन्न हो सकती है और न तो आत्मा में जिज्ञासा का ही उदय हो सकता है।

ज्ञात होना चाहिए कि जैसे योग का संबंध वैश्वानर लोक से है उसी प्रकार तंत्र का संबंध यक्ष लोक से है। यक्ष लोक दो भागों में विभक्त हैं। पहले भाग के अधिष्ठाता स्वयं भगवान शंकर अथवा सदाशिव है। दूसरे भाग के अधिष्ठाता अष्ट भैरव हैं जो भगवान शंकर के एक विशिष्ट रूप है। अष्ट भैरव का ही दूसरा नाम अष्ट वसु हैं। यक्ष लोक के दूसरे भाग की आठो दिशाओं में एक–एक भैरव निवास करते हैं।

साधकों को तीन श्रेणियाँ हैं–उत्तम, मध्यम और अधम। वर्तमान अवस्था में उत्तम साधकों के दर्शन दुर्लभ हैं। वे हमारे सबके बीच हैं भी तो पूर्णतया प्रच्छन्न भाव से। उनको समझना, उनको पहचानना और उनसे लाभान्वित होना अतिजटिल एवं दुरूह कार्य है।

उत्तम साधक के लिए जगत निरपेक्ष है और जगत उनके लिए निरपेक्ष है। दोनों के बीच किसी भी प्रकार का मोहजन्य अथवा आकर्षणीय संबंध नही रहता। उनकी साधना स्वयं की आत्मशक्ति की साधना होती है। तंत्र में आत्मशक्ति को ही पराशक्ति की संज्ञा दी गयी है। इसी प्रकार परमात्मशक्ति को दी गयी है संज्ञा परमाशक्ति की। इसी को आद्याशक्ति भी कहते हैं। यह शक्ति अपने आपमें एक है जबकि पराशक्ति त्रिगुणात्मिका है।

उत्तम साधकों की साधना पूर्ण रूपेण आन्तर्याग की योगपरक साधना है। जो तंत्र से प्रारम्भ होकर योग की चरमावस्था में विलीन हो जाती है। योग में इस साधना मार्ग को विहंगम मार्ग कहते हैं। इस मार्ग के साधको का एक मात्र लक्ष्य होता है। प्रथम पराशक्ति का साक्षात्कार तदन्तर परमाशक्ति में विलीनीकरण। तंत्र में इसी अवस्था को कहते हैं सामरस्य महामिलन, साक्षात्कार आज्ञाचक्र में होता है और सामरस्य महामिलन होता है सहस्त्रार चक्र के मध्य बिन्दु में। इन दोनों उपलब्धियों के पूर्व साधकों को सर्वप्रथम जन्म–जन्मान्तर से चले आ रहे सद्‌गुरु का दर्शन लाभ होता है हृदय में सद्‌गुरु दर्शन देकर शिष्य के लिए आगे का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

ऐसे साधक शरीरोपरान्त सर्व प्रथम यक्षलोक के प्रथम भाग में प्रवेश कर भगवान शंकर अथवा भगवान सदाशिव का सान्निध्य लाभ करते हैं। समयानुसार भगवान सदाशिव के परम अनुग्रह प्राप्त होने पर सामरस्य अवस्था को उपलब्ध होते हैं। ऐसे ही साधकों को आध्यात्मिक भूमि में महासाधक और परमसाधक की संज्ञा गयी है। महासाधक की संसार समाज और परिवार में केवल मात्र उपस्थिति ही कल्याणकारी है। वहाँ आनन्द और परम शान्ति का वातावरण सदैव बना रहता हैं। वे प्रत्यक्ष में किसी भी प्रकार का कर्म न करते हुए भी अगोचर रूप में बहुत सारे

करते रहते हैं कर्म। योग में इसी को अकर्म अवस्था कहते है। यहाँ एक बात बतला देना आवश्यक है कि जो कर्म न करते हुए भी कर्म करता है वह योगी है। और जो कर्म करते हुए भी कर्म नहीं करता है वह सन्यासी है। योगी और सन्यासी में यही भेद है।

उत्तम श्रेणी और मध्यम श्रेणी के साधकों में थोड़ी बहुत भिन्नता अथवा अन्तर हैं। सर्वप्रथम यही कि उत्तम श्रेणी के साधकों की तरह मध्यम श्रेणी के साधक भी संसार के प्रति निरपेक्ष हैं और संसार भी उनके लिए निरपेक्ष है, लेकिन फिर भी उनमें अपने इष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण भाव होने के फलस्वरूप मानव जाति के प्रति उनकी अहैतुकी कृपा होती है। वे कर्म करते हुए भी कर्म नहीं करते। उनका प्रत्येक कर्म माँ महामाया का कर्म होता है। वे अपने आपको अपने इष्ट यानी महामाया के कर्म का माध्यम मात्र समझते हैं। और यही कारण है कि अपने प्रति अपने जीवन के प्रति और अपने कर्म के प्रति उनमें न कोई मोह होता है न आकर्षण होता है, और न तो होती ही है किसी भी प्रकार की आशक्ति। मध्यम श्रेणी की साधना भी लगभग वही है जो उत्तम श्रेणी के साधक की है। वे जहाँ और जिस स्थान पर होते हैं वहाँ का वातावरण सदैव शान्त और आनन्दमय रहता है। उनके निकट जाने पर एक विशेष प्रकार की आत्मानुभूति होती है। ऐसे साधक संसार में पाषाणवत रहते हैं। संसार उनके लिए महाश्मशान होता है और स्वयं संसार के लिए शववत् होते हैं वह। किन्तु जैसा कि मैंने कहा कि उनका संसार के प्रति और मानव जाति के प्रति करूणामयी दयामयी व कल्याणमयी भावना रहती है। स्वयं उनकी उपस्थिति ही उपकारमयी होती है।

मध्यम श्रेणी के साधक जब बहिर्याग से अन्तर्याग में प्रवेश करते हैं तो उस अवस्था में एक मात्र इष्ट ही रहता है रक्षक के रूप में और

सद्गुरू का स्थान ग्रहण करता है स्वयं की उसकी विशुद्धात्मा। अन्तर्याग की साधना पूर्ण होने पर साधक यक्षलोक के दूसरे भाग में प्रवेश करते हैं और अष्ट भैरव में जो विशिष्ट भैरव हैं जिनको तंत्र की भाषा में कपाल भैरव कहते हैं वह साधक की साधनाओं पर प्रकाश डालते हैं उनकी अपनी दृष्टि से समीक्षा करते हैं। उनकी लौकिक, पारलौकिक उपलब्धियों की चर्चा करते हैं और यदि भ्रमवश साधना में किसी भी प्रकार की त्रुटि रह गयी होती है तो उसको परिमार्जित करने का अवसर प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् समयानुसार सदाशिव का अनुग्रह प्राप्त होने पर साधक प्रथमभाग में प्रवेश करते हैं। जहाँ उनको शिव–शक्ति का एक साथ दर्शन लाभ उपलब्ध होता है। यहाँ एक साथ का तात्पर्य है उस अवस्था में शिव और शक्ति एक दूसरे से अभिन्न रहते हैं। शिव में शक्ति और शक्ति में शिव का अस्तित्व रहता है। शिव–शक्ति के उसी अभिन्न रूप में दर्शनोपरान्त साधक का अस्तित्व सदैव के लिए विलीन हो जाता है। इसी अवस्था को सामरस्य भाव अथवा सामरस्य महामिलन कहते हैं। दर्शन शास्त्रों में इसी परम अवस्था को कहते हैं महानिर्वाण, परमपद, परममुक्ति और मोक्ष।

अधम श्रेणी के साधक वे हैं जिन्हें योग शास्त्र और तंत्र शास्त्र का ज्ञान तो नहीं रहता लेकिन अपने आपको दोनों शास्त्रों का ज्ञाता और मर्मज्ञ अवश्य समझते हैं। यदि किसी वस्तु के ज्ञाता होते हैं तो मात्र कालीविद्या के। जिसको ब्लैकमैजिक कहते हैं। कालीविद्या एक प्रकार की तमोगुणी तांत्रिक विद्या ही है। जिसकी सहायता से व्यक्ति श्मशान को जागृत करता है जिसके फलस्वरूप श्मशान में विचरण करने वाली लावारिस प्रेतात्माएं लोभ के वशीभूत होकर व्यक्ति के अधिकार में आ जाती हैं। और लौंग, इलायची, मिठाई, फूल, इत्र आदि के माध्यम से व्यक्ति की इच्छा को कुछ समय के लिए साकार कर देती हैं।

कालीविद्या का ही एक अंग है छाया पुरुष सिद्धि। छाया पुरुष के विषय में संक्षिप्त में यहाँ बतला देना आवश्यक समझता हूँ मैं।

स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच वासना शरीर होता है जिसको प्रेत शरीर भी कहते हैं। प्रेत शरीर वासना के अणुओं से बना हुआ होता हैं। मृत्यु के बाद जब तक वासनाओं का वेग रहता है तब तक प्रेत शरीर का भी अस्तित्व रहता है। वासना क्षय होने पर प्रेत शरीर भी स्थूल शरीर की ही तरह मृत हो जाता है जिसे छोड़कर मृतात्मा सूक्ष्म शरीर स्वीकार कर लेती है। उसी मृत प्रेत शरीर को छाया शरीर की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार के छाया शरीर अधिक संख्या में सुनसान श्मशानों में पाये जाते हैं। छाया शरीर में भी सात्विक राजस और तामस होते हैं। तामस छाया शरीर तो श्मशान के अतिरिक्त सुनसान स्थान प्राचीन खण्डहरों और गन्दे स्थानों में ही पाये जाते हैं, लेकिन सात्विक और राजस्र छाया शरीर अन्तरिक्ष में बिखरे हुए रहते हैं और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में फंसकर पृथ्वी के साथ घूमते रहते हैं।

कभी–कभी जिन मृतात्माओं को किसी कारणवश सूक्ष्म शरीर उपलब्ध नही हुआ रहता वे शरीर के प्रति मोह के कारण अपने गुण और स्वभाव के अनुसार छाया शरीर को स्थूल शरीर समझ कर भ्रमवश उसमें प्रवेश कर जाती हैं। ऐसी ही भ्रमवश छाया शरीर में प्रविष्ट हुई मृतात्मा को छाया पुरुष कहते हैं।

विभिन्न तामसिक क्रियाओं द्वारा छाया पुरुष सिद्ध होने पर कुछ समय के लिए चमत्कारिक ढंग से कार्य करते हैं, लेकिन उन कार्यो में स्थायित्व नहीं होता। उनको अपने अधिकार में बराबर रखे रहने के लिए साधक को प्रायः नित्य श्मशान बलि देनी पड़ती है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि श्मशान साधना, प्रेत साधना, चिता साधना और छाया पुरुष साधना भयंकर तामसिक साधना है –

जिनका योग–तंत्र के वास्तविक स्वरूप से कुछ भी लेना देना नही है। इसीलिए इन साधनाओं को करने वाले साधक को अधम साधक कहा गया है। उनकी सिद्धियाँ अकल्याणकारी ही होती है। उनका स्वयं का अकल्याण तो होता ही है, साथ–साथ उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों का भी अकल्याण होता है, भले ही प्रारम्भ में थोड़ा लाभ हो। बस उस अल्पलाभ होने के कारण उन्हें जनसाधारण में थोड़ी बहुत ख्याति भी हो जाती है। जिसके फलस्वरूप उनको अपना आडम्बर और पाखण्ड फैलाने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो जाता है अपने आप। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि ऐसे साधकों को न योग का ज्ञान होता है और न तो तंत्र का ही। किन्तु वे दोनों शास्त्रों का मर्मज्ञ समझते हैं अपने आपको। जन साधारण को प्रभावित करने के लिए अपने चमत्कारों के बल पर भिन्न–भिन्न अवाञ्छनीय कार्य करते हैं। और अपनी वाक्पटुता से अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वास्तव में ऐसे ही लोगों के द्वारा संसार और समाज में योग–तंत्र के प्रति भ्रामक धारणा फैलती है और फैलता है भ्रष्टाचार भी। ऐसे अधम श्रेणी के साधकों की अन्तिम अवस्था अति नारकीय होती है। मृत्योपरान्त यक्षलोक के दूसरे भाग में प्रवेश करते हैं और तंत्र–मंत्र और उसकी साधना आदि के नाम पर किए गये असामाजिक कार्य भ्रष्टाचार पापाचार व्यभिचार और पाखण्ड आडम्बर आदि का दण्ड भैरवगण उन्हें देते हैं जिसको भैरव यातना कहते हैं भैरव यातना, यम यातना से भी अधिक भयंकर होती हैं। और जब यातना काल समाप्त हो जाता है तो उन्हें पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की पशु योनियों में जन्म लेने के लिए भेज दिया जाता है। समयानुसार पशु योनियों से मुक्त होने के पश्चात् प्रथम बार मानव योनि को वे उपलब्ध होते हैं। उनका जन्म अत्यन्त नीचकुल में होता है और वे अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते हैं।

यह हुई प्रारम्भ के अन्तर्गत योग–तंत्र और उनके साधकों की संक्षिप्त चर्चा। अपने शोध एवं अन्वेषण काल के प्रारम्भ में मुझे एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो मेरे लिए सद्गुरू का भी स्थान ग्रहण कर सकें। ऐसे महापुरुष का दर्शन निश्चय ही मेरे लिए अति दुर्लभ था। लेकिन प्रयासरत था मैं बराबर।

एक दिन सांझ के समय नित्य की भांति अहिल्याबाई घाट की सीढ़ियों पर मौन साधे बैठा था मैं। एकाएक मेरी दृष्टि सामने की ओर चली गयी। देखा एक वयोवृद्ध महात्मा खड़ाऊ पहने खट् खट् करते हुए सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की ओर आ रहे थे। शरीर पर गैरिक वस्त्र था। मुख पर तेज था। जटाजूटधारी थे, गले में रुद्राक्ष की माला और हाथ में कमण्डल। सिर उठाकर महात्मा ने मेरी ओर देखा। हे भगवान कितनी प्रखर थी उनकी दृष्टि, लगा जैसे आग के शोले हों। रोमाञ्चित हो उठा मैं एकबारगी। मेरे बिल्कुल सामने आकर खड़े हो गये वह, और मन्द स्वर में बोले – तुम्हारा मार्ग अति कण्टकाकीर्ण है, फिर थोड़ा रूक कर आगे बोले–आओ, चलो मेरे साथ। जैसे सम्मोहित सा हो गया था मैं। महात्मा आगे बढ़ गये। उनके पीछे–पीछे मैं भी मूकवत चलने लगा। किस रास्ते से और किधर से वे मुझे ले जा रहे थे अपने साथ इसका ज्ञान नहीं रहा मुझे उस समय। बस, मैं अनुशरण मात्र कर रहा था उस रहस्यमय महात्मा का। उन्होंने पतली सी गली में प्रवेश किया और एक टूटे–फूटे जर–जर मकान के सामने जाकर खड़े हो गये। मकान का दरवाजा खुला हुआ था। भीतर प्रवेश किया महात्मा ने, मैंने भी उनका अनुशरण किया। निश्चय ही उस रहस्यमय महात्मा की गोपनीय साधनास्थलि थी। उस जीर्ण–शीर्ण पुराने मकान के भीतर एक विचित्र सी शान्ति बिखरी हुई थी। एक छोटे से कमरे में महात्मा का आसन था। आसन के निकट एक चौमुखा दीप जल रहा था। जिसके

मन्दआलोक में सामने दीवार पर टंगे एक चित्र को देखा। चित्र शीशे के लम्बे–चौड़े फ्रेम में था। जो काफी पुराना हो जाने के कारण मटमैला हो गया था। लेकिन चित्र अभी भी साफ दिखाई दे रहा था। निश्चय ही वह किसी सिद्ध योगी का था।

महात्मा ने जमीन पर बिछी चटाई पर बैठने का संकेत करते हुए कहा – जिनका यह चित्र है, वह मेरे परम श्रद्धेय गुरु हैं। नाम है ब्रह्मानन्द। एक सौ चौदह वर्ष पूर्व उन्होंने मुझे इसी काशी में दीक्षा दी थी। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मेरे सामने आसन पर बैठे अर्धवृद्ध महात्मा की आयु एक सौ चौतीस वर्ष की है।

महात्मा का नाम ज्ञानानन्द था। उनका अपने साथ मुझे अपने स्थान पर इस प्रकार लाने का क्या प्रयोजन था? अभी तक समझ न सका था मैं। बड़ा ही अद्भुत और रहस्यमय व्यक्तित्व था महात्मा ज्ञानानन्द का इसमें सन्देह नहीं। उस दिन से प्रायः नित्य ही जाने लगा सायंकाल के समय महात्मा ज्ञानानन्द के निवास पर उनके प्रति कौन सा आकर्षण था। समझ में नहीं आ रहा था मुझे। सम्मोहित सा घंटो बैठा रहता था उनके सामने मौन साधे। आत्मा को विचित्र सी शान्ति की अनुभूति होती थी।

अब आगे का विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व ज्ञानानन्द कौन थे और उनके गुरु ब्रह्मानन्द कौन थे? यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ मैं।

यह तो सर्वविदित है कि काशी अतिप्राचीन काल से शिक्षा का प्रधान केन्द्र रहा है। जातको में काशी का शिक्षा–केन्द्र होने का उल्लेख मिलता है। और यह भी वर्णन मिलता है कि काशी में लोग तक्षशिला तथा नालन्दा से भी विद्याध्ययन के लिए आते रहे हैं। गुप्त युग में काशी

वैदिक शिक्षा का एक विशाल केन्द्र था। और काशी में गुरुओ के सन्निकट रहकर विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन करते थे। गाहड़वाल युग में काशी में शास्त्रों के पठन–पाठन का बड़ा उत्तम प्रबन्ध था। जहाँ गुरुजन छात्रों को केवल पढ़ाते ही नही थे वरन् भोजन वस्त्र का भी प्रबन्ध करते थे। इसके लिए उनको राज्य की ओर से सहायता भी प्राप्त होती थी। कालान्तर में काशी संस्कृत का एकमात्र केन्द्र बन गया क्योंकि सम्पूर्ण भारत से संस्कृत तथा विविध विद्या के विद्वान गुरुजन यहाँ आकर बसने लगे। धीरे–धीरे काशी शिक्षा का प्रधान केन्द्र बन गया। और यहाँ धातुवाद, रसवाद, तर्क, नाटक, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्विद्या तथा साहित्य कला, तथा संगीत की शिक्षा गुरुकुल पद्धति से दी जाने लगी।

काशी के गुरुओ के प्रिय विषयों में व्याकरण, भाष्य, न्याय मीमांसा, धर्मशास्त्र और वेदान्त था। गुरुकुल शिक्षा, प्रणाली में ब्राह्मणों का एक मात्र अधिकार था। काशी के ब्राह्मण ही गुरु हुआ करते थे बहुत से संस्कृत विद्वान ब्रजभाषा की कविता किया करते थे। इसके लिए उनकी काशी के राजघराने से अच्छी दान दक्षिणा मिलती थी। इस आमदनी को वे शिक्षादान में लगाते थे। इन कृतियों से काशी के पण्डितों एवं गुरुओं ने काशी का सम्पूर्ण भारतवर्ष में नाम रोशन किया।

जिन महान पण्डित एवं गुरु ने हिन्दु संस्कृति का प्रतिपादन किया उनका नाम था नारायण भट्ट। इन्होने ही काशी में काशी विश्वनाथ की पुनः स्थापना की। नारायण भट्ट के परिवार के लोग तीन सौ वर्षो तक काशी के गणमान्य पण्डित होते आये हैं। सर्वप्रथम गुरुकुल पद्धति से शिक्षादान नारायण भट्ट के पिता श्री रामेश्वर भट्ट ने प्रारम्भ की, जो सदा के लिए काशी आकर बस गये थे। इनके शिष्यों में अनेक काशी लब्धप्रतिष्ठित पण्डित हुए। जिन्होंने काशी के गुरु एवं पाण्डित्य परम्परा की स्थापना की। इस परिवार के प्रसिद्ध शिष्यों में ब्रह्मेन्द्र

सरस्वती और नारायण सरस्वती थे। इस परिवार की प्रतिभा के कायल होकर भारतवर्ष की पण्डित मण्डली उन्हें अपना संरक्षक मानती थी। गोस्वामी तुलसीदास उनके समकालीन थे। नारायण भट्ट के पश्चात् की गुरु एवं पाण्डित्य परम्परा अनवरत चलती रही। इनमें पुशोद्र सरस्वती, मधुसूदन सरस्वती, नीलकण्ठ भट्ट, चक्रपाणी शेष, मादावदेव, रघुर्वेद भट्टाचार्य, नारायण भट्ट, आरड़े, ब्रह्मदेव सरस्वती, गोविन्द भट्टाचार्य, नारायण तीर्थ, रघुनाथ जोशी, देवमद्य महाशब्द तथा कविन्द्राचार्य सरस्वती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

काशी में दाक्षिणात्य ब्राह्मणों की अधिकता थी। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि काशी में कान्यकुब्ज और सरयूपारी ब्राह्मणों का अभाव था। काशी के एक विद्वान पं. रामानन्द जी सरयूपारी थे। जिन्होंने काशी में गुरु परम्परा का मस्तक ऊँचा रखा। इनके कुल में आज तक अनेक प्रकाण्ड पण्डित होते चले आये हैं। इनके पूर्वज १६वीं शताब्दी में काशी आकर बस गये थे। इनके पिता मधुकर त्रिपाठी थे। ज्ञातव्य हो कि रामानन्द की ही विद्वता से आकर्षित होकर मुगले सल्तनीया दारा शिकोह ने संस्कृत शिक्षा ग्रहण की। दारा ने श्री रामानन्द के पाण्डित्य से प्रभावित होकर उनको विविध विद्या चमत्कार पारंगत की उपाधि से विभूषित किया। इन्ही के वंशजों में पं. कमलापति त्रिपाठी का परिवार है।

काशी में गुरू निःशुल्क पढ़ाते थे तथा उनके भोजन और रहने का प्रबंध बनारस के राजाओ और महाजनों से होता था।

काशी के अन्य प्रतिभा सम्पन्न आचार्यों में ईसा पूर्व पातंजली ११वीं सदी में रामानुज तथा ६वीं शताब्दी में आचार्य शंकर अग्रणी रहे। इसके पश्चात आचार्य माधव जगद्गुरु बल्लभाचार्य तथा आचार्य रामानन्द हुए जिनके शिष्य थे कबीर। १८वी सदी में गुरुकुल प्रथा का स्थान बनारस संस्कृत कालेज ने ले लिया। फिर भी गुरूकुल प्रथा पूर्णतया समाप्त

नहीं हुई। काशी में अंग्रेजी शिक्षा का बहुत कुछ श्रेय राजा जयनारायण घोषाल को जाता है। जिनका यह विश्वास था कि बौद्धिक उन्नति के लिए अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक है।

काशी के शैक्षिक जीवन में गुरूओं का स्थान आदि काल से चला आ रहा है। वे लोग वन में अथवा निर्जन स्थान में रहकर शिक्षा दान, तप तथा यज्ञ किया करते थे। इसके साथ–साथ अध्ययन–अध्यापन तथा तपस्या में अपना समय व्यतीत करते थे, झोपड़ियों में रहते थे। आश्रमों में विद्यार्थी, गुरुओं के आचरण से अधिक शिक्षा ग्रहण करता था। नगरों से दूर रहने के कारण तथा सात्विक आचार–विचार के फलस्वरूप लोगों के ह्रदय में उनके प्रति विशेष आकर्षण तथा आस्था रहती थी। काशी के गुरुओं का वर्णन ऋग्वेद में भी मिलता है। वाराणसी की शिक्षण संस्थाएं गुरुकुल आचार्य कुलगुरु गृह तथा गुरु आश्रम के नाम से सम्बोधित होते थे। यहाँ के आचार्य को कुलपति कहते थे। जिनके चरणों में बैठकर सुदूर देश से पधारे शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। इनमे बाजीराव पेशवा, राम शास्त्री भी थे। विद्याध्ययन करने वाले विद्यार्थी को नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा विद्यार्थी को ब्रह्मवाहिनी कहा जाता था। गुरुकुल का शाब्दिक अर्थ गुरु का परिवार या आश्रम है जहाँ गुरु के सान्निध्य में रहकर उनके व्यक्तित्व तथा आचरण से बहुत कुछ सीखता था।

१८वीं सदी में जब गुरुकुल अपनी अन्तिम सांस ले रहा था उसी समय गुरु आश्रम की अग्नि में तपकर एक युवा विद्वान काशी के विद्वद् समाज में प्रकट हुआ और उस सुदर्शन ब्राह्मण युवक का नाम था ब्रह्मदत्त। तीस वर्ष की ही आयु में ब्रह्मदत्त, न्याय वैशेषिक, मीमांसा व्याकरण, वेद, वेदान्त, षट्दर्शन के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के निष्णात् विद्वान हो चुके थे। कालान्तर में काशी में ही विधिवत सन्यास ग्रहण

कर लिया उन्होंने और योगाभ्यास में लीन हो गये वह। पूर्व संस्कार के कारण अल्पकाल में ही समाधि की उच्च अवस्था का स्पर्श कर लिया उन्होंने। सन्यास ग्रहण करने के पश्चात उनके गुरु ने उनका नाम रखा स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती। प्रायः समाधि की अवस्था में रहते थे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती। वैसे तो उनके कई शिष्य थे लेकिन उनमें से एक ही योग्य पात्र प्रतीत हुआ उन्हे और वह शिष्य था ज्ञानेश्वर। उस समय ज्ञानेश्वर केवल बीस वर्ष का युवक था। सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व, गौरवर्ण, मृदुभाषी और सुसंस्कृत। योग्य शिष्य के समस्त गुण उसमें विद्यमान थे। अपने गुरु के प्रति पूर्ण निष्ठावान और श्रद्धावान तो था ही वह। अवसर देखकर एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने ज्ञानेश्वर को सन्यास दीक्षा दी और उसका नाम रखा स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती।

सायंकाल का समय था। नित्य की भांति मौन साधे बैठा हुआ था मैं स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती के सम्मुख। सम्भवतः ध्यानस्थ थे वह। एकाएक उनका दाहिना हाथ मेरी ओर बढ़ा और दूसरे क्षण उनके करतल का स्पर्श किया मैंने अपने मस्तक पर। हे भगवान। यह क्या हो गया मुझे? कहने की आवश्यकता नहीं स्पर्श का अनुभव होते ही चेतना शून्य हो गया मैं एक बारगी। और उस चेतना शून्य अवस्था में मैंने देखा अपने आपको एक युवा सन्यासी के रूप में। उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि सूर्योदय के समय काशी के एक सुनसान घाट की सीढ़ियों पर बैठकर दक्षिणावर्त शंख द्वारा मेरे दाहिने कान में योग तांत्रिक साधना से संबंधित गुरु मंत्र की दीक्षा प्रदान कर रहे हैं स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती। उनके मुख मण्डल पर अपूर्व आभा थी और नेत्र बन्द थे। मैं भी पद्मासन की मुद्रा में बैठा था शान्त निर्विकार और मेरे भी नेत्र बन्द थे उस समय। सहसा

एक झटका सा लगा। मेरी चेतना वापस लौटी। उस समय अपने आप में एक विचित्र सी प्रफुल्लता का अनुभव कर रहा था। सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था मेरा।

धीरे–धीरे मेरे नेत्र खुले। सामने तख्त पर पूर्ववत् ध्यानस्थ बैठे हुए थे पद्मासन की मुद्रा में स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द सरस्वती। मैं झुका और न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया मैंने। और न जाने क्यों और कैसे झर–झर कर आँखो से आँसू गिरने लगे उस परमदिव्य महात्मा के कमल जैसे कोमल और रक्ताभ चरणो पर। और तभी उस महापुरुष का कोमल और स्निग्ध स्वर सुनाई दिया, वे कह रहे थे–पूर्व जन्म में तुमको सन्यास दीक्षा के पश्चात योग तांत्रिक साधना की गुह्य दीक्षा दी थी। योग्यता लाभ है। शोध एवं अन्वेषण जिन विषयों का तुम कर रहे हो वह अति रहस्यमय और गुह्य से गुह्यतम है। इसीलिए उन गम्भीर विषयों का गम्भीर अध्ययन और उन पर गहन चिन्तन–मनन होना चाहिए। कालान्तर में उनसे उत्पन्न ज्ञान के प्रकाश में अपने मार्ग पर शनैः शनैः आगे बढ़ सकोगे तुम। क्योंकि वह मार्ग कटंकाकीर्ण हैं और उसकी धूल पर कभी कदा ही विरले व्यक्ति के पद चिन्ह होते हैं अंकित।

इतना कहकर महात्मा मौन हो गये। लेकिन उनके कोमल स्वर काफी देर तक गूंजते रहे मेरे अन्तराल में बार–बार मेरा सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था और उसी के साथ एक विशेष प्रकार की प्रफुल्लता और एक विशेष प्रकार के आनन्द का कर रहा था मैं अनुभव अपने आपमे, उस रात सो न सका। पद्मासन की मुद्रा में बैठकर ही पूरी रात व्यतीत कर दिया मैंने। उस अवस्था में कई विलक्षण अनुभूतियाँ हुई जिनको शब्दो में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

दूसरे दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। रात्रि का पहला प्रहर था। गंगा

के पार नीले आकाश में पूर्णिमा का धवल शुभ्र चांद थोड़ा ऊपर चढ़ आया था। जिसका प्रतिबिम्ब गंगा की धारा पर थिरक रहा था उस समय। शान्त निस्तब्ध था वातावरण। दण्डी घाट की बुर्जी पर महात्मा बैठे थे शान्त और निर्विकार। मैं भी था उनके निकट। सहसा महात्मा का मौन भंग हुआ। अभ्यस्त कोमल स्वर में बोले – 'योग्यता लाभ' होने पर साधक की आत्मा का सम्पर्क स्वयंमेव सिद्धलोक की साधक मण्डली से हो जाता है। इससे सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण लाभ साधक को यह होता है कि साधक को अपने साधनापथ पर वह ज्ञान प्राप्त होता है – जिसका भौतिकस्तर पर अभाव है मण्डली से कैसे सम्पर्क स्थापित होगा? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में महात्मा बोले–साधक मण्डली के सदस्यगण विदेही होते हैं। कभीकदा किसी विशेष अवसर पर सदेह भी उपस्थित होते हैं। लेकिन उनको चर्म चक्षु से पहचानना कठिन होता है।

सम्पर्क अलग बात है और मण्डली में प्रवेश अलग। मण्डली के किसी साधक द्वारा मण्डली से सम्पर्क सम्भव है। लेकिन प्रवेश तो विदेही अवस्था में ही सम्भव है। थोड़ा रूककर महात्मा आगे बोले–अभी कुछ ही क्षणों में साधक मण्डली के एक परमसाधक सदेह यहाँ उपस्थित होने वाले हैं। वे तो तुमसे परिचित हैं, लेकिन तुम उनसे नहीं। ... अभी महात्मा की बात समाप्त ही नहीं हुई थी कि सामने से एक महाशय आते हुए दिखलायी दिये मुझे। ऐसा लगा मानों चन्द्रबिम्ब से निकलकर आ रहे हों वह। समझते देर न लगी मुझे। साधक मण्डली के कोई विदेही साधक सदेह उपस्थित हो रहे थे महात्मा के सम्मुख। उनका नाम था कपिलकुण्डल। कपिलकुण्डल लगभग आठ नौ सौ वर्षो से साधक मण्डली के सदस्य थे। अब वे सिद्धमण्डली में प्रवेश करने वाले थे क्योंकि उन्होंने अपने आत्म शरीर को उपलब्ध कर लिया था।

उस समय मुझे यह जानकर थोड़ा आश्चर्य हुआ था कि पूर्वजन्म में मुझे महात्मा ने जब दीक्षा दी थी उस समय वे साधक मण्डली के सदस्य थे और सदेह उपस्थित होकर काशी में दीक्षा प्रदान की थी उन्होंने। अब वे सिद्ध मण्डली के सदस्य थे और अब वे मुझमे साधना संस्कार को जागृत करने के लिए सदेह उपस्थित हुए थे। काशी में।

महात्मा के स्पर्श मात्र से मुझमे अपने पिछले तीन जन्मों की स्मृति पूर्ण रूप से जागृत हो उठी थी। दो जन्मो की सतत साधना के बाद तीसरे जन्म में महात्मा ने मुझे दीक्षा दी थी। वर्तमान जन्म मेरा चौथा जन्म था। और इस चौथे जन्म में मुझमे जो साधना संस्कार जागृत हुआ था उसके प्रकाश में मेरे मानस पटल पर उन प्रच्छन्न–अप्रच्छन्न सिद्ध साधको, सन्त महात्माओं और योगियों के स्वरूप उभर आये जिनसे पिछले जन्मों में सम्पर्क हुआ था मेरा। इतना ही नहीं उनसे कौन–कौन सी आध्यात्मिक सम्पत्ति उपलब्ध हुई थी मुझे वह सब भी प्रकट हो गयी मेरे हृदय में। अब यह प्रसंग यही पर समाप्त होता है।

ज्ञानेश्वरानन्द से कपिलकुण्डल की काफी देर बाते होती रही। समझते देर न लगी मुझे। अपने साथ ले जाने के लिए ज्ञानेश्वरानन्द को आये हुए थे कपिलकुण्डल। गंगातट का वातावरण अब और अधिक निस्तब्ध हो चुका था। रात्रि भी और अधिक हो चुकी थी घनीभूत। मेरी आन्तरिक स्थिति कुछ विचित्र सी हो रही थी उस समय। ज्ञानेश्वरानन्द ने मेरी ओर सिर घुमाकर एक बार देखा और फिर मन्द स्वर में बोले– 'अब मेरा कार्य पूरा हो चुका है अब मैं कपिलकुण्डल के साथ अपनी मण्डली में जा रहा हूँ। मैं तो अब सम्भवतः न आ सकूँगा क्योंकि मेरी आवश्यकता नही है अब भौतिक जगत में, लेकिन कपिलकुण्डल तुमसे अपना सम्पर्क बनाए रखेंगे। आशा है शिवरात्रि पर्व पर काशी आयेंगे और तुमसे भी मिलेंगे महाशय। यह सुनकर विह्वल हो उठा मैं एक बारगी। गुरुदेव का वियोग क्या सहन कर सकेंगी मेरी आत्मा, नहीं कभी नहीं।

भावाविभूत हो उठा और महात्मा की गोद में सिर रखकर रोने लगा हिलक—हिलक कर मैं। कुछ क्षण तक अपनी कोमल उंगलियों से वह महायोगी मेरे बालों को सहलाता रहा लगा जैसे वह अपनी मूकभाषा में सान्त्वना दे रहा हो मुझे फिर एकाएक सब कुछ कांच की तरह छन्न से टूट गया। वहाँ न ज्ञानेश्वरानन्द थे और न तो थे कपिलकुण्डल ही। बस मैं था और मेरे चारो ओर था बिखरा हुआ घोर सन्नाटा।

कपिलकुण्डल की प्रतीक्षा थी अब। समय व्यतीत होता रहा अपनी गति से और अन्त में आ ही गया शिवरात्रि। काशी के सड़कों पर काशी की गलियों में और काशी के घाटो पर काफी भीड़—भाड़ थी भगवान विश्वनाथ के दर्शनार्थियो की। सबेरे से रिमझिम वर्षा हो रही थी। आधा दिन निकल गया था लेकिन कपिलकुण्डल के दर्शन नही हुए थे अभी तक। पानी में भींगता हुआ इधर—उधर भटक रहा था मैं भीड़—भाड़ में। और तभी मेरी दृष्टि पड़ी केदारेश्वर मन्दिर के निकट एक अर्धवृद्ध साधु पर अपलक निहार रहा था मेरी ओर वह अपरिचित साधु। कुछ क्षण बाद मुस्कराते हुए मेरे निकट आकर धीरे से बोला वह – मुझे पहचाने नहीं। मैं हूँ कपिलकुण्डल।

अरे ! आप, सचमुच इस रूप में पहचान न पाया था मैं आपको। फिर थोड़ा झुककर चरणस्पर्श किया मैंने उस परमदिव्य आत्मा का। और फिर मैं अपने निवास पर ले आया उन्हें, साधक मण्डली से मेरी आध्यात्मिकता के विषय में चर्चा की थी कपिलकुण्डल ने। उन्होने यह भी मुझे बतलाया कि काशी में ही बहुत से साधक और साधिकाएं है – जिनका अगोचर संबंध साधक मण्डली से है, लेकिन साधक साधिकाओं की मति—गति बड़ी ही विचित्र होती है और उनकी अति विलक्षण होती है गतिविधि भी। सभी के समझने के बस में नही है। इसके लिए एक योगी में जो विशेषता होनी चाहिए वह तुम्हारे में होना

आवश्यक है।

वह विशेषता क्या है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कपिलकुण्डल बोले – वह विशेषता है अपने मन को शान्त रखना। और मन को शान्त करने के लिए दो मुख्य बाते हैं पहली है – प्रसन्न और आनन्दित व्यक्ति के प्रति मैत्री, दुखी व्यक्ति के लिए 'करुणा' पुण्यवान के प्रति 'मुदिता' यानी प्रसन्नता और पापी अथवा दुर्जन के प्रति उपेक्षा। इन भावनाओ का विकास और संवर्धन होने पर मन अपने आप शान्त हो जाता है। दूसरी है – बारी–बारी से श्वास बाहर छोड़ने और रोकने से भी मन शान्त हो जाता है। और मन के शान्त होने पर ध्यान की उपलब्धि होती है। और जब ध्यान से अतीन्द्रिय संवेदना उत्पन्न होती है। तो मन में आत्म विश्वास उत्पन्न होता है। और आत्म विश्वास के फलस्वरूप साधना का सातत्य बना रहता है।

ध्यान कहाँ होना चाहिए? मेरा प्रश्न था। आन्तरिक प्रकाश पर आन्तरिक प्रकाश आत्म प्रकाश है। वह शान्त है और सभी दुखो के बाहर है। इसके अतिरिक्त जो योगी वीतरागता को उपलब्ध हो चुके हैं – उनका ध्यान करना चाहिए।

इन सारी विशेषताओं को उपलब्ध होने पर ही तुम प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न सिद्ध साधकों योगियों और सन्त महात्माओं का सान्निध्य प्राप्त कर सकोगे और उनकी मति–गति अथवा गतिविधि भी समझ सकते हो। कुछ समय तक आध्यात्मिक चर्चा करने के बाद कपिलकुण्डल चले गये। उसके बाद भी कई बार सशरीर उपस्थित हुए कपिलकुण्डल और उनके माध्यम से साधक मण्डली के कई साधको से मेरा सम्पर्क हुआ और हुआ आध्यात्मिक लाभ भी। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा ये चारो दार्शनिक तत्व धीरे–धीरे मेरे जीवन के अंग बन गये जैसे। जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनो अस्तित्व में

परमशान्ति का साम्राज्य स्थापित हो गया और भर गयी परम आत्मविश्वास से मेरी आत्मा और उसी के साथ एक ऐसी अतीन्द्रिय संवेदना भी मुझमें उत्पन्न हो गयी जिससे मोह–माया, आकर्षण और राग–अनुराग से मुक्त होकर सत्य का साक्षात्कार करने लगी मेरी अन्तरात्मा। जिसके फलस्वरूप अपने शोध तथा अन्वेषण के मार्ग में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होने लगी और उसी के साथ–साथ अपने आप सम्पर्क स्थापित होने लगा प्रच्छन्न–अप्रच्छन्न सिद्ध साधको योगियो और सन्त महात्माओं से। उनसे जितना जो कुछ योग–तंत्र से संबंधित ज्ञान प्राप्त हुआ और उस ज्ञान के जिन आध्यात्मिक स्वरूपो से परिचित हुआ उन्ही सब में से कुछ को 'कारणपात्र' में एकत्र करने का प्रयास किया है मैंने।

अरुण कुमार शर्मा

बसन्त पंचमी
(सरस्वती पूजा)
सन् 2005, काशी

प्रथम पात्र

तंत्र साधक भवानीशंकर भादुड़ी

अपने शोध एवं अन्वेषण की दिशा में सर्वप्रथम जिस महापुरुष से मैंने सम्पर्क स्थापित किया वे थे महातंत्र साधक भवानी शंकरभादुड़ी।

भादुड़ी महाशय काशी के मानसरोवर मुहल्ले में रहते थे उन दिनों। मझोला कद, गौर वर्ण, खल्वाट सिर, दाढ़ी–मूछ सफाचट, दोहरीकाया, थोड़ा आगे निकला हुआ पेट, और साधना के तेज से दप् दप् करता हुआ मुखमण्डल, नेत्रों में भी प्रखरता कम न थी।

सुनने में आया था–सम्भवतः डा. गोपीनाथ कविराज ने ही बतलाया था कि भादुड़ी महाशय ढाका विश्वविद्यालय के कभी प्राध्यापक थे। परिवार में अकेले थे। शादी ब्याह नहीं किया था। शुरू से ही मनस्वी और एकान्त प्रिय थे। थोड़ा–थोड़ा तांत्रिक साधना की ओर रुझान था। ढाका में ढाकेश्वरी देवी का भव्य मन्दिर है। त्रिपथगा, मंदिर की बायीं और वक्राकार घुमती हुई आगे बढ़ गयी है। धारा अत्यधिक प्रखर और प्रचण्ड हैं। मंदिर के निकट काफी लम्बा–चौड़ा घाट है, पक्का और उस पक्के घाट के ऊपर है एक विशालकाय पीपल का काफी पुराना वृक्ष। प्रत्येक वर्ष आश्विन नवरात्र में यानी दुर्गापूजा के अवसर पर बड़ा भारी मेला लगता है वहाँ। काफी दूर–दूर

से लोग आते हैं मेले में। पूरे नौ दिन ढाकेश्वरी का पूजनोत्सव चलता है। अष्टमी की महानिशा बेला में माँ के सम्मुख महिषबलि दी जाती है और विशेष तांत्रिक विधि से दो दिन यानि अष्टमी और नवमी को पूजा अर्चना होती है माँ महामाया की। उस अवर्णनीय अवसर पर अनेक तंत्र साधकगण भी उपस्थित होते है। प्रत्येक वर्ष की तरह उस वर्ष भी दुर्गा पूजनोत्सव मनाया जा रहा था धूम–धाम से।

महाष्टमी का प्रातःकाल घाट पर स्नानार्थियों की भारी भीड़ थी। बुर्जियों पर भट्टाचार्य लोग उच्चस्वर में चण्डीपाठ कर रहे थे ... **सर्वस्वरूपे सर्वेशे ... सर्वशक्ति।** थोड़ी दूर पर कुलवधुएं लालपाढ़ की साड़ी पहले घूँघट काढ़े हाथ में जल–कलश लिये देवी की स्तुतिगान कर रही थी। भवानी बाबू गंगा स्नान कर धीरे–धीरे सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर आ रहे थे। तभी उनकी दृष्टि पीपल के नीचे बैठे एक साधु पर पड़ी।

सिर पर जटाजूट और लम्बी दाढ़ी, लम्बी–चौड़ी काठी, शरीर पर लाल रंग का चोगा और उसी रंग का दुपट्टा, मस्तक पर त्रिपुण्ड और उस त्रिपुण्ड के बीचों बीच लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका गले में झूलती हुई रूद्राक्ष, स्फटिक और मूंगे की मालाएँ।

साधु तनकर बैठा हुआ था। उसकी आँखे मुंदी हुई थी। चेहरा दमक रहा था तेज से। निश्चय ही वह कोई तांत्रिक साधु था।

काफी देर तक मंत्र मुग्ध से देखते रहे अपलक भवानी बाबू उस तांत्रिक साधु की ओर और फिर न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर उन्होंने दोनों हाथों से पकड़ लिया उस तंत्र साधक साधु के चरण। झर–झर कर आँसू भी गिरने लगे आँखों से। स्वयं भवानी बाबू को भी समझ में नहीं आया कि वे आँसू क्यों गिर रहे हैं।

कुछ क्षण बाद बन्द आँखें खुली साधु की। शायद अभी तक समाधिस्थ था वह। आँख खुलते ही एकबारगी चौंक पड़ा वह जैसे

बिजली का करेन्ट लग गया हो अचानक उसे। फिर आश्चर्य भरे स्वर में बोला – अरे! भवानी तू यहाँ कैसे? तुझे तो न जाने कब से खोज रहा था, मैं।

कुछ समझ में नहीं आया भवानी बाबू को। बस टुकुर–टुकुर ताकते रहे वह साधु के चेहरे की ओर। साधु भी आगे कुछ नहीं बोला। उसने अपना दाहिना हाथ उठाया और भवानी बाबू के सिर पर रख दिया। दूसरे क्षण बेसुध हो गये भवानी बाबू और जब सुधि लौटी तो अपने आपको पाया एक गुफा में उन्होंने। वे गुफा में कैसे और कब पहुँच गये समझ में नहीं आया उनको। यह भी समझ में नहीं आया कि वह गुफा है किस स्थान पर? बाद में स्पष्ट हुआ सब कुछ।

वह साधु और कोई नहीं – महातंत्र साधक अघोरानन्द थे। भवानी बाबू के पिछले जन्म के गुरू। सिर पर हाथ रखकर भवानी बाबू को शक्तिपात दीक्षा दी थी उन्होंने, जिसके फलस्वरूप उनका पूर्व साधना संस्कार जागृत हो गया था। अपने गुरू के सान्निध्य में रहकर पूरे दस वर्ष उस गुफा में तंत्र साधना की उन्होंने और उसके बाद गुरू के आदेश पर काशी चले आये वह।

दस वर्ष के साधना काल में कई अद्‌भुत तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त की थी भवानी बाबू ने। लेकिन अपनी सिद्धियों की चर्चा बहुत कम करते थे। किसी प्रकार के चमत्कार के प्रदर्शन का प्रश्न ही नहीं था।

सिद्धियों की चर्चा और उनके प्रदर्शन के बिल्कुल विरुद्ध थे वह। उनका कहना था कि इससे साधक की शक्ति नष्ट होती है और साधनाबल भी क्षीण होता है लेकिन सौभाग्यवश एक बार भादुड़ी महाशय का एक अविश्वसनीय चमत्कार और वह भी पैशाचिक – देखने का अवसर मिल ही गया मुझे।

वह अविश्वसनीय पैशाचिक चमत्कार

भवानीशंकर भादुड़ी जिस मकान में रहते थे वह बंगाल के नाटौर

स्टेट का था। मकान दो मंजिला था मगर था काफी छोटा। कुल पाँच कमरे थे छोटे–छोटे। नीचे तीन कमरे थे और ऊपर दो। नीचे वाले एक कमरे को मंदिर बना रखा था भादुड़ी महाशय ने। जिसमें नरमुण्ड पर विपरीत रति काली की कांस्य मूर्ति स्थापित थी। मूर्ति तो थी छोटी ही लेकिन थी अत्यन्त तेजोमयी और भव्य। बगलवाला कमरा भादुड़ी महाशय का साधना कक्ष था। जिसमें प्रवेश करते ही एक विचित्र सी शान्ति का अनुभव होता था। क्यों बन्द रहता था यह मेरी समझ के परे था। लेकिन एक दिन उसका रहस्य खुल ही गया। सावन–भादो का महीना था। सबेरे से ही पानी बरस रहा था जोर–शोर से। सांझ के समय जब पानी थोड़ा थमा तो नित्य की भाँति पहुँच गया मैं भादुड़ी महाशय के निवास पर। संयोग से दरवाजा खुला था। साँकल खड़खड़ानी नही पड़ी। देखा हमेशा बन्द रहनेवाला वह कमरा खुला था। भीतर पच्चीस पावर के बल्ब का हल्का प्रकाश फैल रहा था। और उस पीले प्रकाश में कमरे के भीतर जो आश्चर्यजनक और कौतूहलमय दृश्य उभरा वह निश्चय ही अविश्वसनीय और रोमांचकारी था।

कमरे में एक ओर काले मारबल पत्थर की एक चौकी थी और उस चौकी पर एक ऐसा व्यक्ति बैठा था जो मनुष्य होते हुए भी पूर्ण मनुष्य नहीं था। उसके कुछ लक्षण विचित्र और अमानवीय थे। उस व्यक्ति का रंग बिल्कुल काला था। शरीर गठीला, और कद ठिगना था। सिर तो सफाचट था पर दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उसकी आँखे गोल–गोल और स्थिर थी। शायद पलकें झप नही रही थी। उन आँखों में विचित्र भाव था। यदि उसे घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, और क्रोध का मिला–जुला भाव कहा जाय तो उपयुक्त होगा।

उस रहस्यमय व्यक्ति के हाथ तो सामान्य थे मगर दोनो हाथों की उंगलियाँ काफी लम्बी–लम्बी थी। सर्वांग नग्न था वह। सबसे

विस्मयकारी बात तो यह थी कि उसका सारा शरीर पारदर्शक था। पद्मासन की मुद्रा में बिल्कुल तनकर सामने की ओर स्थिरभाव से देखते हुए बैठा था वह विचित्र मानव। उसके सामने शराब की खुली बोतल और कच्चा मांस रखा हुआ था। थोड़ा सा हटकर भादुड़ी महाशय भी बैठे हुए थे। उनकी पीठ दरवाजे की ओर थी, इसीलिये मुझ पर उनकी दृष्टि पड़ने की सम्भावना ही नही थी, हाँ ! एक बात आपको बतलाना भूल ही गया था वह यह कि उस व्यक्ति के चेहरे और गर्दन पर चोट और घाव के कई ताजे निशान थे जिनमें से खून रिस–रिस कर चू रहा था। जिससे उसका चेहरा और वीभत्स दिखायी दे रहा था।

पानी बन्द हो चुका था। सांझ गहरा गयी थी। मैं आँगन में लगे परिजाता के पेड़ की ओट में हो गया। अब मैंने देखा अपने हाथों से मांस और मदिरा खिला–पिला रहे थे भादुड़ी महाशय उस रहस्यमय व्यक्ति को। खा पी लेने के बाद मैंने देखा वह बैठे–बैठे अपने स्थान से अचानक गायब हो गया। निश्चय ही वह कोई रहस्यमय पैशाचिक चमत्कार था यह समझते देर न लगी मुझे।

असीरगढ़ का पिशाच

सब कुछ देखने के बाद चुपचाप वापस लौट आया मैं। पूरी रात सोया न गया मुझसे। बराबर उस रहस्यमय व्यक्ति का चेहरा मेरे सामने थिरकता रहा। कभी–कभी चेहरे की वीभत्सता के कारण रोमांचित हो उठता था मेरा सारा शरीर। दूसरे दिन ज्वर हो आया मुझे। चार–पाँच दिन ज्वरग्रस्त रहा और जब उसके बाद भादुड़ी महाशय से मिलने गया तो मौन साधे बैठे हुए मिले वह। मुझे देखते ही गम्भीर स्वर में बोले – उस दिन तुमने जो कुछ देखा सुना उसे भूलकर भी किसी को न बतलाना, समझे। वर्ना ... वर्ना ... खतरे में पड़ जाओगे। यह सुनकर भौचक्का रह गया मैं। कैसे पता लगा मेरी

उपस्थिति का? समझ में नहीं आया मुझे। बाद में सारा रहस्य अनावृत हो गया। सारी कथा भादुड़ी महाशय ने ही बतलायी मुझे। वह रहस्यमय व्यक्ति कभी मनुष्य था और उसका नाम था मल्थू आनेइया। आनेइया, मल्थू के बाप का नाम था। मल्थू मध्य प्रदेश के जिस गोंड़ आदिवासी जाति का था। उसमें अपने नाम के बाद अपने बाप का नाम भी जोड़ने की परम्परा थी।

सौ–सवा सौ बरस पहले असीरगढ़ के किले के नर–बलि कक्ष की खिड़की से नीचे गहरी खायी में कूदकर अपनी जान दे दी थी मल्थू ने। जिसे भादुड़ी महाशय के कमरे में मैंने मांस मदिरा का भोग लगाते हुए देखा था, वह था मल्थू का पिशाच। जिसे सिद्ध कर अपने अधिकार में कर रखा था उस तंत्र साधक ने।

पिशाच और पिशाच लीला के संबंध में काफी कुछ पढ़ा सुना था लेकिन कभी जीवन में पिशाच का दर्शन भी होगा इसकी कल्पना सपने में भी नहीं की थी मैंने।

जिन दिनों की यह बात है उस समय मेरे एक मित्र थे। नाम था मदन मोहन चौबे। चौबे जी इतिहास के विद्यार्थी थे। मध्य प्रदेश और मध्य भारत के इतिहास का गहरायी से अध्ययन किया था चौबे जी ने। प्रसंगवश एक दिन असीरगढ़ की चर्चा की मैंने उनसे। चौबे जी ने बतलाया की असीरगढ़ का किला आज भी भुतहा माना जाता है। भूत प्रेतों का अड्डा ही समझे आप उस किले को।

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डालते हुए चौबे जी आगे बोले – दक्षिण भारत को शेष हिन्दुस्तान से अलग कर देने वाले खान देश की सीमा पर बुरहानपुर मुगलों के जमाने में दक्षिण सूबे की राजधानी थी। सभी दृष्टि से दिल्ली के बाद दूसरा सबसे बड़ा शहर था बुरहानपुर। अबुल फजल ने उसे नाम दिया था "दारूर सुरूर"। खान देश के फारसी बादशाह नसीरूद्दीन ने उसे बसाया था और उसे

सजाया सँवारा था मुगल बादशाहों ने। फारूकी मुगल और सिंधियाँ सुल्तानो का उत्थान और पतन देखा था सन् 1400 ई. में बसे उस पाषाण नगर बुरहानपुर ने। विन्ध्याचल पर्वत की आखिरी श्रृंखला में अवस्थित इसी उजाड़ शहर से लगभग चौदह–पन्द्रह मील दूर पर बना था असीरगढ़ का काफी लम्बा चौड़ा किला, समुद्र की सतह से करीब पाँच फीट ऊँचा।

पचास–पचपन बरस के अपने सुदीर्घ शासन काल में अपने पच्चीस बरस आलमगीर यानी औरंगजेब ने इसी असीरगढ़ में गुजारे थे। अपनी शाखायें–प्रशाखायें फैलाकर एक विराट चंदोवे जैसा समूचे खानदेश और गोंडवाना के भूखण्ड पर छा गया था, असीरगढ़–जहाँ जिन्दा आदमियों की बलि दी जाती थी, हर वर्ष दीपावली की काली रात में। एक ही आदमी की नही, एक साथ कई आदमियों की। मानव रक्त से भींग जाती थी बलिकक्ष की भूमि।

यह सामूहिक नरबलि क्यों और किस लिये दी जाती थी? मेरे पूछने पर चौबे जी ने धीरे से सिर हिलाकर कहा – मुझे नहीं मालूम। इतिहासकारों ने इस रहस्य पर प्रकाश नहीं डाला है। शायद आवश्यक नहीं समझे इसे वे। पूरी रात सोया न गया मुझसे। सामूहिक नरबलि की जो चर्चा चौबे जी ने की थी उसने मेरे मन में तरह–तरह के विचारों और तरह तरह की जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी थी एकबारगी। शोध और अन्वेषण की वृत्ति प्रबल हो उठी थी मेरी। न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर दूसरे ही दिन रवाना हो गया मैं असीरगढ़ के लिये।

असीरगढ़ की वह भयंकर पिशाचलीला

उस जमाने में हावड़ा से चलकर मुगलसराय से गुजरने वाली बम्बई के लिए एक मात्र दो ही गाड़ियाँ थी–हाबड़ा–बम्बई जनता एक्सप्रेस और हाबड़ा–बम्बई मेल। उन दिनों एक्सप्रेस और मेल गाड़ियों

में चार क्लास होते थे – थर्ड क्लास, इन्टर क्लास, सेकेण्ड क्लास, और फर्स्ट क्लास। जनता गाड़ियों में तो केवल थर्ड क्लास ही होते थे। किसी प्रकार बम्बई मेल के इण्टर क्लास की बोगी में एक सीट मिल गयी। जिस पर पूरा दिन और आधी रात गुजर गयी बैठे ही बैठे। लगभग दो बजे रात बुरहानपुर पहुँचा मैं। पूरा स्टेशन सांय–सांय कर रहा था। जो लोग गाड़ी से उतरे थे वे स्टेशन के बाहर जा चुके थे। हाथ में अटैची और बेडिंग लिये खड़ा–खड़ा न जाने क्या सोच रहा था मैं और तभी प्लेटफार्म पर जलने वाले किरासिन तेल के लैम्प की चिपचिपाहट भरी पीली रोशनी में अचानक मुझे एक आकृति दिखलायी दी। वह आकृति धीरे–धीरे मेरी ओर बढ़ रही थी। कुछ ही क्षणों में मेरे बिल्कुल सामने आकर खड़ी हो गयी वह। ध्यान से देखा एक आदिवासी युवक था वह। मझोला कद, गठीला शरीर काला रंग और आयु यही पच्चीस–छब्बीस वर्ष के लगभग।

मेरे बिल्कुल करीब आकर बोला वह – हुजूर ! असीरगढ़ जायेंगे न?

मेरे मुँह से अचानक निकल गया – हाँ ! मगर वहाँ तक पहुँचना कैसे हो सकता है?

"हूजुर" परेशान न हो। मैं असीरगढ़ का ही रहने वाला हूँ। आप लारी से आनू गाँव आ जाय हुजूर। वही मिल जाऊँगा मैं आपको। फिर कोई तकलीफ न होगी हुजूर को। तुमने अपना नाम नहीं बतलाया। क्या नाम है तुम्हारा सिगरेट सुलगाते हुये पूछा मैंने। झूना। झूना नाम है हुजूर मेरा।

ठीक है सुबह मिलेंगे – झूना के हाथ पर एक रुपये का सिक्का रखते हुए मैंने कहा।

लगभग तीन बजे पहुँचा मैं आनू। गोड जाति के आदिवासियों का छोटा सा गाँव था वह। झूना मुझे मिल गया बस स्टैण्ड पर ही।

थोड़ी तसल्ली हुई। झूना के साथ एक और युवक था नाम था रहलू। दो चार दिन किले में रहूँगा यह मैंने झूना को बतला दिया था इसलिये उसने अपने साथी रहलू को मेरी सेवा में नियुक्त कर दिया था। खाना और पाँच रुपये रोज देना था मुझे रहलू को।

झूना को साथ लेकर पहाड़ की चोटी पर पहुँचा मैं। फिर थोड़ा ढलान से उतर कर सामने की घाटी का दृश्य देखने लगा। दूर–दूर तक सांय–सांय करते हुए बियावान के बीच बना फारूकी बादशाहों का सदियों पुराना वह भीमकाय खण्डहर वहाँ से बिल्कुल साफ दिखलायी दे रहा था। झूना ने बतलाया कि गोड सामन्त अपने युद्ध अभियान पर प्रस्थान करने से पहले वहाँ नरबलि दिया करते थे।

भग्नावशेषों में परिणित हो आये उस किले के चारों तरफ कींकर, आम, महुएं, और पीपल के घने वृक्ष क्रम से पहाड़ो पर चढ़ते चले गये थे। हरीतिमा के बाद और गहरी हरीतिमा पग–पग पर गाढ़ी होती चली गयी थी। इन वृक्षों पर अमरबेल की लतरें लिपटी हुई थी। बरसात खत्म होने को थी, लेकिन गाढ़ी हरियाली पर पिछली रात हुई बारिश के चिन्ह मौजूद थे। किले तक पहुँचने के लिए एक ओर सँकरा सा रास्ता दिखायी दे रहा था पत्थरों से भरा हुआ। शेष सारी घाटी घने जंगलों से भरी हुई थी। सितम्बर का महीना था उदास और स्याह। मैदानी इलाके में जहाँ दरवाजे और खिडकियाँ खटखटाने वाली बारिश से भींगी पागल हवा का शोर था वही धुरखान देश के मुहाने पर असीरगढ़ की अंधेरी धुंधली तलहटियों में शीत का आलम था।

किले में रहलू ने मेरा सामान पहले ही पहुँचा दिया था। आनू से लगभग हजार फुट ऊपर अवस्थित असीरगढ़ के टेढे–मेढ़े रास्तों तक पहुँचाने के लिये झूना मेरे साथ हो लिया था। जब किले में मैं पहुँचा उस समय शाम हो चली थी। रहलू लम्बी और कठिन चढ़ाई तय करके बैठा हुआ चिलम का कश ले लेकर सुस्ता रहा था। डूबते

सूरज की सुनहली किरणों से असीरगढ़ का हर कोना जगमगा रहा था। किले के पास ही 867 फीट की ऊँचाई पर फारूखी बादशाहों की नायाब कारीगरी के मन को छू लेने वाले दिलकश नमूने, सिकन्दरी तालाब के पानी पर आखिरी धूप की रोशन चिलमन झलझला रही थी। किले की हाथी से भी अधिक दो गुनी ऊँचाई की दीवारें जालीदार मेहरावें और आयताकार वारादरियाँ सब कुछ टूट–फूट गयी थी। लेकिन बुझती हुई सांझ के धब्बे बड़ी प्रचुरता में उन पर बिखर गये थे। धूप वृक्षों की फुनगियों, रविशों, जंगली बेलों, और रंग बिरंगे फूलों पर छितराती हुई चौतरफा फैल गयी थी। समूची तलहटी को किसी करधनी की तरह पहने हुए बहुत लम्बा पाँच मील के अहाते में फैला हुआ विशाल असीरगढ़ – एक खामोश शान्त नीरव बुर्ज की तरह गहरी सुनसान घाटी में ठिठका सा रह गया था।

अंगारे जैसा धधकता हुआ सूरज अब बुझ चला था और उसकी लालिमा से पहाड़ों का सिलहुत बन गया था, उसके बाद धुंध थी। वह आधे चाँद की रात थी लेकिन निकला नही था अभी चाँद।

किला निर्जन था नितान्त सुनसान और निस्तब्ध। लेकिन तब भी मुझे लगता रहा कि वहाँ पर मैं अकेला नहीं हूँ। किले में घुसते ही एक विचित्र सी धुंधली सी बेचैनी हावी हो गयी थी मुझ पर। मेरे पैरो ने मुझे आगे ले जाने से इंकार कर दिया था मानो मैं कोई अवांछित व्यक्ति हूँ। जैसे कोई अशरीरी शक्ति यह अहसास दिलाती हुई मुझे वापस लौटने के लिए कह रही हो – जाओ फौरन भाग जाओ .. वर्ना ...।

उस पहली सांझ के समय असीरगढ़ की निस्तब्ध पिशाचपुरी में जो मुझे भय लगा था उससे मैं सोचने को विवश था कि चौबे जी की बात सच थी। निश्चय ही वह किला भूत, प्रेत और पिशाचों का पुराना अड्डा था, इसमें सन्देह नहीं।

22, सितम्बर, 1943 की उस ठण्डी, अन्धेरी और अराजकता भरी रात में, अपने जीवन को और अपने प्राण को संकट में डालकर जो अविश्वसनीय भयंकर और रोमांचकारी पिशाच लीला मैंने देखी थी और नरबलि कक्ष के गवाक्ष से बाहर निकला हुआ वह रक्तहीन, झुलसा हुआ हाथ देखा था उसे स्मरण करके आज भी काँप उठता हूँ मैं।

यह किला तो काफी पुराना है, यहाँ कोई आता जाता भी है, झूमा से पूछा—मैंने। अक्सर एक गोंड दीखता है, हुजूर लोगों को। झूमा ने बुझी हुई बीड़ी फेंकते हुए जवाब दिया। बतलाते है पिछले सौ—सवा सौ साल से वह इस किले में घूम रहा है, और रात—दिन कभी भी नजर आ जाता है। कितनी उम्र होगी उस आदमी की? मैंने सहज पूछा। यही कोई चौबीस पच्चीस साल की रही होगी साहब। अपने अन्दर छायी हुई दहशत को हल्का करने के लिए हँसने लगा मैं, चौबीस—पच्चीस बरस का आदमी सौ बरस से इस किले में घूम रहा है। वाह! वाह! सुनकर मजा आ गया झूना।

विस्फारित दृष्टि से मेरी तरफ देखता रहा झूना।

"उसके जिस्म से खून रिसता रहता है साहब। झूमा गम्भीर स्वर में बोला – आपको साहब नरबलि की बात बतलायी थी न। कहते है भैरव बाबा के सामने जब उसकी बलि चढ़ाई जा रही थी तो नीचे कूद गया था वह। उसकी लाश तक नहीं मिली थीं मरने के बाद वह बहुत बड़ा पिशाच बन गया हुजूर।

क्या उसका नाम जानते हो तुम?

हाँ। हुजूर मल्थू नाम था उसका – काँपते हुए झूमा ने जबाब दिया।

अपने भय पर काबू पाने के विचार से थोड़ा हँस कर बोला मैं —बेवकूफ हो तुम। सौ—सवा सौ बरस पहले मरा हुआ आदमी अब भला क्या करने आयेगा? इस टूटे—फूटे खण्डहर किले में और मुर्दा

भला कैसे जिन्दा हो सकता है पागल।''

झूमा थोड़ी देर बाद, कल आने को कह कर अपने गाँव वापस चला गया। मोटी पथरीली दीवार में बनी खिड़की से मैंने नीचे की तरफ झांका। सैकड़ों मीटर गहरी खाई थी वहाँ। धुंध के रेले में झुरमुट और जमीन खो सी गयी थी। जहाँ तक निगाह जाती थी जंगल ही जंगल बिखरा हुआ था जिन पर रात की स्याह चादर फैली हुई थी। इक्की, दुक्की रोशनियाँ दीख पड़ती थी नीचे और धुंआ। आदिवासियों के छुट–पुट बिखरी झोपड़ियों में चूल्हे सुलग रहे थे। उनमें जलती आग पिशाच की आँखों जैसी कौंध–कौंध सी जाती थी। ठिठकी हुई, निस्पन्द और भुतैली।

लालटेन जला दी थी रहलू ने। गाँव के बाजार से आवश्यक सामान मैंने मंगवा लिया था उससे। घड़ी की ओर देखा – सात, पैतीस। रहलू खाना बनाने में जुट गया और मैं टार्च लेकर किले की बुर्जो की ओर टहलने के विचार से चला गया। बुर्जो के पहले एक लम्बा–चौड़ा दालान था – जिसके बगल से नीचे की ओर सीढ़ियाँ गयी हुई थीं। सीढ़ियाँ टूटी–फूटी थी और थी धूल से भरी। न जाने क्या सोचकर सीढ़ियाँ उतरने लगा मैं। करीब पन्द्रह–बीस सीढ़ियाँ उतरने के बाद मुझे एक हालनुमा कमरा दिखाई दिया। कमरे की दीवारें और जमीन दोनों लाल पत्थरों के थे। चारो तरफ धूल ही धूल थी। लगा जैसे बरसों से वहाँ कोई आया न हो। अचानक छः सेल की टार्च की रूपहली रोशनी फिसलती हुई बायीं ओर घूम गयी। भौचक्का सा रह गया मैं, आश्चर्य और कौतूहल के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। भय की भी अनुभूति हुई साथ ही साथ। टार्च का तीव्र प्रकाश जिस वस्तु पर पड़ा था, वह थी कालभैरव की भव्य और विशाल मूर्ति। मूर्ति काले पत्थर की थी और थी लगभग सात फुट ऊँची। चेहरे पर क्रोध का भाव स्पष्ट रूप से झलक रहा था।

दो हाथ थे। एक हाथ में विशाल त्रिशूल था और दूसरे हाथ में था नरमुण्ड। मूर्ति चलायमान मुद्रा में थी और जिस पर वह स्थापित थी वह थी सफेद संगमरमर के पत्थर की वेदी। वेदी दो फुट ऊँची थी, और उसके ठीक सामने था काफी लम्बा चौड़ा हवन कुण्ड। उस हवन कुण्ड के बगल में जो वस्तु थी उस पर नजर पड़ते ही रोमांचित हो उठा मेरा सारा शरीर।

आप जानना चाहेंगे कि वह कौन सी वस्तु थी जिसे देखकर रोमांचित हो उठा था मेरा शरीर। वह था बलियूथ। सफेद मारबल का था वह लगभग दो फुट ऊँचा और उतना ही चौड़ा। खून के काले धब्बे अभी भी साफ नजर आ रहे थे वहाँ। जमीन और अगल–बगल की दीवारों पर भी खून के छीटे पड़े थे जो अब स्याह पड़ गये थे। सोचने लगा मैं कितने नर, पशुओं की बलि दी गयी होगी महाकाल को प्रसन्न करने के लिये वहाँ? कैसा वीभत्स और भयानक दृश्य रहा होगा नरबलि के समय का? बलियूथ में फँसा हुआ गर्दन, धड़ से अलग हुआ नरमुण्ड और खून की आखिरी गर्मी से छटपटाता हुआ धड़, सब कुछ घूम गया एकबारगी काल्पनिक रूप से मानस पटल पर।

खाना बना चुका था रहलू, आलू, परवल की मसालेदार सब्जी और पराठा, उस मौसम का मेरा प्रिय भोजन। न जाने कहाँ से मेज कुर्सी का भी इन्तजाम कर दिया था रहलू ने। एक सिगरेट सुलगा कर कुर्सी पर पसर गया मैं। और महाप्रसाद की बोतल मंगा ली। वाममार्ग से तांत्रिक साधना भूमि में प्रविष्ट होने के कारण कभीकदा आवश्यकता पड़ने पर महाप्रसाद यानी मदिरा का भी सेवन कर लिया करता था उस समय।

घड़ी पर नजर पड़ी नौ पैतीस।

घाटी में अब अजीब किस्म का शोर होने लगा था। बरसाती

मेढ़कों का शोर, गीदड़ों का, शेर बाघों का शोर। घास में उड़ते हुए जुगनू बूँद–बूँद रूपहली रोशनी छिड़कते हुए मेरे पैरों के पास मंडराने लगे।

विन्ध्याचल के बीहड़ों में गोडों की शक्ति को नामांकित करने वाला देवगिरि का जटवा गोडो का पहला शक्तिपुरूष था जिसने मुसलमानों को भी अपने वजूद का एहसास करा दिया था। उसकी समाधि असीरगढ़ किले में कहीं मौजूद थी। जटवा का बेटा बुलन्द बख्त बाद में मुगल दरबार का मनसवार बना। फिर हुए नरेन्द्र बख्त और छतर बख्त। वे सारे गोड क्षत्रज खून के खिलाड़ी थे। आस–पास की जागीरदारियों पर हमला करने और उन्हें अपने साम्राज्य में शामिल करने का उन्माद सा था उनमें चूँकि उन्हें मुगल सल्तनत की सरपरस्ती हासिल थी–इसलिये दिन व दिन वे और भी अधिक निर्दयी बेरहम और ज्यादा मदान्ध बनते गये थे। युद्ध के देवता भैरव के अनुयायी थे जटवा के वे सारे वंशज। इसलिये जब भी किसी अभियान पर वे निकलते अथवा नवरात्रि का आयोजन करते तो कभी एक मनुष्य की या कभी–कभी चार–पाँच मनुष्यों की सामूहिक बलि अवश्य दी जाती थी। असीरगढ़ का भैरवमंदिर और नरबलि कक्ष नौबत खाने के दक्षिण तरफ थोड़े ही फासले पर अवस्थित था। नरबलि के समय नगाड़खाने से आनेवाले नगाड़ों की आवाज वातावरण को और अधिक भयंकर बना देती थी। ठीक मध्यरात्रि में कालभैरव के सम्मुख विशाल खड्ग से नरमुण्ड को काट कर देवता को अर्पित कर दिया जाता था। जिस व्यक्ति की बलि दी जाने वाली होती थी उसे पहले जंगली फलों से बनी शराब खूब पिलायी जाती थी। एक प्रकार से वह अपना होशोहवास गंवा बैठता था। बलि के दो घण्टे पहले उसे पाँच कुओं अथवा पाँच नदियों के जल से स्नान कराया जाता था। माथे पर सिन्दूर का दगदगाता टीका लगाया जाता था। गले में जबा–कुसुम

की माला पहनायी जाती थी। अन्त में बलिमानव कालभैरव की विशाल पाषाण प्रतिमा के सम्मुख नतमस्तक हो जाता था और तत्काल ही उसका सिरकलम कर दिया जाता था।

इन रक्तपिपासु गोंडो का विनाश किया था रोहिल्लो ने। 18वीं सदी में प्रभञ्जन की तरह वे बुरहानपुर को लूटने आये थे और उन्होंने तभी मिटाया था गोंडो को। कुछ ऐसा ही इतिहास गोड सामन्तों का भी बतलाया गया था।

रहलू आकर बोला – साहब। मेज पर खाना लगा दूँ?

मैंने सिर हिला कर कहा – हाँ। लगा दो।

कोने में रखी लालटेन, किले में रहस्यपूर्ण मटयाली सी रोशनी बिखेर रही थी। सदियों पुराने उस किले में वह बेआब रोशनी उस खामोश और उदास माहौल को और भी ज्यादा जर्द बना रही थी।

रहलू मेज पर खाना लगा रहा था। उसने कहा–साहब जहाँ आप खाना खा रहे हैं, वहीं पर यानी इसी कमरे में – जटवा गोंड़ की समाधि हैं।

ऐ! क्या कहा – समाधि। चौक पड़ा मैं।

हाँ! साहब! समाधि! इसी कमरे में दफन की गयी थी उसकी लाश।

खाने के पहले मैंने एक मैकडॉवेल पेग बनाया और उसे हलक के नीचे उतारते हुए सामने खिड़की की ओर देखा और गिलास लिए हुए मेरा हाथ उठा का उठा ही रह गया। खून जमा देने वाला दृश्य देखा था मैंने वहाँ।

खिड़की में से एक हाथ कमरे के भीतर मेरी तरफ झाँक रहा था एक काला, विकराल, सूखा हुआ हाथ। लगता था मानो किसी अधजली चिता से उठकर सीधा किले में चला आया है ठूठ हो गयी उसकी काली बदरंग उंगलिया खुल–खुल कर बन्द हो रही थी। किसी

को इशारा कर रहा था वह। और फिर वह कटा हुआ हाथ एकाएक गायब हो गया।

"रहलू .... रहलू .... मैंने पुकारा।

रहलू दौड़ा चला आया।

देखना, वहाँ खिड़की के पास कौन हैं? मैंने कहा–रहलू ने खिड़की के बाहर झांका। वहाँ सन्नाटा था।

वह बोला – यहाँ तो कोई नही है साहब।

कौतूहल जिज्ञासा और भय के कारण खाना खाया न गया मुझसे। विश्वास नही हुआ रहलू पर। स्वयं उठा और चल पड़ा मैं।

नगाड़खाना नीचे था। उसकी मेहरावे और दीवारे खण्डित हो चुकी थी। मगर नौबतखाने में नगाड़ो की पुश्ते बरकरार थी। पत्थर के उन चबूतरों पर कटीले झाड़ उग आये थे। वहीं थी एक प्रशस्त बारादरी। उसी के पास था एक काफी गहरा कुंआ। उसमें अब भी काफी पानी था। कुंए के ऊपर थोड़ी ऊँची जगत थी। नगाड़खाने और कुंए की जगत के जोड़ उखड़ गये थे। उसके परे जंगल था। मानों पेड़ों की दीवार ही दीवार खड़ी हो वहाँ। मेढ़को का शोर झींगुरो की आवाज कहीं किसी निशाचर का स्वर और गीदड़ों के समवेत स्वर में सारा वियावान गूंज रहा था। मैं वहाँ कुछ क्षण खड़ा रहा और तभी नगाड़खाने के पीछे से कटीले झुरमुट बुरी तरह खड़खड़ायें और उसी के साथ मैंने पहली बार वह आवाज सुनी–जैसे कोई कराह रहा था वहाँ। गुगुआता हुआ भिचे हुए गले का कोई कण्ठ स्वर कुएं के पास से उभरा था और फिर रिरियाने में तबदील हो गयी थी। वह भिंची हुई आवाज।

हैरत में पड़ गया मैं। आखिर इस कुंए में कौन है? मुझे बड़ा अजीब लगा। आकाश में चाँद निकल आया था। उसकी हल्की चाँदनी जंगलों पर फैल गयी थी। मैंने कुंए में झांका। काफी नीचे कुंए के

जगत के ऊपर से झांकती चाँद की धुंधली रोशनी में अपनी ही परछाई नजर आयी मुझे और तभी मैं एक बारगी चिहुंक उठा। पानी में अकेला मेरा ही प्रतिबिम्ब नहीं था। मुझे लगा जैसे वह हंस रहा हो।

मै पलटा। लेकिन मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ – मेरे अलावा वहाँ और कोई नही था।

पर उस आदमी को तो साफ देखा था पानी में मैंने। उसका प्रतिबिम्ब स्पष्ट नजर आ रहा था और अगर वह सचमुच था जैसा कि मुझको विश्वास था, तो फिर गायब कहाँ हो गया था? आसपास कोई ऐसी जगह भी तो नहीं थी जहाँ बिजली जैसी तेजी से कूद कर छिपा जा सके और तभी रूधे हुए कण्ठ की वह कातर पुकार इस बार बिल्कुल करीब से सुनाई पड़ी मुझको जैसे कोई रो रहा था बिलख–बिलख कर। वह रूदन कुंए के भीतर से नही उभरा था। कोई उसके बिल्कुल करीब से रो रहा था और फिर रूदन रूक गया था।

सन्नाटा। गहरी नीरवता। गहरी खामोशी।

तभी फिर रूदन का समवेत स्वर उभरा। इस बार कोई व्यक्ति नही सिकन्दरी तालाब के पास दुबके सियार रो रहे थे। लकड़बग्घे की आवाज भी उस रूदन में सरीक थी। वह हिनहिनाकर हंस रहा था। खून जमा देने वाली हंसी थी वह।

बेचैन हो उठा मैं। आतंक से भर गया मन। भय भी लगने लगा कि कौनसा कौतुक घटित होने जा रहा था उन लम्हों में।

काफी देर तक कोई सामने नही आया।

लगा जैसे कोई इन्द्रजाल घट रहा हो। ऐसे व्याकुल इन्तजार में मैं नगाड़खाने की तरफ देखता रहा। धुंध के जाल में खो गयी थी उसकी बदरंग महरावे, लेकिन तब भी मुझे लग रहा था कि झाड़ी में छिपा हुआ आदमी अवश्य सामने आयेगा।

फिर चिता के धुएं जैसा कोहरे का आवरण फाड़कर वह बाहर निकला। काला विकराल चेहरा समूचा शरीर जख्मों से भरा हुआ जख्मों से छल–छल बहता हुआ खून। उसके माथे पर लाल सिन्दूर पुता हुआ था। गले में भी दहकते हुये जवा कुसुम की माला थी। हू–ब–हू वही चेहरा जिसे अभी थोड़ी देर पहले मैंने अपने कन्धे के ऊपर से झांकते हुए कुंए के पानी में देखा था। उस समय मैं उस चेहरे को पहचान नही पाया था। लेकिन इस बार बखूबी पहचान लिया मैंने। वह झूमा था जो मुझको किले तक ले जाकर दूसरे दिन आने को कह कर शाम को ही चला गया था। इस समय तो झूमा को अपनी झोपड़ी में होना चाहिए था, मैंने सोचा –लेकिन इस असीरगढ़ के सुनसान वियावान में वह क्या करने आया है? झूमा–तुम इस वक्त यहाँ कैसे चीखकर पूछा–मैंने?

झूमा हँसा। उसके स्याह चेहरे पर वह हंसी बड़ी डरावनी और बड़ी वीभत्स लगी। आहिस्ता–आहिस्ता वह मेरे करीब आने लगा। तभी मैंने देखा झूमा की एक बांह गायब थी। कन्धे से कटा हुआ था उसका हाथ।

मेरे दोनों कान झन–झन करने लगे। मुझे अपनी सुषुम्ना अवश होती जान पड़ी। खून बर्फ हो गया ऐसा ठण्डा आतंक मेरी शिराओ–उपशिराओं में दौड़ गया। शाम को झूमा के दोनों हाथ सही सलामत देखे थे मैंने। उन्ही हाथों से मेरा सामान भी बस स्टैण्ड से ऊपर पहाड़ी तक ढोया था उसने। फिर एकाएक उसकी बांह कट कर कहां रह गयी थी चन्द घण्टों में और उसके जिस्म से यह खून कैसा रिस रहा था। अचानक भयानक और दिल में दहशत पैदा करने वाला झूमा का चेहरा – बदल गया और वह बदला हुआ चेहरा मल्थू का था।

एक बारगी आतंकित हो उठा मैं।

तो . . . क्या झूमा के रूप में मल्थू ही था वह?

जो सौ सवा सौ बरस पहले बलि की वेदी से भाग कर गहरी खाई में कूद गया था जान बचाने के लिये जिसकी लाश बाद में किसी को नही मिली थी और जो अतृप्ति के अंधियारे में भटकता हुआ बुरहानपुर के रेलवे स्टेशन पर मिला था और मिला था गाँव के बसस्टैण्ड पर और जिसने मुझे पहुँचाया था मेरा पथप्रदर्शक बन कर किले में। एकाएक मल्थू के बगल में प्रकट हुआ रहलू।

आश्चर्य और भय से भर गया मैं रहलू को देखकर किसी प्रकार आवाज निकली मुँह से तुम... तुम... यहाँ कैसे रहलू? तुम तो ...।

मेरी बात सुनकर जोर से हँसा ठठाकर रहलू। मल्थू मेरा साथी है साहब। जहाँ वह रहता है वहाँ उसके साथ मैं भी रहता हूँ। इतना कह कर फिर पहले की तरह हँसा रहलू।

मल्थू और रहलू के पिशाच तन कर खड़े थे मेरे सामने। उनकी जलती हुई आँखे मुझ पर स्थिर थी।

सहसा मल्थू ने कन्धे के नीचे झूल आयी अपनी बची–खुची बांह हवा में लहरायी और मेरी ओर बढ़ा। उसकी आँखों में उस समय एक विचित्र प्रकार की आसुरी चमक थी और चेहरे पर था प्रबलहिंसा का भाव।

तेज हवा के हिमशीतल झोकों के बावजूद भी सारा शरीर पसीने से भर उठा था मेरा। अब मल्थू की बर्फ जैसी ठण्डी उंगलियों के स्पर्श का अनुभव अपने गर्दन पर कर रहा था मैं। तभी एक विचित्र सा प्रकाश फैला – दोनो पिशाच छटक कर काफी दूर जा गिरे। चूंकि मेरा शरीर विशेष तंत्र क्रिया द्वारा रक्षा के लिए बँधा है इसलिए कि कोई अशरीरी आत्मा मेरा नुकसान न पहुँचा सके और एक बारगी चेतनाशून्य हो गया मैं। फिर होश नही रहा मुझे। मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी एकबारगी। कब तक अचेत चेतना शून्य पड़ा रहा मैं

वहाँ झाड़ियों और कीचड़ों में, पता नही। और जब होश आया तो अपने को विदेशी पर्यटक और स्थानीय लोगों के बीच घिरा पाया। एकमात्र संयोग ही कहा जायेगा कि पहली बार विदेशी पर्यटकों ने उस बियावान किले के धूल–धूसरित भुतहे किले को देखने की इच्छा जाहिर की थी अपनी। अगर वे न आते तो मेरी लाश का भी पता किसी को न चलता और सड़ गल कर जंगली जानवरों और मांसखोर पक्षियों का आहार बन जाता वह।

पिशाचसिद्धि का उद्‌देश्य

बनारस लौटने पर पन्द्रह बीस दिनों तक ज्वरग्रस्त रहा। जब स्वस्थ हुआ तो एक दिन गया भादुड़ी महाशय के यहाँ। सारी कथा सुनाई उन्हें मैंने। सुनकर काफी देर तक गम्भीर रहे। फिर वह बोले ... बस। समझ लो प्राण बच गया! तुम्हारा वर्ना...। अत्यधिक खतरनाक है वह पिशाच। गुरू कृपा से मेरी मंत्र शक्ति से बंधा हुआ है वह। और उसी शक्ति के वशीभूत है। वह मेरे बुलाने पर आ जाता है यहाँ।

सुना हैं, पिशाच तमोगुणी प्राणी होते हैं और होते हैं तामसिक शक्ति सम्पन्न, तमोगुणी राज्य के अत्यन्त भयंकर जीव समझे जाते हैं वह।

ठीक ही सुना हैं तुमने–भूत–प्रेत, पिशाच, बेताल और हाकिनी, डाकिनी आदि मुख्य योनियाँ हैं। जैसे देवताओं के दो वर्ग होते हैं – स्थायी और अस्थायी। स्थायी वर्ग के देवता नित्य और अस्थायी वर्ग के देवता अनित्य कहलाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रूद्र, गणेश, वरूण, इन्द्र, वायु, अग्नि, सूर्य आदि नित्य देवता है। अनित्य देवता वे हैं – जिन्होंने मानव जीवन में सत्कर्म अथवा सत्कार्य किया है। लोक कल्याण किया है। धर्ममार्ग पर चलकर पुण्य लाभ किया हैं, और उसी के प्रभाव से मरणोपरान्त देवलोक पहुँच कर देवत्व को उपलब्ध हुए हैं। इसी प्रकार गुह्य योनियों के प्राणियों के भी दो वर्ग हैं : और उनके

अपने लोक भी हैं जिसे गुह्यलोक अथवा तामसिक लोक कहते हैं।

देवलोक दो है – पहले देवलोक में नित्य देवगण और दूसरे देवलोक में अनित्य देवगण निवास करते हैं। इसी प्रकार गुह्यलोक भी दो हैं। पहले में नित्य और दूसरे में अनित्य गुह्य योनि के प्राणी निवास करते हैं दूसरा गुह्यलोक जिसमें अनित्य गुह्य योनि के प्राणी निवास करते हैं। इसी पृथ्वी पर कहीं है। मल्थू का पिशाच इसी दूसरे गुह्यलोक में रहता है।

भादुड़ी महाशय ने आगे बतलाया कि पहला गुह्यलोक भी ब्रह्माण्ड में कहाँ स्थित है यह भी बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन यह निश्चित है कि तमोगुणी राज्य के उस गुह्यलोक का विस्तार जहाँ समाप्त होता है वहीं से शुरू हो जाता है रजोगुणी राज्य के अन्तर्गत आने वाले यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि के लोकों का विस्तार अन्य लोक–लोकान्तरों की तरह इन लोकों और उनमें निवास करने वाले रजोगुणी प्राणियों का पृथ्वी से निकटतम संबंध हैं हजारों–हजार वर्ष पहले उनके उपनिवेश थे पृथ्वी पर, कहते हैं, आज भी हिमालय में कहीं वे उपनिवेश अगोचर रूप से विद्यमान हैं। तुमको मालूम होना चाहिये–इस विश्व ब्रह्माण्ड में पृथ्वी एक ऐसा भू–पिण्ड हैं जहाँ समस्त लोक लोकान्तरों का अपना–अपना उपनिवेश विद्यमान है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि भारतवर्ष में ही वे सभी उपनिवेश अवस्थित है।

इसका कारण क्या है।

आगे मालूम हो जायेगा तुमको।

एक महत्वपूर्ण बात तुम्हें बतलाता हूँ–वह यह है कि तंत्र का मूल स्रोत अथवा मूलउद्गम एक मात्र यक्षलोक है। तंत्र का आविर्भाव यक्षों द्वारा हुआ है। उसी प्रकार जैसे गन्धर्वो से नृत्य कला और किन्नरों से संगीत कला का हुआ है, आविर्भाव।

तुम तो जानते ही हो प्रकृति त्रिगुणात्मिका है–भादुड़ी महाशय

मिट्टी के घड़े से गिलास में पानी उड़ेलते हुए बोले–सत्व, रज और तम – ये तीन गुण है प्रकृति के। प्रकृति विश्व ब्रह्माण्ड की एक अद्भुत और अत्यन्त रहस्यमयी शक्ति है आदिशक्ति यानी ब्रह्मशक्ति उसी प्रकृति का आश्रय लेकर उसके तीनों गुणों के रूप में सृष्टि भूमि में प्रकट होती है।

तंत्र साधना का मतलब है–शक्तिसाधना यानी सैकड़ों हजारों बोल्ट की बिजली के नंगे तार को छूना। समझे न। शक्ति का दूसरा नाम है विनाश। कोई भी शक्ति रक्षा का निर्माण नहीं करती सिवाय नाश के। उसे उपयोगी बनाना अनुकूल बनाना। रक्षा व निर्माण में प्रयुक्त करना जिस माध्यम से सम्भव है। उसी का नाम है 'तंत्र'। शक्ति भेद से तंत्र के भी तीन भेद है – सात्विक तंत्र, राजस तंत्र और तामस तंत्र। इसी को वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र और शक्ति तंत्र कहते हैं। इन तीनों प्रकार के तंत्रों के अधिष्ठाता क्रमशः देवगण, यक्षगण और पिशाचगण है। यदि विचार किया जाये तो इस दृष्टि से देवगण भी गुह्ययोनि के अन्तर्गत है। कहा भी गया है–**''पिशाचों गुह्यय कः सिद्धों भूतो मि देव योनयः।''**

तमोगुणी यानी तामसिक तंत्र अन्य दोनों तंत्रों से अत्यधिक गुह्य और रहस्यमय हैं। वास्तव में उसकी गुह्यता और रहस्यता को जानने–समझने के लिए ही मैंने पिशाचसिद्धि की थी। मल्थू तो है अनित्य पिशाचयोनि में लेकिन उसका सम्पर्क अन्य अनित्य पिशाचों की तरह नित्य पिशाचों से भी हैं।

अबतक मैं अपनी इस पैशाचिक सिद्धि के बल पर तंत्र के जिन गूढ़ गोपनीय और अत्यन्त रहस्यमय विषयों और साधनाओं से परिचित हुआ हूँ–वह निश्चय ही भारतीय अध्यात्म की अमूल्य और साथ ही अतिमहत्वूपर्ण सम्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।

क्या आपने कभी अपनी पैशाचिक सिद्धि से किसी प्रकार का

भौतिक लाभ भी उठाने का प्रयत्न किया। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में – भादुड़ी महाशय बोले–चाहता तो भौतिक लाभ उठा सकता था। लेकिन कभी भी इस दिशा में प्रयास नहीं किया मैंने। क्योंकि जानता था कि भौतिक लाभ उठाने का मतलब है पैशाचिक शक्ति के बंधन में बंधकर हमेशा के लिए परतंत्र हो जाना।

तंत्र चर्चा

अब मेरे सामने सारा रहस्य अनावृत्त हो चुका था। फिर उस दिन से तंत्र के विभिन्न विषयों और विभिन्न पक्षों पर आम चर्चा होने लगी मेरी भादुड़ी महाशय से। एक दिन प्रसंगवश वे कहने लगे–यह व्यापक अश्रद्धा का युग है और इस युग में सबसे अधिक उपेक्षित विषय रहा है – तंत्र। तंत्र के प्रति व्यापक भ्रामक धारणा है।

इसका कारण क्या हैं – मैंने पूछा।

कारण तो बहुत से हैं। लेकिन सबसे बड़ा कारण है तंत्र की उदात्त भावना। इसी के फलस्वरूप अशिक्षितों की बात छोड़िये और प्रबुद्धवर्गो में भी तंत्र के विषय में अनेक प्रकार की दूषित और भ्रान्त धारणायें फैली हुई है। तंत्र–मंत्र का नाम सुनते ही लोग नाक–भौ सिकोड़ने लगते हैं। वास्तव में ये सब तंत्रों की उदात्त भावनाओं और विशुद्ध आचार पद्धति तथा साथ ही साथ उनके आध्यात्मिक व दार्शनिक पक्ष से अपरिचित होने का परिणाम है तुमको मालूम होना चाहिए–तंत्रों के आध्यात्मिक और दार्शनिक विचार उतने ही उदात्त तथा प्रान्जल है–जितने कि अन्य दर्शनों के। उनकी साधना पद्धतियाँ भले ही तमोगुणी, रजोगुणी और सत्वगुणी क्यों न हो–पूर्णरूप से योग पर आधारित और पवित्र हैं। उनकी उपादेयता उतनी ही है जितनी वेदों की।

तंत्र का सर्वाधिक गूढ़ पक्ष है भाव और आचार। तंत्र का सारा रहस्य इसी में समाया हुआ है। भागवत तो तुम पढ़े ही होगे उसमें

11, 27, 7 अध्यायों में वैदिकी, तांत्रिकी, तथा मिश्री—नाम से जिस त्रिगविधा पूजा परम्परा का संकेत किया गया है—उसमें तांत्रिकी पूजा भी वैदिकी पूजा के समान एक प्रतिष्ठित एवं मान्य संस्था प्राचीनकाल से परिकल्पित हैं तुमको मालूम होना चाहिये—वैदिकी पूजा की ही पृष्ठभूमि पर स्मृति एवं पौराणिक पूजा पद्धतियों का विकास हुआ। तांत्रिकों की परम्परा में आगमिक पूजा पद्धति भी गतार्थ है। अतः आगम एवं निगम—जो सनातन से इस देश में समस्त ज्ञान, कर्म, उपासना, और समस्त साधना के सदा स्रोत समझे जाते रहे—उनसे तांत्रिक—परम्परा भी देश, काल, समाज एवं मानव संस्कृति के नाना घटकों से प्रभावित होकर यदि प्रबल प्रकर्ष को प्राप्त हुई तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

सांझ हो गयी थी। नित्य की तरह पूजा—आरती का समय हो गया था। भादुड़ी महाशय उठते हुए बोले—वास्तव में तंत्रों के संबंध में जो व्यापक रूप से भ्रम और कुत्सित धारणायें फैली हुई हैं—उसमें तंत्रों की परम्परा का दोष नहीं, वरन उन तांत्रिकों का दोष है—जो बिना महति आस्था एवं बिना योग के ही तांत्रिक बन कर भ्रष्टाचार के उन्नायक बनें।

'तंत्र' शब्द का अर्थ और उसकी व्यापकता

भादुड़ी महाशय से काफी प्रभावित हो गया था मैं। दूसरे दिन जब पहुँचा तो पूजा में लीन थे। थोड़ी देर बाद उठे। बोले—तंत्र का ज्ञान बहुत कम लोगों को है। तुम तत्र पर खोज कार्य कर रहे हो, यह प्रसन्नता की बात है। अपने प्रयास में सफलता मिलेगी तुम्हें। श्रम से मत घबराना।

आपका आशीर्वाद मिला तो मेरा प्रयास अवश्य सफल होगा, इसमें सन्देह नहीं—मैंने विनम्र भाव से कहा।

उस दिन का प्रसंग था तंत्र शब्द और उसकी व्यापकता इस

संबंध में भादुड़ी महाशय बोले–तंत्र की विशेषता, क्रिया है। वेद भारतीय अध्यात्म ज्ञान का एक मात्र ग्रन्थ है। स्थितिप्रज्ञ अथवा समाधि की विशेष अवस्था में इसका आविर्भाव हुआ है, मगर कब हुआ है इसका कोई इतिहास नहीं है इसीलिये इसे अपौरूषेय और सनातन कहते हैं।

वेद का जो आध्यात्मिक ज्ञान है उसका उपयोग तभी सम्भव है जब कि उसे क्रिया रूप में परिवर्तित किया जाय। 'तंत्र' यही कार्य करता है। वह वैदिक ज्ञान को क्रिया रूप में परिवर्तित कर देता है। तंत्र की विशेषता क्रिया है। समझ गये न।

तंत्र के आध्यात्मिक पक्ष का एक मात्र लक्ष्य अद्वैत लाभ है। यानी अद्वैतसिद्धि। दो का एकदूसरे में लीन हो जाना।

बिना पूर्ण वैराग्य के "ज्ञान" का आविर्भाव कदापि सम्भव नहीं। तंत्र के दार्शनिक पक्ष का उद्देश्य है–चित्त में स्थायी रूप से वैराग्य उत्पन्न करना। उस वैराग्य को जिसे योगीगण 'परमवैराग्य' कहते हैं।

बिना द्वैतभाव से मुक्त हुये परमवैराग्य सम्भव नहीं। तंत्र का जो साधनापक्ष है–उसका एक मात्र लक्ष्य है–द्वैतभाव से मुक्त करना। तांत्रिक साधना का एक मात्र प्रयोजन यही हैं।

भादुड़ी महाशय आगे बोले–वास्तव में तांत्रिक साधना के प्रति व्यापक भ्रम है। तांत्रिक साधना क्या है–इससे आज के लोग पूर्णतया अपरिचित हैं। लोगों की धारणा यह हैं कि तांत्रिक साधना कल्याण के लिए है, कामना पूर्ति के लिए है, और हैं सभी प्रकार के कष्टों, आपदाओं, विपदाओं और तमाम समस्याओं के निवारण के लिए।

सच पूछा जाय तो इन सब बातों से तांत्रिक साधना का कोई भी संबंध नहीं है। उसका तो एक मात्र लक्ष्य है। उन सबका अतिक्रमण। मन की तीन दशायें हैं–पहली है बुरे मन की दशा, दूसरी है अच्छे मन की दशा, तीसरी हैं दोनों के पार अमन की दशा। तांत्रिक

साधना का प्रयोजन है—कि अच्छे बुरे दोनों के मन की दशा से आप मुक्त हो जाय। और 'अमन' की अवस्था को हो जाय उपलब्ध इसी उपलब्धि, का नाम है—द्वैत से मुक्ति।

तंत्र का चौथा लक्ष्य है—उपासना। तांत्रिक उपासना का प्रयोजन है—उपासक का अपने उपास्य देवी या देवता के साथ तारतम्य स्थापित करना। तुमको मालूम होना चाहिये तांत्रिक उपासना का क्षेत्र काफी विस्तृत व काफी व्यापक है।

तंत्र के इस लक्ष्य के अन्तर्गत सात्विक, राजस और तामस। तीनों प्रकार की उपासनायें है। इन तीनों प्रकार की उपासनाओं के विधि—विधान अपने आप गोपनीय और गुरूमुखगम्य है। बिना सद्गुरू के तांत्रिक उपासना में सिद्धि और सफलता पाना सम्भव नहीं। सच बात तो यह है कि किसी भी प्रकार की तांत्रिक उपासना खतरे से खाली नहीं है। प्राण का संकट बराबर बना रहता है, विशेषकर तमोगुणी तंत्रोपासना में।

तांत्रिक उपासना के पाँच अंग हैं—पटल पद्धति, कवच, सहस्त्र नाम और स्तोत्र। सृष्टि स्थिति प्रलय आदि भी तंत्रशास्त्र का विषय है। इसी प्रकार देवी—देवताओं, अंग—प्रत्यंगों, आयुधों, आसनों और उनसे संबंधित ध्यान, मंत्र, यंत्र, पुरश्चरण, अर्चन सर्वसाधन भी तांत्रिक उपासना के विषय हैं। ध्यानयोग तो तंत्रोपासना की मूलभित्ति है। इसके अभाव में किसी भी तंत्रोपासना में सफलता असम्भव है। वास्तव में ध्यान ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जो तंत्र को 'योग' से जोड़ती है।

षट्कर्म साधन क्या है? मेरे यह पूछने पर भादुड़ी महाशय ने कहा—मारण, उच्चाटण, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन और शान्ति कर्म। ये षट्कर्म है और तमोगुणी तंत्रोपासना का मुख्य विषय है। इसी प्रकार तमोगुणी तंत्रोपासना के अन्तर्गत आठ विद्यायें भी हैं, जिन्हें डाकिनी विद्या, हाकिनी विद्या, शाकिनी विद्या, महापात्र विद्या, कपाल विद्या,

कंकाल विद्या और दस महाविद्या कहते हैं। ये अष्ट विद्यायें भयंकर तामसिक विद्यायें है।

इस प्रसंग के अंत में भादुड़ी महाशय ने कहा—तंत्र शब्द के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत सभी प्रकार के ज्ञान—विज्ञान विषयक ग्रन्थ आ जाते है। तंत्र शब्द का प्रयोग व्यापक है। शंकराचार्य ने तो "सारण्य" को भी तंत्र के नाम से संबोधित किया है। महाभारत में न्याय, धर्म, शास्त्र योग—शास्त्र, औषधि शास्त्र, काम—शास्त्र, ज्योतिष—शास्त्र आदि के लिए भी 'तंत्र' शब्द का प्रयोग किया गया है।

तंत्र की मूलभित्ति 'वेद'

तंत्रों की आध्यात्मिक कल्पना बड़ी ऊँची है। परब्रह्म उसके लिये निर्विकार—सत्, चित् और आनन्द स्वरूप हैं उसकी शक्ति ब्रह्म शक्ति है। और ब्रह्मशक्ति ही तंत्र की शक्ति हैं—जो तांत्रिक उपासना भूमि में महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली के रूप में प्रतिष्ठित होकर प्रकृति के तीनों गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। यह तो मानना ही पड़ेगा की तंत्र के जितने भी सिद्धान्त है वे सब उपनिषदमूलक है। इसी प्रकार ऋग्वेद के "वागाम्भृणी सूत्र में जिस शक्ति की चर्चा की गयी है—वास्तव में तंत्र उसी के भाष्य माने जाते है। निस्सन्देह तंत्रशास्त्र वेद मूलक है।

तंत्र के दो प्रकार और दो धारायें

भादुड़ी महाशय ने कहा—दो प्रकार के तंत्र है—पहला है वेदानुकूल और दूसरा है वेदवाह्य। कालिमय तंत्रों का मूल स्रोत वेद से ही प्रवाहित होता है। विचारपूर्वक यदि देखा जाय तो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत की आध्यात्मिक साधना की दो धाराएँ प्रवाहित होती चली आ रही है। वे दो धाराएँ है—वैदिकधारा और तांत्रिकधारा पहली वैदिकधारा प्रकट रूप से सभी के लिये है। उसके सिद्धान्त को सभी वर्ग के लोग स्वीकार कर सकते है। उसके साधना—उपासना का द्वार सभी

के लिये खुला है। लेकिन दूसरी धारा यानी तांत्रिक धारा में ऐसी बात नहीं है। वह चुने हुए अधिकारियों के लिए है। इस धारा में संस्कार, योग्यता और पात्रता का विशेष महत्व है। वास्तव में तांत्रिकधारा जिस साधना–उपासना का प्रतिनिधित्व करती है–वह गुह्य, गोपनीय है। उसका द्वार सभी के लिए नही खुला है। वैदिक और तांत्रिक दोनों शक्तिसाधना का प्रतिपादन करती है। मगर उनमें अन्तर है। वैदिक साधनाभूमि में साध्य (शक्ति) साधक के बीच में साधनरूप देवता है। देवता के माध्यम से शक्ति की उपासना है। वैदिक साधना–उपासना में बाहर से तो देवता माध्यम दिखलाई देते है। मगर ऐसी बात नहीं, देवगण एक ही शक्ति के विभिन्न रूपों और उनके गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो देवता शक्ति के जिस रूप व गुण का प्रतिनिधित्व करते है वेद में उनके अपने मंत्र है और उस मंत्र द्वारा उसी शक्ति की साधना या उपासना होती है। मगर तांत्रिक साधना में ऐसी बात नहीं है। तांत्रिक साधनाभूमि में देवता की आवश्यकता नहीं। उनका महत्व व गरिमा गौण है। तांत्रिक साधना व उपासना का तात्पर्य है कि बिना किसी माध्यम के सीधा शक्ति और उसके विभिन्न रूपों से संबंध। इसीलिये तांत्रिक साधना की दीक्षा अथवा उसका उपदेश सभी के लिए सम्भव नहीं। वास्तव में तंत्रोपासना अथवा तंत्र साधना–तलवार की धार पर रखी शहद की बूंद है चाहो तो चाट सकते हो, मगर जीभ न चिर जाय इसका ख्याल रखना होगा।

साधक कातिकबाबा

लगभग तीन सौ वर्ष पहले बनारस के दक्षिणी क्षेत्र में घनघोर जंगल था। इसीलिये उन क्षेत्र को बनकटी कहते थे। चालिस–पैतालिस वर्ष पहले बनकटी जैसा वातावरण तो नहीं था, लेकिन दुर्गाकुण्ड, संकटमोचन, लंका और नगवा के आस–पास का क्षेत्र अवश्य जंगल जैसा था। इमली, पाकड़, पीपल, बेर, नीबू और कैथ के घने वृक्षों से

ढका था वह क्षेत्र। अघोरसाधक बाबा कीनाराम के आश्रम से सटे हुए ताड़ खजूर और बेल के इतने ढेर सारे पेड़ थे कि उसे जंगल ही कहा जाय तो ठीक रहेगा।

उसी जंगलों और सुनसान वातावरण में एक झोपड़ी थी। झोपड़ी की दीवारें कच्ची थी और छत थी, खजूर और ताड़ के पत्तों की। झोपड़ी के सामने एक कुंआ था और उस कुएं के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के सुगन्धित फूलों की क्यारियाँ थी। वहाँ का वातावरण सचमुच बहुत ही शान्त और मनोरम था। वह स्थान किसी प्राचीन ऋषि मुनि जैसा लगता था।

जिस झोपड़ी की चर्चा मैंने की है उसमें एक महात्मा रहते थे। उनका वास्तविक नाम क्या था यह तो किसी को नहीं मालूम लेकिन लोग उन्हें कातिक बाबा के नाम से पुकारते थे। कातिक बाबा इसलिए नाम पड़ा था कि वे हर साल पूरा कार्तिक मास अन्न फल ग्रहण नहीं करते थे और मौन रहते थे। कार्तिक पूर्णिमा को नौ दुर्गा की मृणमय मूर्ति की स्थापना कर पूजन करते थे, और फिर उसके बाद होता था भण्डारा। भण्डारे में सैकड़ों स्त्री–पुरुष भोजन करते थे। भोजन में होता था दो–तीन तरह की सब्जी, पूड़ी, कचौड़ी और मोतीचूर का लड्डू। सब पदार्थ असली घी में।

बाबा बिल्कुल फकीर थे। न किसी से कुछ मांगते थे और न तो किसी का कुछ लेते ही थे। भण्डारे का सारा इन्तजाम कैसे होता था। उसके लिए कहाँ से रुपया आता था–इसका रहस्य किसी को भी मालूम न था। इतना ही नहीं बाबा शाहखर्च भी थे। कभीकदा गरीबों की आर्थिक सहायता भी कर दिया करते थे। एक व्यक्ति कोईरी जाति का था। बहुत गरीब था। दोनों समय रोटी के लाले थे। एक कन्या थी उसे। उम्र अधिक हो गयी थी। पैसे के अभाव में विवाह नहीं हो पा रहा था। बाबा ने भरपूर सहायता की। कन्या की शादी काफी

धूमधाम से सम्पन्न हो गयी। कुल मिलाकर बाबा एक रहस्यमय व्यक्ति थे। एक बार मैं भी शामिल हुआ था उनके भण्डारे में। चारों तरफ घूम–घूम कर सारा इन्तजाम देख रहे थे बाबा। अचानक उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। अपलक मुझे निहारते रहे काफी देर तक। उस समय उनकी आँखों में एक विचित्र सी चमक देखी मैंने।

जब भोजन कर चलने लगा तो इशारे से बाबा ने मुझे अपने नजदीक बुलाया। सहमा सा खड़ा हो गया मैं उनके सामने। बाबा ने अपनी फटी पुरानी झोली में हाथ डालकर कुछ नोट निकाला और मुझे थमाते हुए कहा–ले रख लें, काम आयेगा तुझे।

आश्चर्य हुआ मुझे। मेरा एम.ए. फाइनल था। फीस जमा करनी थी, पुस्तकें खरीदनी थी इनके अलावा और भी जरूरी खर्च थे। चिन्तित था। कुल तीन सौ रुपये चाहिए था मुझे उस समय। बाहर आकर नोट गिना। स्तब्ध रह गया। पूरे तीन सौ थे। कैसे जान गये बाबा मेरी आवश्यकता। समझ में नहीं आया मेरे।

उस दिन परमभक्त बन गया बाबा का मैं। जब भी समय मिलता बाबा के यहाँ चला जाता और घण्टों बैठा रहता। कोई खास बात न होती। लेकिन बाद में धीरे–धीरे बाबा से संबंधित बहुत–सारी जानकारी मिली मुझे।

कातिक बाबा चम्बा (हिमाचल प्रदेश) के मूल निवासी थे। परिवार में माता–पिता, भाई–बहन और पत्नी थी। बाबा शुरू से ही एकान्तप्रिय और मनस्वी थे। एक दिन न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर परिवार त्याग दिया और हरिद्वार चले गये। वहाँ उन्होंने साधु का बाना धारण कर लिया। लेकिन उनके मन की अशान्ति दूर नहीं हुई। बराबर भटकते रहे। एक दिन जोशी मठ के करीब एक महात्मा से भेंट हुई उनकी। महात्मा कोई सिद्ध पुरुष थे। बाबा उनके साथ कई साल रहे। इस अवधि में उक्त महात्मा द्वारा जहाँ एक ओर बाबा को तंत्र

का विषद ज्ञान प्राप्त हुआ—वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की तांत्रिक सिद्धियाँ भी प्राप्त हुई। जिनमें एक सिद्धि थी "वटयक्षिणी सिद्धि"। वटयक्षिणी की सिद्धि अतिमहत्वपूर्ण सिद्धि मानी जाती है तंत्र की। इस सिद्धि के फलस्वरूप साधक को किसी भी प्रकार का अभाव नहीं रहता। इतना ही नहीं, वह किसी के मन की बात भी जान जाता है। किसी के विचारों और भावों से भी अवगत हो जाता है। कुछ समय बाद महात्मा के समाधि लेने के बाद बाबा काशी चले आये और हरिहर बाबा के आग्रह पर काशी में झोपड़ी डालकर रहने लगे।

साधना उपासना की आवश्यकता क्यों

जैसा कि मैंने कहा—बाबा तंत्र के विद्वान थे। तंत्र के कई गूढ़ विषयों की जानकारी थी उन्हें। इसमें सन्देह नहीं।

एक दिन सहसा मैं उनसे प्रश्न कर बैठा साधना—उपासना, पूजा—अर्चना की आवश्यकता क्यों है। क्या ये सब आवश्यक है।

बाबा मेरा प्रश्न सुनकर हँसे और फिर कहने लगे—जितनी प्राचीन मानव सभ्यता और संस्कृति है। उतनी ही प्राचीन साधना और उपासना है। तुमको मालूम होना चाहिए। इस विश्व ब्रह्माण्ड में परम चेतना—जिसे तुम ईश्वर, परमेश्वर, भगवान आदि नामों से पुकारते हो। उसकी भिन्न—भिन्न प्रकार की अद्‌भुत और रहस्यमयी शक्तियाँ क्रियाशील हैं। उन शक्तियों की संख्या कितनी है बतलायी नहीं जा सकती। जितने प्रकार के देवता हैं, वे सब के सब उन्हीं शक्तियों के वाहक रूप हैं—समझ गये न। सभी देवता शक्ति के प्रतीक भी हैं। और अपनी—अपनी शक्तियों से बंधे हुए भी है। शक्ति के इसी बंधन का नाम "छन्द" है। सभी देवता का अपना—अपना "छन्द" है। और प्रत्येक छन्द का अपना मंत्र है।

बाबा बोले—जानते हो, सुख दो प्रकार का है—एक है लौकिक यानि भौतिक सुख और दूसरा है—पारलौकिक सुख। इन दोनों प्रकार

के सुखों को प्राप्ति करने के लिये प्राक् काल से ही मनुष्य विभिन्न प्रकार की साधनाओं और उपासनाओं द्वारा दैवी शक्तियों का आश्रय लेता आ रहा है। जिस फल की उपलब्धि के लिए मनुष्य को अशान्त परिश्रम करना पड़ता है। कभी–कभी इतने परिश्रम के बाद भी फल नहीं मिलता है वही फल दैवी शक्तियों कृपा अथवा अनुकम्पा से प्राप्त हो जाता है।

बाबा बोले–मनुष्य एक निरीह प्राणी है। उसके शक्ति सामर्थ्य की सीमा की अति हुई है। उसके भीतर चेतना का उतना ही अंश है जितने से वह जी सके। ऐसे ही और बहुत से कारण है जिनके फलस्वरूप प्रारम्भ में मनुष्य अदृश्य रूप से विद्यमान दैवी शक्तियों का सहारा लिये बिना अपने किसी भी मानवीय व्यापार में अग्रसर न हो सका और न तो किसी भौतिक क्षेत्र में सफलता ही पा सका। शुरू से ही मनुष्य के लिये प्रकृति एक रहस्यमयी वस्तु रही है। प्रकृति की भयानकता, रौद्रता के साथ ही साथ उसके विमुग्धकारी मोहक दृश्यों ने जहाँ अपने प्रति मानव मस्तिष्क में सहज रूप से जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि की वहीं किसी अज्ञात चेतना जिसे परमचेतना "परमेश्वर" जगन्नियता कह सकते हैं– के प्रति मानव हृदय में श्रद्धा, भक्ति के भाव विनम्रता, तल्लीनता, समर्पण की अभिलाषा आदि की सहजधारा भी प्रवाहित की। अगर ऐसा न हुआ होता तो–जानते हो मनुष्य कभी भी पशुता से ऊपर न उठता। एक पशु में और मनुष्य में कोई भेद न होता।

सच पूछा जाय तो मनुष्य का परम पुनीत परमोत्कर्ष तथा परम पुरूषार्थ "देवत्व" की प्राप्ति ही है। युग धर्म, जाति धर्म, सामाजिक स्थिति, जलवायु, रहन–सहन तथा अन्य विशेषताओं के फलस्वरूप मनुष्य ने विभिन्न रूप से कदम उठाये। जिसका परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में सभी देशों की संस्कृतियों ने किसी न किसी रूप

में देवभावना और देवोपासना को जन्म दिया।

वास्तव में, बाबा बोले—मानव सभ्यता का वह स्वर्णयुग था। इसमें सन्देह नहीं। इस बात को भली—भांति समझ लेनी चाहिए सम्यक्संकल्प के बाद ही सम्यक्प्रयत्न का अवसर आता है। शुभसंकल्प का अवसर आता है। शुभसंकल्प ही मनुष्य को उन्नति के पथ पर ले जाते हैं। देवभावना से देवापासना का युग इस दृष्टि से अधिक सभ्य और समृद्ध समझना चाहिए।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के इतिहास में मनुष्य ने अनादि काल से ही देवभावना या देवोपासना की बात ही क्या, देव भुवत्ता का भी अनुभव किया। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसी के फलस्वरूप भारत को संस्कृति और सभ्यता के इन उदात एवं अत्यन्त प्रशस्त सिद्धान्तों को सर्वप्रथम जन्म देने का गौरव मिला। इतना ही नहीं समय—समय पर देवताओं की क्रीड़ा भूमि भी भारत को होने की गरिमा मिली और महिमा मिली, पुराणपुरुष के पुनीत चरणों से प्लावित होने को बार—बार।

इन विवरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत के सुदूर अतीत, वैदिक युग अथवा वैदिकपूर्व युग सिन्धु सभ्यता युग में, जो पूजा, साधना, उपासना आदि की परम्परा अथवा पद्धति प्रचलित थी और जिसके थोड़े से साहित्यिक एवं कलात्मक प्रमाण प्राप्त होते है। उनसे हम उस पद्धति के सार्वजनिक स्वरूप को स्थिर नहीं कर सकते हैं।

बाबा बोले—सच पूछा जाय तो मानव सभ्यता और संस्कृति की कथा मनुष्य के रहन—सहन, भोजन—भजन आच्छादन और चिन्तन—मनन की काया है। मनुष्य विचारवान प्राणी है। वह शुरू से ही अपने स्रष्टा अपने संरक्षक और उपकारक के संबंध में सोचता आया है। शायद तुमको मालूम होगा एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसका नाम

है "समरांगण सूत्रधार"। उसका एक अध्याय है–"सहदेवाधिकार"। जिसका सारांश है कि यदि मनुष्य पशु नहीं है तो वह कभी भी भूल नहीं सकता कि एक ऐसा भी समय था। जबतक देवताओं का रहचर था उनकी सहयोगी था, उनकी सहायता करते थे और सहयोग देते थे, समय–समय पर। देवताओं के निमन्त्रण पर मनुष्य देवलोक जाता था और उसके आग्रह पर देवता धरती पर आते थे।

देवताओं और मनुष्यों के बीच कब और कैसे पार्थक्य हुआ यह तो बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन उस पार्थक्य ने मनुष्य की आत्मा में फिर से देवमिलन की उत्कन्ठा अवश्य जागृत कर दी। यदि गहराई से विचार किया जाय तो उसी महती उत्कन्ठा के फलस्वरूप देवताओं की सहायता पाने के लिए उनका सहयोग पाने के लिये तथा उनका सामीप्य अथवा उनका सानिध्य पाने के लिये जिन माध्यमों का आविर्भाव समय–समय पर हुआ वह है साधना, उपासना, पूजा–अर्चना आदि। इन सबके द्वारा जो प्रयत्न किया जाता है उससे अवश्य मनुष्य को देवताओं का अनुग्रह सहयोग तथा कृपा अनुकम्पा अवश्य रूप से उपलब्ध होता है इसमें सन्देह नहीं।

चाहे वैदिक साधना, उपासना हो या हो तांत्रिक साधना, उपासना सभी के पीछे वही उत्कन्ठा है और वही है सामीप्य पाने की लालसा। इतना ही नहीं सभी दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त वेदों, शास्त्रों, पुराणों और तमाम उपनिषदों में भी इसी चेष्टा के दर्शन होते हैं।

वेदों के कर्मकाण्ड, उपनिषदों के 'आत्मज्ञान" ब्रह्मज्ञान तत् त्वमसि, अहमास्मि आदि अनेक आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त इस तथ्य के प्रबल प्रमाण है। इसमें सन्देह नहीं। भारत की आध्यात्मिकता को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य अपनी आत्मा जो परमात्मा का ही एक लघु रूप है, में अपने सहयोगी और

साकार देव से भौतिक और पार्थिव पार्थक्य के होते हुए भी मानस पार्थक्य को कभी भी सहन नहीं कर सका। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि देवताओं और मनुष्यों के मानस मिलन की कथा का ही दूसरा नाम है वैदिक और तांत्रिक साधना, उपासना।

प्रतिमा-पूजा का आविर्भाव

उपर्युक्त विवरण से सहज ही समझ में आ सकता है कि कातिक बाबा तंत्र के कितने ऊंचे विद्वान थे। उनकी साधना भी कम रहस्यमयी नहीं थी। न जाने क्यों उनका मुझ पर विशेष अनुग्रह हो गया था। किसी दिन किसी कारणवश न जा पाता तो नाराज हो जाते। कहते—तू जिस दिन नहीं आता उस दिन कुछ अच्छा नहीं लगता।

हर अमावस्या की साँझ के समय बाबा की कुटिया में एक लड़की आती थी, बिल्कुल काला रंग और आयु यहीं बारह—तेरह साल के आस—पास। अजीब सा तेज था उसके चेहरे पर। आँखे भी बड़ी—बड़ी और ज्योतिर्मयी थी। किसी की तरफ न वह देखती थी और न तो किसी से बोलती—चालती थी। कहाँ से आती थी, और क्यों आती थी—यह किसी को भी मालूम नहीं था। बड़ा ही रहस्यमय व्यक्तित्व था उस बाला की। एक दिन बाबा नहीं थे। कहीं गये हुए थे। मैं बाबा की प्रतीक्षा में बैठा था। और कोई नहीं था। अचानक वह रहस्यमयी लड़की प्रकट हुई। उसे देखते ही अमावस्या का ख्याल आया मुझे। लड़की ने मेरी ओर नहीं देखा। और बिना कुछ बोले तेजी से कुटिया के भीतर घुस गयी। मैं देखता रह गया। थोड़ी ही देर बाद बाबा आ गये। वे मुझे साथ लेकर कुटिया में चले गये। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। लड़की भीतर कहीं नहीं थी, कहाँ चली गयी। वह मेरे सामने गयी थी। भ्रम नहीं हुआ था। कुटिया में दरवाजा भी एक ही था। और दरवाजे पर मैं बैठा था। अगर बाहर निकल कर वह जाती तो अवश्य देखता मैं। न जाने क्यों बाबा से लड़की के

विषय में कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई मेरी। नित्य की तरह बाबा ने तंत्र विषयक प्रसंग छेड़ दिया। बोले–प्रत्येक मनुष्य में किसी न किसी रूप में धार्मिक चेतना को कर्मकाण्ड में नियोजित कर उसके द्वारा शुरू से ही देवी शक्तियों के क्रोध को शान्त करने में लगा है। सनातन से वह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों रूपों में इस प्रयत्न में सचेष्ट है। मनुष्य का परम पुरुषार्थ ''मोक्ष'' है। अमरत्व है, और है–देव भूवत्व। वैदिक साधना हो या तांत्रिक साधना या उपासना। सभी का एक मात्र लक्ष्य है मानव जीवन दर्शन में देवदर्शन की ज्योति को पूज्यबलित करना।

तुमको मालूम होना चाहिए–बाबा रूककर आगे बतलाने लगे–सभी मनुष्यों का बुद्धिस्तर, विचारस्तर, भावस्तर और हृदय की संवेदना समान नहीं होती। मानव समाज को विभिन्न वर्गों में अथवा विभिन्न स्तरों में विभाजित करने की जो प्राचीन परम्परा है उसके भीतर यही ''मर्म'' हैं। इसीलिए जहाँ प्रबुद्ध विद्वान, मेधावी संस्कार सम्पन्न और सभी दृष्टि से योग्य ब्राह्मणों के लिए आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान हैं वहीं अज्ञानी, संस्कारविहीन निम्न श्रेणी के मनुष्यों के लिये न तो ऐसे दुरूह एवं जटिल विषय बोधगम्य ही हैं और न है उपकारक।

आपके कहने का मतलब यह है कि ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान का अधिकारी केवल ब्राह्मण ही है, मैने कहा। अन्य वर्ग के लोग नहीं। बाबा बोले–एक बात अवश्य है। वह यह कि ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व होना चाहिए। ब्राह्मणत्व का मतलब है–ब्रह्मसंस्कार। अगर कोई ब्राह्मण विजातीय स्त्री से विवाह करता है या कोई ब्राह्मणी किसी विजातीय पुरुष से विवाह करती है और उससे सन्तान उत्पन्न होती है तो उस सन्तान में 'ब्राह्मणत्व' नहीं मिलेगा। ऐसे वर्णशंकर ब्राह्मण के लिये आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान का कोई महत्व नहीं है। वह उनका अधिकारी नहीं है। अतः ब्रह्मणेतर के लिये कोई न कोई मार्ग होना चाहिए। उनकी

उपासना के लिये उनकी आत्मतृप्ति के लिये, उनकी देवभावना की प्रेरणा के शमन के लिये, कोई न कोई मार्ग होना चाहिए। उनकी उपासना के लिये उनकी आत्मतृप्ति के लिये, उनकी देवभावना की प्रेरणा के शमन के लिये, कोई न कोई आचार और कोई न कोई पद्धति होनी चाहिये। इसके लिये भारतीय मनीषियों ने समाज के इस प्रबल अंग के लिये देवोपासना को प्रतीकोपासना के रूप में उपयोगी समझा। यही वह स्थल है जहाँ प्रतिमा का आविर्भाव होता है। प्रतीकोपासना का ही दूसरा नाम "प्रतिमापूजा" है। देवता का जो प्रतीक रूप है उसी को प्रतिमा की संज्ञा दी गयी है।

भारतीय देवोपासना भूमि में प्रतिमापूजा का अपना विशिष्ट स्थान है। उसका अपना महत्व है। मगर एक बात यहाँ समझ लेनी चाहिये वह यह कि हिन्दू धर्म का परमलक्ष्य निःश्रेयस यानी मोक्ष है। मोक्ष परम पुरूषार्थ है। और इस पुरूषार्थ की उपलब्धि प्रतिमापूजा से सम्भव नहीं। इसलिए कि "प्रतिमापूजा" पुनर्जन्म कारक है। 'पूजा' का जो फल है उसको भोगने के लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ेगा। किसी भी देवता की प्रतीकोपासना का फल थोड़ा तो इसी जन्म में मिल जाता है और शेष के लिये तो अगला जन्म लेना ही पड़ेगा। यदि कोई यह चाहे कि पूरा फल वर्तमान जीवन में ही मिल जाय तो यह असम्भव है। एक बात और है वह यह कि जिस गुण के देवता की प्रतिकोपासना हम करते है उसी के अनुसार हमे फल भी मिलता है। पुनर्जन्म कारक होने के फलस्वरूप ही मुमुक्षु यानी मोक्ष के अभिलाषी व्यक्ति अथवा सन्यासी के लिये किसी भी धातु या पदार्थ से निर्मित प्रतिमाओं की पूजाअर्चना वर्जित है। यदि करते हैं तो फिर वे मोक्ष के अधिकारी नहीं रह जाते। जो लोग योगपरक तंत्र मार्ग द्वारा परममुक्ति कैवल्य अथवा मोक्ष के अभिभाषी हैं वे देवार्चन अपने हृदय में ही करते हैं बाह्यार्चन उनके लिये वर्ज्य हैं। उससे पुनर्भव—दोष

आपातित होता है। यही कारण हैं कि तुमको उच्चकोटि के योगी और साधकगण बाह्य रूप से किसी भी देवी–देवता का दर्शन पूजन करते हुये नही मिलेंगे और न तो मिलेंगे तीर्थों में।

प्रतीकोपासना की प्राचीनता

प्रतीकोपासना जिसके गर्भ से प्रतिमापूजा का जन्म हुआ उतनी ही प्राचीन है जितनी की मानव सभ्यता। यह स्वीकार करना अनुचित न होगा कि प्रतीकोपासना की परम्परा वैदिक युग अथवा वैदिक युग से भी प्राचीनतर युग जिसे सिन्धु सभ्यता कहिये या कहिये नाद्य सभ्यता पाषाण कालीन सभ्यता, उत्तर पाषाण कालीन सभ्यता और ताम्र युगीन सभ्यता–विद्यमान रही।

अनेकानेक देवी देवताओं के अलावा पूजा प्रतीकों की सूची काफी लम्बी है–जिनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक है–वृक्ष, नदी, पर्वत, गाय, पक्षी, यंत्र आदि।

बाबा बोले–तुम तो जानते ही हो कि जितने भी साहित्य उपलब्ध है उनमें सबसे प्राचीन साहित्य वेद है। और उनमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम हैं। जिसमें देवों की पुरुष प्रतिमायें परिकल्पित की गयी है। इसके अलावा पूर्व वैदिक काल की ऋचाओं, उत्तर वैदिक काल यानी ऋग्वेदेतर वैदिक साहित्यों, यजुर्वेद, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद, वेदान्त सूत्र साहित्यों स्मार्त साहित्यों, प्राचीन व्याकरण साहित्यों अर्थशास्त्रों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत में भी प्रतीकोपासना मतलब कि प्रतिमापूजा संबंधित प्रचुर सामग्री उपलब्ध हैं। पुराण तो प्रतिमा पूजा के धर्म ग्रन्थ हैं ही एवं पुराणों से प्रभावित पुराणेतर विपुल साहित्य जैसे काव्य, नाटक तथा प्राख्यायिका आदि प्राचीन लौकिक साहित्य में भी प्रतीकोपासना को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रतीकोपासना में सर्वाधिक महत्व यंत्र पूजा का है। यहाँ यंत्र

शब्द का अर्थ आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक यंत्रों से है। यंत्र तो मशीन को कहते हैं। मशीनों के अविष्कारों से आधुनिक जगत में जिस द्रुतगति से व्यावसायिक, राजनीतिक एवं आर्थिक तथा सामाजिक क्रांतियाँ सुकर हो सकी हैं, उससे यंत्रों की महिमा का हम अनुमान लगा सकते हैं। जब पार्थिव यंत्रों की यह महिमा है तो रहस्यात्मक एवं आध्यात्मिक यंत्रों से पवित्र तथा सिद्ध किया गया व अनुप्राणित धार्मिक यंत्रों की गरिमा—महिमा की गाथा में कितने ही ग्रन्थ लिखे जा सकते है। उपासना अथवा पूजा भूमि में यंत्रों का निर्माण क्रिया पद्धति के अनुसार विभिन्न धातुओं पर होता है। सात्विक यंत्र चांदी, सुवर्ण और स्फटिक पर निर्मित किए जाते हैं। राजसी यंत्र तांबा, पीतल और लोहा पर निर्मित किए जाते हैं और इसी प्रकार तामसिक यंत्र का निर्माण होता है अस्थि, काष्ट पर और चमड़े पर।

जैसे दैवी शक्तियों का प्रतीकात्मक रूप मूर्ति अथवा प्रतिमा है। उसी प्रकार वर्णाक्षर और अंकाक्षर एवं बीजाक्षर भी हैं। तुमको मालूम होना चाहिए बाबा बोले — जितने स्वर हैं वे आधार हैं और जितने वर्ण हैं वे आधेय हैं। तंत्र के अनुसार पहला शिवतत्व का और दूसरा शक्ति तत्व का प्रतीक है। बिना स्वर के वर्ण का उच्चारण संभव नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि शिव, और शक्ति एक दूसरे से पृथक नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक वर्ण अथवा अक्षर किसी न किसी देवी शक्ति का अप्रत्यक्ष रूप में प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिए उन्हें वर्णमाला कहते हैं। वर्णाक्षर कहो या कहो वर्णमातृका दोनों एक ही बात है। किस वर्णमातृका से कौन सी शक्ति का संबंध हैं—यह तंत्र का गूढ़ विषय है। प्राचीनकाल में इससे ऋषिगण परिचित थे। वे वर्णो के आचार पर उनमें निहित शक्तियों का संयोजन कर "मंत्र" का निर्माण करते थे। इसीलिये उन्हें "मंत्र—द्रष्टा" कहा गया तुमको मालूम होना चाहिए यंत्र में भी वर्ण मातृकाओं का प्रयोग होता है।

जिस यंत्र के कोष्टकों में वर्णमातृकाएं होती है उसे वर्णाक्षर यंत्र कहते है।

वास्तव में यंत्र एक प्रकार का पीठ है। पीठ क्या होता हैं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में बाबा ने बतलाया कि तंत्र के अन्तर्गत जितने भी विज्ञान है। उनमें एक "पीठ विज्ञान" भी है। पीठ का मतलब है वह स्थान जहाँ दैवीशक्ति केन्द्रित अथवा नियोजित होती है। जिस स्थान पर पीठ का निर्माण होता है उस स्थान का संबंध दैवीराज्य से हो जाता है। तंत्र में पीठ स्थान को "पीठासन" कहते हैं। पीठासन दो प्रकार के होते हैं–नित्य और अनित्य, यानी स्थायी और अस्थायी। जितने भी तांत्रिक देवी–देवता है, उन सबकी स्थापना नित्य (स्थायी) पीठासन पर होती है। कभी अवसर मिलेगा तो तुमको इस संबंध में विस्तार से बतलाऊंगा। पहले थोड़ा यंत्रों के विषय में और समझ लो, बाबा बोले–जैसा कि मैने कहा–यंत्र पीठासन है, मतलब है कि दैवी शक्तियों का केन्द्र। यंत्र पीठासन भी स्थायी और अस्थायी होते हैं। स्थायी यंत्र पीठासनों में श्रीयंत्र ही मात्र केवल है। और शेष अस्थायी माने जाते हैं।

आपने कोष्ट की चर्चा की है – वह क्या है?

यंत्र का आकार तो पीठासन है जिसे शक्ति के विभिन्न रूपों को ध्यान में रखकर उन्हें एक विशिष्ट सीमा में बांधा जाता है उसी विशिष्ट सीमा को "कोष्टक" कहते हैं। एक यंत्र में कई कोष्टक होते हैं। कोष्टक को तुम प्रचलित भाषा में "खाना" भी कह सकते हो। यंत्र के जितने भी कोष्टक या खाने होते है वे यंत्र के आकार की सीमा में बंधे रहते हैं। इसी प्रकार वे आकार भी एक विशेष सीमा में बंधे रहते हैं। जिसे "भूपुर" कहते हैं। भूपुर विशिष्ट यंत्रों में रहते है, सभी में नहीं।

वर्णाक्षर यंत्र की तरह अंकाक्षर और बीजाक्षर यंत्र भी है। जिस

यंत्र के कोष्टकों में केवल अंक रहते हैं उसे अंकाक्षर यंत्र कहते हैं। इसी प्रकार जिस यंत्र के कोष्टकों में बीजाक्षर होते हैं। उसे बीजाक्षर यंत्र कहते हैं।

तंत्र शास्त्र में बीजाक्षरों का सर्वाधिक महत्व है इसलिए कि कई वर्णमातृकाओं के संयोग से इनका निर्माण होता है। जिसके फलस्वरूप वे एक साथ कई प्रकार की देवी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बीजाक्षरों के अभाव में कोई भी यंत्र पूर्ण नहीं समझा जाता। वैसे बीजाक्षरों के अपने स्वतंत्र मंत्र भी है, जिन्हें बीजाक्षर मंत्र कहते हैं। बीजाक्षरों का प्रयोग "यंत्र" के रूप में भी होता है। ऐसे यंत्र को बीजाक्षर यंत्र कहते हैं। बीजाक्षर यंत्र अत्यधिक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली माने जाते है। वे तत्काल अपना फल दिखाते हैं।

बीजाक्षर यंत्र पाँच प्रकार के होते हैं—संयुक्त बीजाक्षर यंत्र, एक बीजाक्षर यंत्र, अंकयुक्त बीजाक्षर यंत्र, नामयुक्त बीजाक्षर यंत्र और मंत्रयुक्त बीजाक्षर यंत्र।

जिन कोष्टकों में विभिन्न प्रकार के बीजाक्षर हो उसे संयुक्त बीजाक्षर यंत्र कहते हैं।

जिन कोष्टकों में केवल एक ही बीजाक्षर हो उसे "एक बीजाक्षर यंत्र" कहते है। जिन कोष्टकों में बीजाक्षर के साथ अंक भी हो उसे अंकयुक्त बीजाक्षर यंत्र कहते है। जिस कोष्टकों में देवताओं के नाम के साथ बीजाक्षर हो—उसे नामयुक्त बीजाक्षर यंत्र कहते हैं। इसी प्रकार जिस बीजाक्षर यंत्र के साथ मंत्र भी प्रयुक्त होता है उसे मंत्रयुक्त बीजाक्षर यंत्र कहते हैं।

कार्य के अनुसार यंत्र दो प्रकार के होते है—एक धारण यंत्र और दूसरा पूजन यंत्र। पहले प्रकार के यंत्रों को अष्टगंध से भोजपत्र पर अनुकूल योग में लिखकर सोने चाँदी के ताबीज में रखकर भुजा अथवा कण्ठ में धारण करना पड़ता है। दूसरे प्रकार के यंत्र को विधि के

अनुसार धातुपत्र पर उत्कीर्ण कराकर उसका नियम के अनुसार पूजन किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये दोनों प्रकार के यंत्र अपनी–अपनी शक्तियों के प्रभाव के अनुरूप फल प्रदान करते हैं।

अष्टगंध किसे कहते हैं?

अगर, तगर, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, कस्तूरी, केसर गोरोचन और कपूर इन आठ वस्तुओं को "अष्टगंध" कहते हैं।

अनुकूल योग कौन–कौन से है?

यंत्र लिखने के लिये सूर्य या चन्द्र ग्रहण, दीपावली और होली की रात्रि का समय अनुकूल योग है।

यंत्र की पूजा भी होती है?

क्यों नहीं। बिना पंचोपचार पूजा के यंत्र अपना प्रभाव कैसे दिखलायेगा। यंत्र की सिद्धि कैसे होती है।

लिखने से। अपने नाम के अक्षरों को वर्तमान तिथिवार और नक्षत्र की संख्या में जोड़ दे। जितना जोड़ आये उतने हजार बार यंत्र को लाल स्याही और अनार की लकड़ी की कलम से कागज पर लिखे और आटे की गोली में रखकर मछली को खिलाये। यंत्र सिद्ध हो जायेगा। एक बार सिद्ध; किया गया यंत्र केवल एक ही बार प्रयोग में लाया जा सकता है। दूसरी बार प्रयोग के लिये पुनः उसे सिद्ध करना पड़ेगा। यह नियम केवल धारणयंत्र के लिये है पूजन यंत्र के लिये नहीं। वैसे पूजन यंत्र भी कामना पूर्ण होने पर व्यर्थ हो जाता है।

सांझ की कालिमा धीरे–धीरे रात्रि के अन्धकार में बदलती जा रही थी। बाबा की साधना–पूजा का समय हो गया था। मैं जैसे ही चलना चाहा उसी समय मेरी नजर उस रहस्यमयी लड़की पर पड़ी–जिसे देखा था मैंने दो दिन पहले। उसकी मुखमुद्रा विचित्र थी, बिना किसी ओर देखे बाबा के साथ भीतर चली गयी वह।

कौन है वह रहस्यमयी लड़की?

दूसरे दिन जब मैंने बाबा से पूछा—तो वे थोड़ा हंसकर बोले—तू जानना चाहता है कि कौन है वह।

हाँ बाबा।

सुनकर विश्वास करेगा तू।

क्यों नहीं करूंगा बाबा। आप इतने बड़े साधक और तंत्र शास्त्र के महान विद्वान हैं। क्या आपकी बात पर विश्वास नहीं करूंगा मैं। मैंने विनम्र स्वर में कहा। वह मानवी नहीं है।

ऐं, क्या कहा, मानवी नहीं है वह लड़की आश्चर्य और कौतूहल मिश्रित स्वर में बोला मैं।

नही मानवी नही है—वट यक्षिणी है—वट यक्षिणी यक्षलोक की कन्या है। थोड़ा रूककर बाबा आगे बोले—अत्यधिक कठोर साधना बल पर सिद्ध किया है मैने उसे। मानवेतर शक्ति सम्पन्न है वह। इच्छाशक्ति अति प्रबल है उसकी। कुछ भी असम्भव नहीं है उसके लिये। समस्त यक्षिणियों में सर्वश्रेष्ठ वटयक्षिणी है वह समझे न। थोड़ा रूककर बाबा आगे बोले— अत्यधिक कठोर और जीवन—मरण जन्य तांत्रिक साधना के बल पर सिद्ध किया है वटयक्षिणी को मैंने। लेकिन तुझे कैसे प्रत्यक्ष रूप में दिखलायी दे गयी आश्चर्य की बात है। इतना कहकर बाबा झोपड़ी के भीतर चले गये और कपाट बन्द कर दिया उन्होंने।

वटयक्षिणी से सम्पर्क

कुछ दिनों कोलकाता रहना पड़ा मुझे आवश्यक कार्यवश। वापस लौटने पर ज्ञात हुआ कि समाधि ले ली है कातिक बाबा ने। एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं और उसी के साथ एकबारगी कातिक बाबा की छवि उभर आयी मेरे मानसपटल पर। तुरन्त भागा—भागा गया नगवा। गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी कुटिया के चारो तरफ। पीपल के नीचे

समाधि थी बाबा की। अभी समाधि की मिट्टी पूरी तरह सूखी भी नहीं थी। दरवाजा बन्द था कुटिया का। ताला लगा था। समाधि के बगल में बाबा का प्यारा कुत्ता वीरभद्र सिर झुकायें ऊंघ रहा था। उसके आँखों में आँसू छल–छला रहे थे। जैसे बाबा की याद में रो रहा हो। बाबा उसका नाम वीरभद्र क्यों रखे थे यह वही जाने। मेरी उपस्थिति का आभास उसे लग गया था। एक बार सिर उठाकर मेरी ओर करुण दृष्टि से देखा उसने और फिर देखा उस महान साधक के बन्द दरवाजे की ओर, और फिर अपनी गोद में छिपा लिया अपना सिर। काफी देर तक खड़ा रहा मैं मौन साधे चुपचाप। लगा जैसे बाबा किसी भी क्षण दरवाजा फट से खोलकर बाहर निकलेंगे और रहस्यमय ढंग से मुस्कराकर मुझसे पूछेंगे – क्यों पण्डित आज क्या जानना–समझना हैं?

मगर ऐसा नहीं हुआ। पीपल के नीचे पड़े एक पत्थर पर बैठ गया और गाल पर हाथ धरकर सोचने लगा मैं – कौन समझायेगा इतनी सरल भाषा में तंत्र के गूढ़ रहस्यमय विषय को? कौन करेगा साधना निर्देश मेरे लिए? और कौन बतलायेगा मुझे भावराज्य और दैवीराज्य के संबंध में।

पूरी रात सो न सका मैं। बार–बार बाबा का तेजोमय मुख मण्डल थिरक उठता था मानसपटल पर। भोर के समय हल्की सी झपकी लगी और उसी अर्ध तन्द्रिल अवस्था में मुझे दिखलायी दी वह कृष्णवर्णा कन्या। एकबारगी मुग्ध हो गया मैं उसकी मनमोहिनी छवि देख कर। काफी देर तक निरखती रही मेरी आँखे उस यक्षकन्या के अमानवीय अपरूप सौन्दर्य को।

सहसा मोह भंग हुआ मेरा, उस यक्षिणी का कोमल और मधुर स्वर सुनायी दिया मुझे कह रही थी वह – मैं वटयक्षिणी हूँ वटयक्षिणी, पहचाना तुमने मुझे?

हाँ। पहचाना। मैंने हौले से कहा — तुम वही यक्षबाला हो, जिसे साधक कातिक बाबा ने सिद्ध किया था?

हाँ वही हूँ मैं लेकिन अब उनकी मृत्यु हो जाने के कारण उनकी तांत्रिक शक्ति के बंधन से तो मुक्त हो गयी हूँ मैं लेकिन वह मुक्ति व्यर्थ है मेरे लिए।

क्यों? मैंने उत्सुक होकर पूछा?

इसलिए कि अब मैं पृथ्वी के प्रबल गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकलकर अपने यक्षलोक में जा नहीं सकती।

धरती पर यक्षों का उपनिवेश

ऐसी स्थिति में फिर कहाँ रहोगी तुम? मैंने पूछा। इसी धरती पर कई लोकों का अपना—अपना उपनिवेश है। मेरे लोक का भी उपनिवेश है — उदास स्वर में उत्तर दिया उसने।

कहाँ है वह उपनिवेश?

हिमालय के उत्तर की ओर एक रमणीक घाटी में। बड़ा ही सुन्दर स्थान है वह। क्या तुम मेरे साथ चल कर मेरे लोक के उपनिवेश को देखना स्वीकार करोगे? मंद मुस्कराते हुए पूछा उस यक्ष बाला ने।

हाँ अवश्य। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर कह दिया मैंने। फिर थोड़ा सोचकर आगे कहा — लेकिन इतनी दूर किसी अज्ञात प्रदेश में मेरा जाना कैसे सम्भव होगा?

यक्षिणी का मोह और एक अज्ञात प्रदेश की यात्रा

मेरी बात सुनकर हंस पड़ी यक्षबाला। फिर थोड़ा मुस्कराकर बोली—इसकी चिन्ता मत करो तुम। जब तुमको पहली बार बाबा के पास देखा तभी से तुम्हारे प्रति आकर्षित हूँ मैं। प्रेम हो गया है तुमसे मुझे। उसी समय से अदृश्य रूप से सदैव तुम्हारे निकट रहने लगी हूँ मैं। तुमको कभी अपनी उपस्थिति का आभास लगने न दिया मैंने।

सचमुच तुम पर मुग्ध हूँ और हूँ तुम पर मोहित मैं। क्या तुम मुझसे प्रेम करोगे? क्या तुमसे प्रेम करने योग्य हूँ मैं? हाँ! बिल्कुल यक्षिणी बोली—तुम सुन्दर हो, आकर्षक और मन को विचलित करने वाला व्यक्तित्व है तुम्हारा। तुम्हारी आँखों में प्रखर तेज है आत्मा का। सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुम्हारे शरीर से पौरुष की इतनी ऊर्जा बराबर प्रस्फुटित होती है कि कोई भी पागल और उन्मत्त हो सकता हैं मैं तो एक साधारण यक्षिणी हूँ। जब तुम मुझे हृदय से एकान्त में स्मरण करोगे उसी समय तत्काल पंचभूत तत्वों के अणुओं को संगठित कर जिस रूप में तुम चाहोगे उस रूप में तुम्हारे सामने आ जाऊँगी मैं थोड़ा रूककर वह आगे बोली तुम्हे सिद्ध करना होगा पहले मुझे। वह कैसें? थोड़ा व्यग्र होकर पूछा मैंने मेरी आतुरता देखकर हँस पड़ी यक्ष कन्या। समय पर बतला दूँगी सिद्धि की विधि। अच्छा अब चलो मेरे साथ। यक्षिणी के इतना कहते ही मैं अपने आपमे हल्कापन का अनुभव करने लगा। न जाने कैसी विचित्र अनुभूति होने लगी मुझे। बतला नही सकता मैं। एक गहरा शून्य भर गया मेरे भीतर। न जाने कैसे और किस मार्ग से पहुँच गया मैं हिमालय के ऊपर। चारो ओर बर्फ ही बर्फ। ऊपर नीला आकाश और नीचे हिमाच्छादित हिमालय के उत्तुंग शिखर। और तभी कोमल और मधुर स्वर सुनाई दिया यक्षिणी का। मैं फिर कहती हूँ—तुम्हारे प्रति आकर्षित हूँ मैं। तुम्हे चाहती हूँ मैं। सचमुच तुमसे प्रेम करती हूँ मैं। तुम्हारे बिना रहा नहीं जायेगा मुझसे। स्निग्ध चाँदनी जैसा रूपहला प्रकाश फैल रहा था उस शून्य और मनोरम वातावरण में। सिर घुमाकर देखा उस यक्षकन्या की छवि बड़ी ही मोहक लगी उस प्रकाश में। नीलवर्णी काया, मोरनी जैसी सरल निश्चल रतनारी आँखे, क्षीणकटि, उन्नतउरोज और सावन—भादों की घटा जैसी पीठ पर बिखरी घनी स्याह केशराशि।

उस लावण्यमयी रूपसी के मादक स्पर्श से बार—बार सिहर उठता

था मेरा सारा शरीर। धीरे–धीरे एक अबूझ सा नशा छाने लगा मेरे मन मस्तिष्क पर।

क्या वास्तव में तुम मुझसे प्रेम करने लगी हो? विश्वास नही होता।

मनुष्य हो न? कैसे होगा विश्वास? भ्रम सन्देह मनुष्य का जो गुण है।

नहीं ऐसी बात नहीं है मैंने धीरे से कहा–सच तो यह है कि कहां मैं साधारण मनुष्य और तुम एक मानवेतर प्राणी बस इसी कारण ... मेरा वाक्य अधूरा रह गया। बीच में ही बोल पड़ी यक्षिणी बस, बस आगे कुछ मत बोलो। इस प्रकार की भेद–भाव वाली बात मुझे पसन्द नहीं। बस मैं केवल इतना जानना चाहती हूँ कि मेरे संसर्ग में रहना स्वीकार है या नहीं तुमको?

हाँ! स्वीकार है। मुझे तुम्हारा सानिध्य लेकिन एक बात है। वह क्या? शरीरी हूँ मैं और तुम हो विदेही। इस स्थिति में बराबर सानिध्य कैसे सम्भव होगा?

मेरी बात सुनकर हँस पड़ी वह यक्ष बाला फिर बोली इसकी चिन्ता तुम मत करो।

वैसे अदृश्य रूप से बराबर तुम्हारे साथ रहूँगी ही मैं, लेकिन जैसा कि तुमको बतला चुकी हूँ कि जब कभी भी तुम मुझे एकान्त में स्मरण करोगे मैं तुरन्त भौतिक शरीर में उपस्थित हो जाऊँगी तुम्हारे सामने। और यक्षिणी के अन्तिम वाक्य के साथ ही कांच की तरह छन्न से टूट गया सपना। एकाएक आँखे खुल गयी मेरी। सबेरा होने वाला था। अपना पूरा कमरा एक विचित्र किन्तु मादक सुगन्ध से भरा हुआ मिला मुझे। कुछ समझ में नही आया।

सद् और असद् साधक

लगभग एक मास का समय व्यतीत हो गया। कभी–कभी उस यक्षकन्या का रूप और सौन्दर्य मानस पटल पर उभर आता और तब

विह्वल हो उठता एकबारगी मैं।

एक दिन सायं के समय नित्य की भांति चेतसिंह घाट के ऊपर किले की बुर्जी पर बैठा था एकान्त में। आकाश में काले भूरे बादल छाये हुए थे। पानी बरसने ही वाला था। उस सुनसान निर्जन और सांय–सांय करते हुए वातावरण में यक्षबाला की स्मृति जागृत होना स्वाभाविक था। न जाने क्या सोचने लगा मैं उसके विषय में। और तभी उस बरसाती चिपचिपे अंधेरे में एकाएक हवा का एक प्रबल झोका आया और मेरे सामने सिमट गया और सिमट कर चक्राकार घूमने लगा अपने सीमित स्थान पर। और मेरे देखते ही देखते वह आकार ग्रहण करने लगा जो अपने आपमें चमकदार था। कुछ ही क्षणों के बाद वह आकार उसी यक्षकन्या के रूप में परिवर्तित हो गया। अब वह यक्षबाला मेरे सामने खड़ी मुस्करा रही थी। उसे देखकर स्तब्ध रह गया मैं एक बारगी। एकाएक मुंह से निकल पड़ा–तुम कैसे?

तुमने स्मरण किया और मैं आ गयी – यक्षसुन्दरी ने हँस कर उत्तर दिया। फिर बोली–क्या चाहते हो? क्यों स्मरण किया मुझे तुमने? एक बात बतलाओगी?

क्यों नही पूछो।

मैं तंत्र–मंत्र पर शोध और खोज कार्य कर रहा हूँ। क्या तुम इस कार्य में मेरा सहयोग दोगी–मैंने पूछा? मेरी बात सुनकर एक बारगी चौक पड़ी वह। सिर घुमाकर मेरी ओर देखा उसने एक बार और फिर बोली वह – इस चक्कर में कैसे पड़ गये तुम? कभी भी किसी जंजाल में फस सकते हो समझे। सभी के बस की बात नहीं है यह! मैं चुप रहा। फिर बोला – मेरी रुचि है मेरी इच्छा है, इसमें। इससे अधिक परम्परागत रूप से मेरे परिवार की साधना, उपासना रही है तंत्र विद्या। उसका संस्कार मुझमे भी होना स्वाभाविक हैं। सम्भवतः उसी संस्कार के वशीभूत होकर मेरी अन्तरात्मा में तंत्र के

प्रति रुचि जागृत हुई हो?

मेरी बात सुनकर कुछ देर तक न जाने क्या सोचती रही वह। उसके बाद गम्भीर स्वर में कहने लगी—जानते हो तुम तंत्र और उसकी साधना—सिद्धि आदि को लेकर वर्तमान समय में कितना ढोंग और पाखण्ड फैल रहा है। कितना पापाचार व्यभिचार आदि को बढ़ावा मिल रहा है? कितने लोग ठगे जा रहे हैं। तांत्रिक शक्ति एक ऐसी वस्तु हैं जिसका प्रलोभन देकर किसी भी वर्ग के लोगों को प्रभावित किया जा सकता है और प्रभावित कर चाही अनचाही, अच्छा—बुरा कुछ भी करवाया जा सकता है उनसे। जो लोग तंत्र शास्त्र के एक अक्षर से भी परिचित नहीं है। तंत्र से संबंधित किसी देवी—देवता के स्वरूप से परिचित नही है। इसके अतिरिक्त उनकी उपासना और पूजापद्धति आदि से भी अनभिज्ञ हैं वे लोग तंत्र से संबंधित बड़ी—बड़ी पुस्तकें लिख रहे हैं। उपासना—पूजा आदि की व्याख्या कर रहे हैं प्रवचन दे रहे हैं। साधना की दीक्षा दे रहे हैं और बतला रहे हैं साधना का मार्ग भी... कैसी विडम्बना है? यही कारण है कि प्रबुद्ध वर्ग के लोगों की श्रद्धा और उनका विश्वास समाप्त होता जा रहा है तंत्र और उसकी साधना—उपासना के प्रति। तंत्र को हेय और उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है वर्तमान समय में। सबसे बड़ी बात तो यह है कि तंत्र से संबंधित देवीस्थान और शक्तिपीठों की भी स्थिति शोचनीय हैं। क्या—क्या नहीं होता वहाँ तंत्र—मंत्र के नाम पर? वासना, साधना—उपासना का रूपान्तर बन गया है वहाँ और बन गया है सभी प्रकार के शोषण का केन्द्र। क्या चाहिए अब? 'तंत्र' के वास्तविक स्वरूप का दुर्लभ हो गया है दर्शन। ऐसी स्थिति में ऐसे वातावरण में और भ्रामक मायाजाल के बीच क्या कर सकोगे तुम? कैसे उद्धार कर सकोगे तंत्र के वास्तविक स्वरूप का? कैसे प्रकाश डाल सकोगे तिमिराच्छन्न तांत्रिक साधना—उपासना आदि पर। और कैसे तोड़ सकोगे तंत्र—मंत्र

के नाम पर फैले हुए ढोंग और पाखण्ड के मायाजाल को? बोलो उत्तर दो मुझे। यह सब सुनकर टुकुर–टुकुर ताकने लगा मैं उस यक्षिणी की ओर। तत्काल कोई उत्तर न दिया गया कुछ बोला न गया और कुछ कहा भी न गया मुझसे।

तुमको यह भी ज्ञात होना चाहिए कि तंत्र–मंत्र के नाम पर ढोंग और पाखण्ड करने वाले साधना–उपासना बतलाने वाले उपदेश प्रवचन दीक्षा आदि देने वाले और शोषण व्यभिचार आदि करने वाले लोगों की क्या गति होती है मरने के बाद। उनकी आत्मा को नर्क में भी स्थान नहीं मिलता। नर्क का भी फाटक बन्द है ऐसे लोगों की आत्मा के लिए।

थोड़ा रूककर यक्षिणी आगे बतलाने लगी ऐसे लोगों की आत्माओं का वासना शरीर अत्यन्त वीभत्स और घृणित होता है। स्थूल शरीर भी अत्यन्त कष्ट से मृत्यु के समय छूटता है उनका। मृत्यु के समय भयंकर आकार वाले यक्ष उनको लेने आते हैं। पहले वे उनको उनकी उन कुकृत्यों की कथा सुनाते हैं जिसे वे तंत्र–मंत्र के नाम पर किये होते हैं। फिर उन्हें पकड़कर ले जाते हैं यक्षलोक में, और उसके पहले यक्षलोक के उपनिवेश में उन्हें रखकर विभिन्न प्रकार से प्रताड़ित करते है। उनकी दुर्दशा करते थे। यातना देते हैं। फिर यक्षलोक में वे कब तक रहते है, उसकी कोई अवधि नही। लेकिन जबतक रहते हैं तब तक पश्चाताप और ग्लानि की अग्नि में जलते रहते हैं। फिर उनका जन्म मुर्गा, कबूतर, बकरा, भेड़, ऊँट, भैंसा आदि पशु–पक्षियों की योनि में होता है इसलिए कि ये पशु–पक्षी यक्ष लोक से धरती पर आये हैं। इन सबका संबंध यक्षलोक से हैं। और यही कारण हैं कि तांत्रिक क्रियाओं को सिद्ध करने की दिशा में इनकी बलि दी जाती है।

यक्षिणी आगे बोली–इसी प्रकार जो लोग किसी प्रकार तंत्र–मंत्र की थोड़ी बहुत सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं और उसकी शक्ति का दुरुपयोग

करते हैं। किसी का नुकसान करते हैं किसी को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाते हैं। अपनी सिद्धि व चमत्कार का प्रदर्शन करते हैं। अहंकारयुक्त व्यवहार करते हैं। और उसी अहंकार के वशीभूत होकर तंत्र—मंत्र का अनुचित प्रयोग करते हैं। किसी को दुख—कष्ट पहुँचाते हैं जानते हो तुम ऐसे तांत्रिको का अन्तिम समय अति दारुण तो होता ही है, बाद में उनकी भी बड़ी दुर्गति होती है यक्षलोक में। उनका जन्म भी अतिघृणित योनियों में होता है।

यक्षिणी थोड़ा थमकर बोली—ऐसे तांत्रिको को हमारे लोक में असद्साधक कहते हैं। और इसके ठीक विपरीत जो तांत्रिक हैं उनको कहते हैं सद्साधक।

सद्साधक अपनी तांत्रिक साधना और सिद्धियों के द्वारा लोक कल्याण करते हैं। लोगों को दैवी सहायता प्रदान करते हैं। सहयोग देते हैं। रोग—शोक का हरण करते हैं। अहंकार रहित और सभी के प्रति विनम्र होते हैं। संसार व समाज की दृष्टि में जो अनैतिक कार्य है उसे भी वे साधना के भाव से ही करते हैं। उनका सभी नैतिक—अनैतिक कार्य साधना के लिए होता है। प्रत्येक कार्य में उनका एक मात्र लक्ष्य साधना ही होता है। मदिरापान करे, गाली गलौज करें, स्त्री गमन करे, जो कुछ भी करें सबके पीछे उनका उद्देश्य होता है—लौकिक—पारलौकिक कल्याण की भावना। सच पूछो तो ऐसे सद्साधकों की मति—गति को और कार्यकलाप को जानना समझना सभी के बस की बात नहीं।

एक और तंत्रसाधक होते हैं। जिनको योगमार्गीय तंत्रसाधक कहते हैं। वे सदैव अपने आपको प्रच्छन्न रखते हैं। उनकी साधना पूर्णरूप से अन्तर्मुखी होती है। उनकी मति—गति और उनके आचार व्यवहार से बिल्कुल यह प्रतीत नही होता है कि वे एक उच्चकोटि के साधक है। उनकी साधना से संबंधित जितनी भी क्रियायें हैं वे सब भावराज्य

में होती हैं। प्रत्यक्ष में वे कुछ भी करते हुए नहीं दिखलायी देते हैं। वे अप्रच्छन्न सिद्ध होते हैं–वे कुछ भी न करते हुए भी बहुत कुछ करते रहते हैं। वे प्रेम–स्नेह, करुणा, दया और अनुकम्पा के साक्षात् रूप होते है। वे समदर्शी दुख–सुख से परे और प्रज्ञाशील होते हैं। उनका संबंध हर क्षण अपने गुरु और अपने इष्ट से बना रहता हैं। सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यआत्माओं से भी उनका बराबर सम्पर्क रहता है। उन्हें कोई समझे या न समझे लेकिन वे सभी के अन्तरमन को समझते हैं। ऐसे साधकों की साधना यदि भौतिक शरीर के रहते नही पूरी होती किसी कारणवश तो वे उसे पूरा करने के लिए यक्षलोक के उस भाग में चले जाते हैं–जिसका संबंध समस्त लोक–लोकान्तरों से है। साधना पूरी होने पर ही संसार में आते हैं और भौतिक शरीर ग्रहण भी करते हैं। ऐसे साधकों को ही 'महात्मा' कहते हैं। जिनका अस्तित्व इस संसार में विरले ही है। किसी भाग्यवान को ही ऐसे महात्मा के दर्शन लाभ होते हैं उनके द्वारा उपदिष्ट अथवा प्रकट ज्ञान अपौरूषेय ज्ञान होता है। वे प्रायः सहजसमाधि की अवस्था में रहते हैं।

यक्षलोक के महात्मा स्वामी सहजानन्द

अच्छा आज अब बस – यक्षिणी अपने पार्थिव अस्तित्व को समेटते हुए बोली, फिर कभी मिलूंगी तो आगे बातें होगी। इतना कहकर अदृश्य हो गयी कातिक बाबा की वटयक्षिणी। एक महीना व्यतीत हो गया लेकिन दर्शन नही हुए उस यक्ष बाला के।

उस दिन सांझ का समय था। अपने कमरे में मौन साधे बैठा न जाने क्या सोच रहा था मैं। सहसा गुलाब की सुगन्ध से भर गया मेरा पूरा कमरा और उसी के साथ मेरे सामने प्रकट हो गयी वह परम लावण्यमयी सुन्दरी। सकपका गया मैं एक बारगी।

कहाँ थी इतने दिनों–मैंने पूछा।

उत्तर में वटयक्षिणी बोली – काशी में एक महात्मा निवास करते

हैं। दीर्घकाल तक यक्षलोक में साधना करने के पश्चात् अस्सी वर्ष पूर्व भौतिक शरीर धारण किया था उन्होंने। क्या नाम है – काफी उत्सुक होकर पूछा मैंने। नाम हैं – स्वामी सहजानन्द।

कहाँ रहते हैं? काफी विह्वल हो गया मैं अब। तुम्हारे निकट ही तो ... केदारेश्वर का जो मन्दिर है न – यक्षबाला ने कहा – उसी के बगल में एक बड़ा–सा मकान हैं। सीढ़ी चढ़कर मकान में जाना पड़ता है। मकान में एक प्राचीन काली की मूर्ति भी हैं। उसी मकान में एक छोटे से कमरे में रहते हैं वह महापुरुष। एक महीने उन्हीं के सत्संग में रही, समझे।

क्या वह मुझसे मिलेंगे? क्या मुझे अपना दर्शन देंगे? क्या मेरी खोज में सहयोग देंगे? – एक साथ इतना बोल गया मैं।

क्यों नहीं? मैने उनको तुम्हारा परिचय दे दिया है। खूब प्रसन्न होंगें तुमसे मिलकर। जानते हो, जब मैंने तुम्हारी चर्चा की तो हो–हो कर खूब हँसे महाशय। इतना कहकर चली गयी वटयक्षिणी। लेकिन पूरा कमरा पूरी रात गुलाब की सुगन्ध से गमकता–महकता रहा। नींद नहीं आयी पूरी रात। सबेरा हुआ। मन नहीं माना, चल पड़ा दर्शन करने के लिए उस दुर्लभ महात्मा का। सहमते हुए सीढ़ियाँ चढ़कर मकान के भीतर गया। काफी लम्बा–चौड़ा मकान था। पूरब की ओर ऊँची–ऊँची खिड़कियाँ थी, जिनमें शीशे के पल्ले लगे थे और जिनके पीछे गंगा की धवल धारा साफ दिखलायी दे रही थी। घोर सन्नाटा छाया हुआ था मकान में चारो तरफ और तभी कमर झुकायें और हाथ में लाठी लिए एक बंगालिन बुढ़िया न जाने किधर से आ गयी। पूछने पर उसने हाथ के इशारे से महात्मा का कमरा बतलाया। कमरा थोड़ा खुला था। भीतर झांककर देखा, ऊँची तख्त पर एक महाशय बैठे हुए थे नेत्र बन्द किए हुए मौन साधे। समझते देर न लगी। स्वामी सहजानन्द थे वह। हे भगवान। कितना तेज था उस परम महात्मा

के चेहरे पर बतलाया नही जा सकता। इसके अलावा पूरे शरीर के चारो ओर सोने के रंग का आभा मण्डल भी विकीर्ण हो रहा था। नेत्र बन्द थे महात्मा के। ऐसा लगा मानों संसार भर की शान्ति सिमट गयी हो उस छोटे से कमरे में।

मेरी उपस्थिति का आभास शायद लग गया था महात्मा को। धीरे–धीरे नेत्र खुले और गहरीदृष्टि से देखा मुझे उन्होंने। कुछ क्षण बाद हँसे वह। बालसुलभ हँसी थी वह और बोले–आओ, आओ, तुम्ही हो अरुण कुमार शर्मा? यक्षिणी ने सब बतला दिया है तुम्हारे विषय में। सारी कथा जान गया हूँ, मैं ! तुम्हारी।

सहमते हुए कमरे के भीतर गया और महात्मा के चरणों का स्पर्श किया मैंने। हे माँ स्पर्श करते ही बिजली जैसा एक अजीब सा झटका लगा मुझे। झनझना गया पूरा शरीर मेरा।

महात्मा के संकेत पर सामने बिछी चटाई पर बैठ गया मैं। मेरे दोनों हाथ जुड़े हुए थे। निर्मिनेष दृष्टि से महात्मा की ओर देख रहा था मैं। और तभी उन्होंने पूछा–क्या जानना चाहते हो? बोलो। पहले तो कुछ बोला ही न गया मुझसे। फिर किसी प्रकार अटक–अटक कर प्रश्न किया मैंने। परमात्मा क्या हैं? परमात्मा की परिभाषा क्या है?

परमात्मा और उसकी परिभाषा

प्रश्न सुनकर महात्मा ने एक बार फिर गहरी दृष्टि से देखा मेरी ओर और कहने लगे–परमात्मा की परिभाषा? बड़ी विचित्र बात है। परमात्मा और उसकी परिभाषा? परमात्मा तो उसी का नाम है जिसकी कोई परिभाषा ही नही है। परमात्मा यानी अपरिभाष्य। परमात्मा समग्रता का पर्याय है। समग्रता का दूसरा नाम है। समग्रता के सन्दर्भ में सभी वस्तुओं की परिभाषा हो सकती है लेकिन समग्रता की परिभाषा किसके सन्दर्भ में होगी?

इस संसार में ऐसा बहुत कुछ है जो असम्भव है। सच बात तो यह है कि जो असम्भव है वही प्राप्त करने योग्य है। परमात्मा के संबंध में कहना असम्भव है इसलिए कि परमात्मा प्राप्त करने के योग्य है। परमात्मा के संबंध में वेद, शास्त्र, पुराण उपनिषद आदि में शब्दों के माध्यम से बहुत कुछ कहा गया है लेकिन उन शब्दों में अनुभव की झलक नहीं है। इसलिए कि अनुभव सदैव कुंवारा है। जब भी तुम परमात्मा के संबंध में जानोगे। वह उधार नहीं होगा। वह तुम्हारा होगा। तुम्हारा अपना होगा। और परमात्मा को जानते ही तुम गुंगे हो जाओगे। सब कुछ बोल सकोगे लेकिन परमात्मा के संबंध में मौन साध लोगे। क्योंकि वह तुम्हारा अपना अनुभव है।

शब्दों की अपनी–अपनी सीमा है। और परिभाषायें शब्दों से बनती हैं। इसलिए परमात्मा के संबंध में जितनी भी परिभाषाएं है वे सबकी सब उधार की हैं, अनुभव पर आधारित नहीं। परमात्मा के संबंध में मूर्तियाँ कुछ नहीं बतला सकती हैं। चित्र कुछ नहीं बतला सकते हैं संगीत और काव्य भी नहीं बतला सकते हैं।

परमात्मा का अर्थ है, और वह यह कि जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित है जिसमें पदार्थ भी है और चैतन्य भी। जिसमें जीवन भी है और मृत्यु भी। परमात्मा सारे अस्तित्व का सन्दर्भ है। उसकी पृष्ठभूमि है। इसलिए परमात्मा की कोई परिभाषा नही हो सकती। परमात्मा अनुभव की वस्तु हैं। ऐसे अनुभव की जिसको व्यक्त नहीं किया जा सकता।

महात्मा बोले–सोने को तो कसौटी पर कसा जा सकता है लेकिन हीरे को नहीं। तुम्ही बतलाओ हीरे को कैसे कस सकोगे कसौटी पर, शब्द बने हैं संसार की अभिव्यक्ति के लिए। शब्द बने हैं सामाजिक आदान–प्रदान के लिए। शब्द बने हैं दो व्यक्तियों के बीच संवाद के लिए। यह शब्दों की सीमा है। मनुष्य और परमात्मा के बीच 'शब्द'

नहीं है और कोई भाषा भी नहीं हैं। अपनी कल्पना से परमात्मा के स्वरूप का निर्माण कर लेते हैं। हमारी भाषा परमात्मा की भाषा हो जाती है। हमारा जीवन परमात्मा का जीवन हो जाता है। हमारा विचार और हमारा आचरण परमात्मा का विचार और आचरण हो जाता है। हम अपने जैसे परमात्मा को भी समझने लगते हैं। और यह भी समझने लगते हैं कि हमारे जितने शास्त्र और धर्म ग्रन्थ हैं—वे सब परमात्मा द्वारा दिया हुआ है। यह सब बहुत बड़ा अहंकार है। धर्म से इसका कुछ भी लेना देना नहीं हैं।

परमात्मा तटस्थ हैं फिर भी प्रेमपूर्ण हैं

परमात्मा तटस्थ हैं फिर भी अत्यन्त करूणामय, दयामय, कृपामय और प्रेमपूर्ण है। तुम सोचोगे एक ही साथ ये सब कैसे सम्भव हैं? यदि ऐसा होता तो परमात्मा जीसस को शूली पर चढ़ने ही न देता। उसकी रक्षा करता। उसे बचा लेता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। ठीक इसके विपरीत ही हुआ। जीसस को शूली पर लटका दिया गया। सब समाप्त हो गया। स्वाभाविक है। परमात्मा बिल्कुल तटस्थ है। निर्विकार है। उसको कुछ लेना देना नहीं है।

लेकिन गहरायी में जाओ, तो ज्ञात होगा कि परमात्मा पूर्ण रूप से तटस्थ होते हुए भी प्रेममय, करुणामय, दयामय है आदि। यदि वह ऐसा न होता तो तुम्हारे जीवन में स्वतंत्रता न होती। तुम परतंत्र होते जीवन में। लेकिन तुमको यह भी समझ लेना चाहिए कि तुम्हारी स्वतंत्रता के लिए परमात्मा का तटस्थ होना भी आवश्यक है। नही तो स्वतंत्रता नष्ट हो जायेगी। यदि परमात्मा हर कदम पर बाधा डालना शुरू कर दे तो तुम्हारा जीवन नर्क बन जायेगा। कारागार बन जायेगा। जीवन नर्क नहीं है कारागार नहीं है तुम स्वयं उसे नर्क और कारागर बना लिए हो। परमात्मा क्या दोष है इसमें। परमात्मा ने तो तुमको पूरी स्वतंत्रता दे रखी है। तुमको जो होना हो, पापी या पुण्यात्मा,

विद्वान या मूर्ख, धनी या गरीब, अच्छे या बुरे। परमात्मा का इससे कोई नाता–रिश्ता नहीं। हिटलर से लेकर भगवान बुद्ध तक तुम जो होना चाहते हो–उसके लिए परमात्मा ने तुमको पूरी स्वतंत्रता दे रखी है।

सच पूछो तो मनुष्य की यह गरिमा है और है गौरव। परमात्मा की अपार अनुकम्पा है कि मनुष्य स्वतंत्र है और यह स्वतंत्रता दी ही है इसलिए कि परमात्मा प्रेमपूर्ण है। प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है जो पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। जो प्रेम स्वतंत्रता न दे सके तो समझो वह छोटा प्रेम है। परमात्मा का प्रेम इतना बड़ा कि तुम उसके विपरीत भी चले जाओ तो भी स्वतंत्रता तुमको उपलब्ध है। यह परमात्मा के प्रेम की विशालता है बड़प्पन है इसे समझने का प्रयत्न करो।

तुम तो वैसे प्रेम से परिचित हो। जो वास्तव में प्रेम नहीं है। तुम्हारी पत्नी किसी व्यक्ति से जरा मुस्कराकर, हँसकर बाते कर ले तो तुमको सुंदेह हो जाएगा उसके चरित्र पर। इसको तुम प्रेम कहते हो? स्वतंत्रता इसमें नाम मात्र की नहीं है। प्रेम के नाम पर दूसरों के गले में फांसी लगाना है। प्रेम के नाम पर किसी पर अधिकार करना है। कब्जा करना है। मालकियत है। प्रेम के नाम पर राजनीति है। पति जरा देर से घर आया कि पत्नी को संदेह हो गया फिर पति–पत्नी में झगड़ा शुरू। पूरी रात कुढ़ते जलते बीती। परमात्मा का प्रेम ऐसा प्रेम नहीं है। जरा रात को देर से घर लौटे कि परमात्मा खड़ा है सामने। तुमसे जरा सी गलती हो गई कि खड़ा हो गया वह सामने कि तुमने ऐसा क्यों किया? परमात्मा का प्रेम विराट है यह पहली बात है और उसी विराट प्रेम के कारण तटस्थ मालुम पड़ा है परमात्मा।

जरा सोचो, जीसस को शूली पर चढ़ाते समय परमात्मा ने फूल बरसा दिया होता। शूली सिंहासन बन गयी होती तो गलत हुआ होता।

क्योंकि फिर मनुष्य की स्वतंत्रता न रह जाती। फिर मनुष्य को अपने जीवन को अपने ढंग से जीने का अधिकार ही न रह जाता।

समझने की बात है– महात्मा बोले यदि ऐसा हुआ होता तो संसार के सारे धर्म नष्ट हो गये होते। केवल ईसाइयत बचती। फिर बुद्ध महावीर परथुस्त्रों आदि का क्या होता? फिर जो इतने विभिन्न धर्मों के फूल संसार भर में खिले हुए हैं और इतना वैविध्य है संसार में– ये सब के सब नष्ट हो गये होते।

ईसा को शूली पर चढ़ने की दिशा में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं की परमात्मा ने। शूली पर चढ़ने दिया ईसा को। और इस प्रकार ईसा को एक परम अवसर दिया उसने। उस समय ईसा के मन में भी साधारण व्यक्ति की तरह जैविकभाव था। वे भी डगमगा गये। शूली जब लगने लगी तो जीसस ने आकाश की ओर देखकर कहा–हे! प्रभु यह तू क्या कर रहा है? उनके अचेतन में छिपी कोई कामना रही होगी कि समय पर परमात्मा काम आयेगा। उनकी सहायता करेगा। मानवीय कामना है। लेकिन मैं अपनी दृष्टि से उससे सहायता मांगू, इसमें मेरा अहंकार है। मैं जैसा कहूं वैसा व्यवहार करें। इसमें परमात्मा पर आरोपण भी है। इसमें उसकी ही इच्छा अन्तिम है– ऐसा भाव नहीं है। क्षणभर में जीसस के मन में सन्देह कम्पित हो गया और आखिर में जीसस के मुंह से निकल ही गया – हे प्रभु! यह क्या कर रहा है तू? क्या दिखला रहा है तू मुझको? परमात्मा से हो गयी शिकायत!

लेकिन तू नहीं जानता, महात्मा बोले–जीसस बड़े संवेदनशील व्यक्ति थे। तत्काल समझ गये वह। एक क्षण में परिवर्तन हो गया उनके अन्तराल में। सन्देह की जो लहर उठी थी उनके भीतर उसे पकड़ लिया उन्होंने। और समझ ली भूल अपनी और दूसरे ही क्षण झुक गया उनका मस्तक। और तब जानते हो तुम, जीसस ने दूसरा

भी शब्द कहा, वह क्या था? वह था – हे प्रभु! जो तू चाहता है, वही हो! तुम्हारी जो इच्छा हो वही हो पूरी। मेरी इच्छा पर ध्यान न देना तू। मैं क्या जानू कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। मेरी इच्छा का मूल्य ही क्या? तू जो करे वही ठीक है। नतमस्तक हूँ मैं। समझे तुम। इसी का नाम है पूर्ण समर्पण। और यही परमात्मा की पूजा।

यदि शूली के समय परमात्मा ने अदृश्य रूप से किसी प्रकार का आक्षेप किया होता। कोई चमत्कार कर दिया होता तो जीसस, जीसस ही रह जाते, क्राइस्ट कभी न हो पाते, और तब जीसस के भीतर अहंकार भर गया होता। और अहंकार से सीना तानकर कहते देखो सारे विरोधियों, देख लो कौन सच्चा है और कौन है झूठा। यह मेरे ईश्वर पुत्र होने की कसौटी है। और यह अहंकार उनको ले डूबता। जीसस का कहीं भी नाम न होता और न तो होता उनके धर्म का अस्तित्व इस संसार में।

पुण्य का अहंकार सबसे बड़ा है। पापियों से भी बड़ा अहंकार होता है पुण्य का। समझे और इतना बड़ा पुण्य कि परमात्मा बचाने के लिए आ जाता तो जीसस अहंकार से अकड़ न गया होता। और जानते हो तुम! उस अहंकार के कारण जीसस का नाता–रिश्ता हमेशा–हमेशा के लिए टूट जाता परमात्मा से। लेकिन चमत्कार हुआ। और वह चमत्कार यह था कि परमात्मा ने कुछ भी नहीं किया। 'न' करने में चमत्कार है। पर इसे गहरायी से समझने के लिए बड़ी गहरी आँख चाहिए। ऊपर से तो तुम यही समझोगे कि परमात्मा ने बड़ी उदासी दिखाई। किसी भी प्रकार की दिलचस्पी नहीं ली जीसस को शूली पर न चढ़ने देने में। बिल्कुल तटस्थ और निरपेक्ष रहा वह। जीसस शूली पर चढ़कर मरे कि नहीं, कोई जैसे मतलब ही नहीं था। एक क्षण के लिए नहीं आया बीच में हस्तक्षेप करने। लेकिन जरा और गहरायी से विचार करो। परमात्मा आया। बिना बीच में आये

आ गया वह, चमत्कार है न। इसी को कहते हैं योग। अर्थात् बिना किये करना, बिना कृत्य के करना। परमात्मा ने कोई कृत्य नहीं किया पर क्रान्ति घट गयी। कृत्य अपने आप हो गया। परमात्मा कितना कृपालु हैं, कितना दयालु है और है कितना करुणामय। उसने जीसस को अन्तिम अवसर दिया और वह यह कि तू अपनी अन्तिम अपेक्षा को भी छोड़ दे। अन्तिम आग्रह का भी त्याग कर दें। और त्याग कर दे अपनी अन्तिम इच्छा का भी।

यह अवसर दिया परमात्मा ने जीसस को। यह वास्तविक घटना थी। यह बहुत बड़ा महोत्सव था। जो जीसस के अन्तराल में घटित हुआ। वे एकबारगी झुक गये। और उसी झुकने से एक पल में जीसस क्राइस्ट हो गये। उसी झुकने से सिद्धार्थ भगवान बुद्ध हो गये। उसी झुकने से महावीर हो गये। और उसी झुकने से संसार में अनेक उच्चकोटि के सन्त, महात्मा और सिद्ध साधक हो गये। उसी झुकने में महापर्व आ गया। समर्पित हो गये। बूंद अथाह सागर में समा गयी और सागर हो गयी। उसका अस्तित्व बूंद न होकर सागर हो गया।

महात्मा थोड़ा रूककर आगे बोले—समझ लो। तुम को जो मृत्यु मालूम पड़ती है वह परमात्मा के लिए मृत्यु नहीं है। उसकी दृष्टि में न मृत्यु है और न तो है जन्म।

समय अधिक हो गया था। घर वापस लौट आया उस परम योगी के चरणों का स्पर्श कर। रात्रि का पहला ही प्रहर था। एक—एक शब्द गूंजते रहे महात्मा के मेरे अन्तराल में। तभी पूरा कमरा भर गया गुलाब की सुगन्ध से और उसी के साथ सामने आकर खड़ी हो गयी एकाएक वह यक्षसुन्दरी। मुस्करा रही थी उस समय वह। अच्छा लगा मुझे उसकी मुस्कराहट! धीरे—धीरे चल कर मेरे निकट बैठ गयी वह।

क्या बात है? बड़ी प्रसन्न हो तुम – मैंने हंसकर कहा।

क्यों नहीं प्रसन्न होऊँगी मैं। सचमुच तुम बड़े भाग्यवान हो! कई

जन्मों का संस्कार एकत्र होकर आविर्भूत हुआ है इस जन्म में, समझ न सकोगे तुम। ... तभी तो सहजानन्द ऐसे महात्मा ने इतना समय दिया तुमको और इतनी बातें भी की तुमसे। क्या यह साधारण घटना है। ठीक कहती हो तुम! मेरा संस्कार ही तो है कि तुम मुझे मिली और तुम्हारे माध्यम से सहजानन्द जैसे महात्मा के सम्पर्क में आया मैं। थोड़ा रूककर उस परमसुन्दरी की ओर अपलक देखते हुए आगे कहा मैंने – 'एक बात कहूँ'! बुरा तो नहीं लगेगा तुमको।

नहीं! बुरा नहीं लगेगा। तुम जब भी आती हो और जब भी इस तरह मेरे निकट बैठती हो तो मुझे बड़ा सुख मिलता है। मेरा सारा क्लेश, सारा कष्ट और सारी पीड़ा, व्यथा समाप्त हो जाती है कुछ समय के लिए। निरभ्र गगन में मुक्त विचरण करने वाले किसी पक्षी के समान हो जाती है मेरी आत्मा।

सच कह रहे हो? हाँ! बिल्कुल सच। यदि तुम मानवीय होती तो निश्चय ही तुमको हमेशा–हमेशा के लिए अपनी जीवनसंगिनी बना लेता मैं। मेरी बात सुनकर शायद रहा न गया उस अपार्थिव तन्वंगी से। उसने लपक कर अपना दोनों हाथ मेरे गले में डाल दिया और एक प्रकार से लिपट गयी मुझसे लता की तरह। और अपना सिर मेरे सीने पर रखते हुए कहने लगी – तुमको जब पहली बार मैंने देखा, तो देखते ही मुग्ध हो गयी एकबारगी तुम पर मैं। तुम्हारा रूप और तुम्हारा पुरुषोचित्त सहज सौन्दर्य न जाने क्यों मेरे मन को भा गया। सोचने लगी – काश! मैं मानवी होती तो इस युवक से उत्तम कौन हो सकता था मेरे लिए इस भौतिक संसार में। अम्लान पुष्प की सुगन्ध से भर उठता हम दोनों का जीवन। लेकिन ऐसा सम्भव कहां था? सच कहती हूँ, यदि भविष्य में नारी का भौतिक शरीर कभी उपलब्ध हुआ मुझे तो तुम कहीं भी रहोंगे खोज लूंगी मैं तुमको, और सदैव के लिए प्राप्त करके छोडूंगी तुम्हें ... अच्छा! अब चलू मैं। और

इस शब्द के साथ अपने आलिंगन से मुक्त कर दिया उसने मुझे। और उसी समय टन्–टन् कर ग्यारह का घंटा बजा। यक्षिणी चली गयी थी और अपने साथ ही समेट ले गयी थी कमरे में बिखरी हुई सुगन्ध को भी। सबेरा हुआ और फिर सांझ। महात्मा के कमरे के सामने जाकर खड़ा हो गया मैं। उन्होंने बड़े स्नेह से मुझे अन्दर बुलाया और बैठने का संकेत किया। चरणस्पर्श कर आदेश का पालन किया मैंने। इस बार हल्का सा ही झटका लगा मुझे चरणस्पर्श करते समय।

परमात्मा से प्रेम करने वालों की हत्या क्यों?

महात्मा मेरे आग्रह पर कल वाले विषय पर ही बोलना शुरू किया तुमको– यह जानकर घोर आश्चर्य होगा कि जीसस सुकरात मंसूर जैसे अध्यात्मवादियों को परमेश्वर के निकट अपने आपको बोध करने वालों को और प्रेमावतारों को क्यों शूली दी गयी क्यों जहर पिलाया गया और क्यों गर्दने काटी गयी? समझने की बात है। लेकिन तुमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए, तुम्हारा देखना, तुम्हारा सोचना और तुम्हारा समझना। परमात्मा का देखना, सोचना, और समझना एक जैसा नहीं है। काफी अन्तर है। एक उदाहरण देकर समझाता हूँ– बच्चे का सबसे प्रिय उसका खिलौना है। वह खिलौने को जीवन्त समझता है। उसे नहलाता है, कपड़ा पहनाता है। खाना खिलाता है अपने पास सुलाता है। उसके साथ खेलता है। उसका पिता अपने बच्चे का ये सब खेल देखता रहता है और वह यह जानता है कि एक न एक दिन उसका बच्चा अपने खिलौनो का गर्दन मरोड़ देगा। उन्हें तोड़कर फेक देगा। सच तो यह है कि खिलौने तोड़ने के लिए ही होते हैं।

परमात्मा की दृष्टि में मानव शरीर एक खिलौने के समान है। ईसा शूली चढ़ रहे हैं सुकरात को जहर दिया जा रहा है और मंसूर का गर्दन काटा जा रहा है। परमात्मा तटस्थ हैं। निरपेक्ष है। आत्मा से शरीर अलग हो रहा है उसे अलग तो होना ही था एक न एक

दिन। आज नहीं तो कल। शरीर को कब तक बचाया जा सकता हैं। मरणधर्मा है शरीर। यदि तुम इस दृष्टि से विचार करो और चिन्तन–मनन करो तो तुमको लगेगा कि जीसस, सुकरात और मंसूर॰ जैसे महान प्रेम के साक्षात् अवतारों ने अपने शरीर को छोड़ने का और अपने मरने का कितना सुन्दर मार्ग का चयन किया था? कितना सुन्दर मार्ग अपनाया था? सचमुच कितना अमूल्य था? कितना महत्वपूर्ण था और था कितना शाश्वत? साधारण लोग क्या समझेंगे उनकी मृत्यु को? योगी साधकगण ही समझ सकेंगे उनकी अकल्पनीय मृत्यु को। संसार के इतिहास में उन सब की मृत्यु अजर–अमर हो गयी, जो कभी भी न मरेगी और कभी न मिटेगी। उनकी मृत्यु का कितना भारी प्रभाव पड़ा संसार पर और इतिहास पर। तीनों दिव्यात्माओं का कितना प्रभाव पड़ा जगत पर। और कितना संसार को समाज को और जनसाधारण को आकर्षित किया उन तीनों दिव्यपुरुषों की मृत्यु ने। जीसस की शूली ने सुकरात के जहर ने और मंसूर की हत्या ने आज तक जीवित रखा है उन महान् पुरुषों की आत्माओं को। उनकी मृत्यु ने ही उनको आज तक इतिहास में जीवित रखा है।

सुकरात न्यायालय में निर्भाव खड़ा था, दोनों हाथ बांधे और मौन साधे।

न्यायाधीश ने कहा – हम तुमको क्षमा कर देंगे। बस जिसे तुम सत्य कहते हो, उसे बोलना बन्द कर दो।

सुकरात ने ऊपर की ओर देखते हुए गम्भीर स्वर में कहा – 'बिना सत्य बोले जीने से सत्य बोल कर मरना श्रेयस्कर है। मेरा सत्य मृत्यु के भी काम आएगा। मृत्यु भी सत्य की सेविका हो जायेगी। तुम मुझे विष दो। जीवित रहकर क्या करूंगा। मुझे जीवित रहकर जो जानना समझना था वह सब जान समझ लिया।

जीसस परमात्मा का पुत्र था। सुकरात सत्य का प्रेमी था और

मंसूर था परमब्रह्म ज्ञानी। उन तीनों को इस बात का ज्ञान था कि इस मरणधर्मा शरीर के भीतर अमृत छिपा हुआ है। इस रहस्य को एक परमयोगी ही जानता है। वे तीनों योगी थे इसमें सन्देह नहीं। जीसस ने मैं ईश्वर पुत्र हूँ यह कहकर भारतीय अध्यात्म के इस वाक्य को जो तुम हो वह मैं हूँ साकार किया था। अहं ब्रह्मास्मि को साकार किया था मंसूर ने और इसी प्रकार चरितार्थ किया था सुकरात ने कृष्णस्तु भगवान स्वयं शब्द को। सुकरात से किसी ने पूछा – भाई! मरते समय हंस क्यों रहे हो?

सुकरात ने आकाश की ओर देखते हुए कहा–परमात्मा के प्रति, इसलिए हंस रहा हूं कि तू किसी भी रूप में आ, मैं तुझे पहचान लूंगा। आज तू मृत्यु के रूप में आया है। मुझे धोखा न दे सकेगा। मैं तुझे हर रूप में जानता हूँ! मृत्यु भी तेरा एक रूप है।

योग की यह परमदशा है। परमअवस्था है। जहाँ जीवन और मृत्यु में कोई भेद नहीं। फूल और कांटे में कोई भेद नहीं। अपूर्णता और असफलता का नाम है प्रेम। प्रेम है असफलता में सफलता को जानना। अपूर्णता में भी पूर्णता को जानना। मृत्यु में भी जीवन को जानना। प्रेम है पराजय में विजय को जानना। प्रेम तो पराजय का नाम है। विजय तो उसका परिणाम है।

जैसा कि मैने कहा – परमात्मा प्रेम पूर्ण है और इसी लिए तटस्थ है। वह तटस्थता प्रीतिपूर्ण है। उपेक्षा का नहीं है। परमात्मा इतना प्रेम करता है कि कैसे तुम्हारे जीवन में बाधा डाले? कैसे अड़चन डाले? और यही कारण है कि परमात्मा की उपस्थिति सर्वत्र होते हुए भी नहीं है। इसकी उपस्थिति अनुपस्थिति जैसी है। उसका प्रेम इतना विराट है कि उसी विराटता के कारण उसकी उपस्थिति अनुपस्थिति हो गयी है।

परमात्मा विराट है, उसका प्रेम भी विराट है। और प्रेम की जो

शक्ति है वही परमात्मा की निजशक्ति है। जो परमात्मा की ही तरह विश्वब्रह्माण्डव्यापिनी है। सर्वत्र उपस्थित होते हुए भी अनुपस्थित है। वह भी प्रेमपूर्ण है। किन्तु तटस्थ है। वह निरपेक्ष है फिर भी सापेक्ष है। तंत्र में उसी शक्ति को परब्रह्ममयी शक्ति परमाशक्ति, महाशक्ति, आद्याशक्ति आदि नामों से संबोधित किया गया है। जिसको उपलब्ध होने का मार्ग एक मात्र तंत्र है। तंत्र उस मार्ग का नाम है जिस पर चलकर उस विश्वव्यापिनी महाशक्ति को प्राप्त किया जा सकता है और किया जा सकता है उपलब्ध।

शक्ति का अर्थ

तंत्र वास्तव में एक गम्भीर और गहन आध्यात्मिक विषय है, जिसका दर्शन पक्ष तो उससे भी अधिक गम्भीर और गहन है। उसकी आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष पर सही ढंग से तभी चिन्तन–मनन सम्भव है जबकि हम शक्ति के विषयों को हृदयंगम कर लेंगे।

तंत्र में मुख्य रूप से परमात्मा अथवा परमेश्वर को 'शिव' के नाम से सम्बोधित किया गया है। शिव और शक्ति के मिलन से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। सम्पूर्ण सृष्टि मैथुनी सृष्टि है इस जगत में दो से तीसरे को उत्पत्ति के मूल में मिथुनभाव है।

परमेश्वर और परमेश्वरी, शिव और शक्ति का पर्याय है। भारतीय दर्शन में इन दोनों को विश्व ब्रह्माण्ड का मूल तत्व बतलाया गया है। इन्हें पुरूष–प्रकृति की भी संज्ञा दी गयी है। वेद में भूततत्व और देवतत्व कहा गया है। भूततत्व, जड़तत्व और देवतत्व, चेतनतत्व है। पहला प्रत्यक्ष है और दूसरा है अनुभवगम्य। सम्पूर्ण सृष्टि में जड़ और चेतन का समन्वय है। लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी के मूल में एक मात्र शक्ति है। शक्ति तो है एक किन्तु उसके आधार भिन्न–भिन्न है। जिस आधार को लेकर वह प्रकट होती है।

शक्ति शब्द का अर्थ अथवा उसकी व्याख्या क्या है? मेरे इस

प्रश्न के उत्तर में महात्मा ने कहा – व्याकरण के अनुसार 'शक्ल शैला' धातु से क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'शक्ति' शब्द बनता है। जिसका तात्पर्य है – 'कारण' वस्तु में जो कार्योत्पादनोपयोगी अपृथक सिद्ध धर्म विशेष है उसी का नाम शक्ति है।

शक्ति जिस वस्तु का आश्रय लेकर प्रकट होती है उसे चैतन्य, अस्थिर और चंचल कर देती है। उसमें क्रियाशीलता आ जाती है। जिसे मैंने निजशक्ति कहा है, चित्शक्ति उसी का पर्याय है। तंत्र में उसी को आद्या अथवा परमाशक्ति कहते हैं। परमा के दो रूप हैं – परा और अपरा परा ज्ञान शक्ति है और अपरा है कर्मशक्ति है। तांत्रिक साधना भूमि में ये तीनों मूल शक्तियों को महाविद्या और अविद्या कहते हैं। महाविद्या ही महामाया है और है परमेश्वर की योगमाया।

तंत्र के चार साधना मार्ग

शैवमार्ग, शैव–शाक्त् मार्ग, शाक्तमार्ग और वैष्णवमार्ग, ये चार प्रमुख मार्ग है तंत्र साधना के। शैवमार्ग में लिंग रूप में शिव और अर्धा के रूप में शक्ति उपास्य है। शैव–शाक्त मार्ग में शिव–शक्ति ही तांत्रिक साधना भूमि में परमेश्वर–परमेश्वरी जिनको कामेश्वर–कामेश्वरी भी कहा गया है–प्रतिष्ठित है। विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि के मूल में कामेश्वर और कामेश्वरी ही एक मात्र हैं। इसलिए तंत्र में इनको प्रधान माना गया है। शाक्तमार्ग में शक्ति प्रधान है शिव, शक्ति के आधीन है। काली के रूप में शक्ति महाकाल के रूप में शिव के ऊपर आरुढ़ है। एक आसीन है और दूसरा है आसन। चौथा साधना मार्ग है वैष्णवमार्ग। इस मार्ग में विष्णु और लक्ष्मी उपास्य हैं। वैष्णवमार्ग की कई शाखायें भी हैं और उनकी विभिन्न साधना पद्धतियाँ भी हैं।

तुमको यह भी ज्ञात होना चाहिए कि त्रिगुण की दृष्टि से वैष्णवतंत्र सात्विक तंत्र मार्ग है। शैव और शैव शाक्ततंत्र राजसी तंत्र मार्ग है।

इसी प्रकार शाक्ततंत्र तामसीतंत्र मार्ग है। इनके अपने अपने मण्डल है। सात्विकतंत्र का संबंध ऋषि मण्डल से है। राजसीतंत्र का संबंध वसु मण्डल से है। इसी प्रकार तामसी तंत्र का दिक् मण्डल से समझना चाहिए। दिक् मण्डल के अन्तर्गत चार लोक हैं – यक्षलोक, गन्धर्वलोक, किन्नरलोक और नागलोक हैं इसी प्रकार ऋषि मण्डल और वसु मण्डल में भी अनेक लोक–लोकान्तर हैं। ऋषि मण्डल में ही गो लोक हैं। और उसके ऊपर हैं परमपद। गो–लोक और परमपद के बीच में शेषशायी भगवान विष्णु और लक्ष्मी का वास है।

शैव–शाक्त और शाक्ततंत्र का विशेष संबंध यक्षलोक से समझना चाहिए। इनसे संबंधित जितनी प्रकार की साधना–उपासनाएं तथा पूजा अर्चनाएं हैं – उन सब पर यक्षों का एक मात्र अधिकार है।

एक बात और यहां बतला देना आवश्यक है कि भू–मण्डल में जिन साधकों की साधना अधूरी रह जाती है, वे साधकगण अपने तंत्र मार्ग से संबंधित मण्डल में रहकर अपनी साधना को पूर्ण करते हैं। और पूर्णत्व लाभ को उपलब्ध होने पर महाशक्ति के स्वरूप में लीन होने के लिए प्रतीक्षा करते हैं वैष्णवतंत्र साधना की चरम उपलब्धि है। अद्वैत लाभ शैवतंत्र साधना और शैव–शाक्ततंत्र साधना की चरम उपलब्धि है सामरस्य महामिलन। इसी प्रकार शाक्ततंत्र साधना मार्ग की चरम उपलब्धि है मातृअंक। आध्यात्मिक भाषा में इन तीनों चरम उपलब्धियों को क्रमशः मोक्ष अथवा परम मुक्ति महानिर्वाण और कैवल्य कहते हैं। लेकिन तीनों एक ही हैं केवल नाम भेद है। फिर भी मातृअंक की अपनी गरिमा और अपना महत्व है। इसीलिये भगवान श्री कृष्ण ने भी मातृअंक की महत्ता को स्वीकार किया है। कंस द्वारा अपने मृतभाईयों को पुनः पार्थिव शरीर देकर उनको मातृअंक यानी अपनी माता की गोद में दे दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि माता की गोद ही मातृअंक है।

शाक्तमार्गीय तंत्रसाधक के शक्ति का कोई न कोई रूप इष्ट होता है। अपने इष्ट की उपलब्धि ही उसका होता है अपना अभीष्ट। यहां अभीष्ट का अर्थ, मातृअंक समझना चाहिए। साधक अपने इष्ट की गोद में हमेशा–हमेशा के लिए समा जाना चाहता है और हो जाना चाहता है हमेशा–हमेशा के लिए लीन। यही तंत्र का है कैवल्य। कैवल्य ही मोक्ष हो परममुक्ति हो परमनिर्वाण हो और हो सामरस्य महामिलन–सभी का परिणाम एक ही है और वह है अस्तित्व का सदैव के लिए नाश। न शरीर का अस्तित्व रह जाता है न मन का, न प्राण का और न तो आत्मा का रह जाता है अस्तित्व।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तंत्र के सभी साधना मार्ग योगपरक है। बिना योग के तांत्रिक साधना बिना चीनी की मिठाई के समान है। यानी व्यर्थ है। बाझं स्त्री के समान।

चारों प्रकार के साधना मार्ग – ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि योगों पर आश्रित हैं। तंत्र का संबंध वेद, उपनिषद, ब्राह्मण और पूर्ण रूप से योग से समझना चाहिए और समझना चाहिए सभी शास्त्रों से भी।

इस प्रसंग के अन्त में यह बतला देना आवश्यक है कि महात्मा अधिक समय तक पार्थिव सत्ता में नहीं रहे। एक दिन जाने पर ज्ञात हुआ कि अपने बन्द कमरे से ही एकाएक गायब हो गये महाशय।

वटयक्षिणी ने बतलाया कि यक्षलोक से इस प्रकार के आने वाले लोग अधिक समय तक संसार में नहीं रहना चाहते।

मेरे यह पूछने पर कि क्या इस प्रकार के और लोग भी हैं भौतिकसत्ता में।

हैं तो! लेकिन उनसे सम्पर्क स्थापित करना पड़ेगा वटयक्षिणी ने कहा – यदि कभी किसी से सम्पर्क हुआ तो अवश्य तुमको बतलाऊँगी मैं।

द्वितीय पात्र

साधना की तीन पद्धतियाँ और देवता के तीन रूप

भौतिक विज्ञान आज अपनी उन्नति और अपने विकास की चरम सीमा पर है इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य के सुख भोगादि से संबंधित समस्याओं की पूर्ति और उसके हल के लिए अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध है इस वैज्ञानिक युग में, किन्तु फिर भी जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं, जबकि मनुष्य अपने आपको हताश–निराश और असहाय अनुभव करता है और तब ऐसे साधनों की खोज में निकल पड़ता है, जिससे उसका उस विषम स्थिति से उद्धार हो। यह वही क्षण है जिस क्षण मनुष्य दैवी शक्ति के सामने नत हो जाता है, झुक जाता है और समझने लगता है अपने आपको हीन–दीन।

आखिर ऐसा क्यों?

इसलिए कि मनुष्य ऐसी शक्ति के आधीन है और नियन्त्रण में है, जो सार्वभौम रूप से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में समान रूप से व्याप्त होते हुए भी एक है और उसी एक को भारतीय अध्यात्म कहता है ब्रह्म शक्ति, परमाद्या शक्ति और जगत नियन्त्रणकारिणी शक्ति। वास्तव में वही एकमात्र ऐसा साधन हैं जिसकी खोज में मनुष्य हर जन्म में भटकता है और उसकी आत्मा उसे प्राप्त करने के लिए बार–बार

जन्म लेती है संसार में।

कहने की आवश्यकता नहीं तंत्र, मंत्र, यंत्र उसी शक्ति को उद्धभूत कर मानव कल्याण के लिए प्रकाशित करते हैं। तात्पर्य यह कि तंत्र, मंत्र, यंत्र वह माध्यम है जिसके द्वारा वह जगत नियन्त्रणकारिणी शक्ति भौतिक जगत में अपने आपको प्रकट करती है और प्रकट होकर मनुष्य की कामनाओं को करती है पूर्ण और करती है उनका कल्याण। लेकिन यह सब तभी सम्भव है जबकि तंत्र, मंत्र, यंत्र से संबंधित पद्धति के अनुसार तांत्रिक क्रिया तांत्रिक अनुष्ठान और तांत्रिक प्रयोग किये जायें।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि तांत्रिक पद्धति, वैदिक पद्धति और पौराणिक पद्धति – ये तीन पद्धतियाँ हैं, जिनमें तांत्रिक पद्धति अपने आपमे गम्भीर, गोपनीय और अपने आपमें रहस्यमय है। तांत्रिक पद्धति के अनुसार मंत्रों का आविर्भाव होता है। यह कार्य सभी लोगों के लिए सम्भव नहीं। जिनके पास अपौरुषेय ज्ञान है वे ही मंत्रों की रचना कर सकने में समर्थ है और वह अपौरुषेय ज्ञान के अधिकारी ऋषिगण है अथवा वे लोग हैं जो परमसमाधि को उपलब्ध है।

मंत्रों के आधार पर यंत्रो का निर्माण होता है। मंत्र द्वारा यंत्र सिद्ध होने पर उसमें देवता के स्वरूप का आविर्भाव होता है और उसमें उसकी प्रकट होती है शक्ति। तांत्रिक साधना भूमि में यंत्र एक विशेष प्रकार का शक्ति पीठ है इसमें सन्देह नहीं। और इसमें भी सन्देह नहीं कि उसका अपना एक विशिष्ट विज्ञान है जो अपने आपमें अति रहस्यमय है।

प्रत्येक देवता के तीन रूप होते है–विग्रह रूप, यंत्र रूप और मंत्र रूप। यंत्र की तरह विग्रह और मंत्र भी शक्तिपीठ है। तीनों रूपों में साम्य होने पर ही तीनों रूपों की सिद्धि सम्भव है अन्यथा नहीं।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि प्रत्येक देवता का अपना

एक मंत्र और एक यंत्र होता है। किसी भी देवी या देवता की उपासना साधना तभी सफलीभूत होती है जब उसके विधिवत पूजन के साथ—साथ उसके यंत्र को धारण कर उसके मंत्र का निर्धारित संख्या के अनुसार जप होता है।

देवता तीन प्रकार के होते हैं - सात्विक, राजसी और तामसी। सात्विक देवता की उपासना उत्तर मुख, राजसी देवता की उपासना पूर्व मुख और तामसी देवता की उपासना पश्चिम मुख बैठ कर करना चाहिए। इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक है कि प्रत्येक देवी अथवा देवता का अपना एक विशिष्ठ वीज़ाक्षर होता है। जिसका अपना महत्व है। मंत्र के प्रारम्भ में वीजाक्षर को संयुक्त क़र मंत्र का जप करने से तत्काल लाभ होता है। जो व्यक्ति तंत्रोंपासना के उपर्युक्त तथ्यों से भली भाँति अवगत है, वास्तव में वही सच्चा तंत्र साधक है।

तंत्र साधकों के संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि प्रकट रूप में उच्चकोटि के तंत्र साधकों की संख्या नगण्य है। जो सच्चे अर्थो में तंत्र साधक हैं, वे शीघ्र अपने आपको प्रकट नहीं करते। वे सदैव गुप्त रहने की ही चेष्टा करते है और अगोचर रखते हैं अपनी वास्तविकता को सदैव। वे ऐसा जीवन व्यतीत करते है और ऐसा व्यवहार भी करते हैं जिससे साधारण लोग कदापि विश्वास नहीं कर सकते कि वे तंत्र साधक है। वास्तव में उनका जीवन जीने का ढंग उनका व्यवहार और उनका आचरण अपने स्वरूप पर आवरण डालने के लिए ही होता है। यदि वे ऐसा न करे तो संसार व समाज में उनका रहना कठिन हो जाय, जीने न दे उनको लोग। और उनकी साधना उपासना आदि में विघ्न उपस्थित हो वह अलग। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो उच्चकोटि के तंत्र साधकों का तांत्रिक साधना मार्ग पूर्ण रूप से योगपरक होता है। और उनका एकमात्र लक्ष्य होता है महानिर्वाण। वे पूर्ण निरपेक्ष होते हैं। उनका जीवन अनाशक्त

और त्यागमय होता है। वे जंगलों में रहें, गुफाओं में रहें या रहें महलों में और डूबे रहें आकण्ठ सुख, ऐश्वर्य के समुद्र में, लेकिन रहेंगे सर्वत्र निर्लिप्त यानी जलकमलवत्। वे बिखरेंगे तो दूसरे के लिए, वे टूटेंगे तो दूसरों के लिए, वे त्याग करेंगे तो दूसरों के लिए, वे दुख कष्ट उठायेंगे तो दूसरों के सुख के लिए, और वे रोयेंगे या हंसेंगे भी तो दूसरों के लिए ही। उनका अपने लिए कुछ भी न होगा। उनके लिए मात्र केवल होगा **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'**।

प्रस्तुत पुस्तक में अब तक जिन साधकों के संबंध में मैने लिखा है और आगे लिखूंगा मैं, वे सभी उपर्युक्त सत्यता को निश्चय ही सिद्ध करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें भी सन्देह नहीं कि ऐसे सिद्ध साधकों और योगियों की खोज और उनसे सम्पर्क स्थापित करने की दिशा में वटयक्षिणी का भरपूर सहयोग बराबर प्राप्त होता रहा मुझे। वह यक्ष बाला मुझे क्यों सहयोग देती थी? इस रहस्य से आज भी पूर्ण परिचित नहीं हूँ मैं। जितने अंश से परिचित हूँ, उसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि यक्षणियाँ मानव के वासना रहित प्रेम की भूखी होती है। सम्भवतः वटयक्षिणी इसका अपवाद नही थी। वह मुझसे वह प्रेम चाहती थी जिसमें न किसी भी प्रकार की कामना हो और न तो हो किसी भी प्रकार की वासना की दुर्गन्ध। सम्भव है ऐसा ही मेरा प्रेम था उस यक्ष कन्या के प्रति।

महातंत्र साधक भवतारण तर्क पंचानन

महातंत्र साधक भवतारण तर्क पंचानन के विषय में वटयक्षिणी ने ही बतलाया था मुझे। वाराणसी के एक सुनसान गली में स्थित एक आश्रमनुमा मकान में रहते थे महाशय। गंगातट की ओर खुलती थी जंग लगी छड़ों वाली खिड़कियाँ। जहाँ से पूरा तो नहीं, लेकिन काशी के घाटो के कुछ मनोहारी दृश्य दिखलायी देते थे अवश्य। अपनी स्मृति के अनुसार सम्भवतः सन् १९६५ ई० में मेरा परिचय हुआ

था भवतारण तर्क पंचानन महाशय से। उस समय उनकी अवस्था रही होगी यही साठ–पैसठ के आस–पास। लेकिन इतनी आयु के लगते नहीं थे वह। योगी और साधकों की यही तो विशेषता है कि अपनी वास्तविक आयु से कम के दीखते है हमेशा। इतनी अवस्था होने पर भी उनके मुख पर विचित्र प्रकार की शान्ति तेज विद्यमान था। दिव्य तेजोमय रक्ताभ नेत्र जिसमें भरा था असीम करुणा और प्रेम का मिला–जुला भाव। जब उस महान साधक के कमरे में मैने प्रवेश किया तो एकबारगी दंग रह गया मैं।

काफी लम्बा–चौड़ा था कमरा। बीच में एक बड़ा सा तख्त था जिस पर बिछा हुआ था लाल रंग का रेशमी चादर। रेशमी गिलाफ की कई तकिया और मसनद भी थे। तख्त के बगल में लगभग पांच फुट ऊँची चमकती हुई आलमारी थी। जिसमें कीमती बेलजियम कांच के पल्ले लगे थे और उन कांच के पल्लों के अन्दर से झांकती हुई कीमती अंग्रेजी शराब की रंग बिरंगी बोतलें, दरवाजों और खिड़कियों पर लटक रहे कीमती रंगीन पर्दे। तख्त के पीछे वर्मा टीक की लकड़ी की बनी खुली आलमारियों में करीने से लगी हुई योग तंत्र से संबंधित मूल्यवान पुस्तकें। गंगा की ओर खुलने वाली लम्बी–चौड़ी खिड़की के पास एक मेज थी बड़ी ही सुन्दर थी वह जिस पर बेलजियम कांच के नक्काशीदार गिलास और पानी से भरे दो तीन जग रखे हुए थे। मदिरापान के लिए थे वे पात्र यह समझते देर न लगी मुझे। पूरे कमरे में एक ऐसी सुगन्ध बिखरी हुई थी जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। तख्त के ठीक सामने लकड़ी के बने एक छोटे से मन्दिर में काली का एक चित्र रखा हुआ था कांच के फ्रेम में मढ़ा हुआ, जिस पर बेले की ताजी माला झूल रही थी।

औपचारिक वार्ता के बाद मैंने जब यह बतलाया कि योग तंत्र मेरी खोज और साथ ही साधना के विषय हैं तो सुनकर एक बारगी

प्रसन्न हो उठे तर्क पंचानन महाशय। उन्होंने एक बार माँ महामाया की छवि की ओर स्थिर भाव से देखा और चमकते हुए कांच के गिलास में मदिरा ढालकर पीने लगे उसे। दूसरे क्षण रक्ताभ हो उठे उनके नेत्र।

योग तांत्रिक साधना के मूल में मन और प्राण - और फिर कमरे के रहस्यमय वातावरण में भवतारण महाशय का गम्भीर स्वर गूंजने लगा। बोले मंत्र की सिद्धि साधारण बात नहीं है। दैवी शक्ति के सामीप्य लाभ का एकमात्र साधन यदि कोई है तो वह है एकमात्र मंत्र। मंत्र का अर्थ है मनन की जाने वाली वस्तु। मंत्र सिद्धि के लिए मन की एकाग्रता, विचारों की स्थिरता और प्राणों पर संयम अति आवश्यक है। एकान्त तो होना ही चाहिए। नदी का तट, श्मशान, पर्वत, शिव या शक्ति मन्दिर और चौराहा, मंत्र साधना के लिए योग्य और अनुकूल स्थान है। सभी प्रकार की तांत्रिक और यौगिक साधनाएं मन के ऊपर निर्भर है और मन है निर्भर प्राण पर। तात्पर्य यह कि मन और प्राण की साधना ही एकमात्र योग और तंत्र साधना है। जिसने अपने मन और अपने प्राण पर अधिकार प्राप्त कर लिया और कर लिया उन्हें संयमित तो समझिये, समस्त अभौतिक सफलताओं और समस्त सिद्धियों के मार्ग खुल गये उसके लिए।

आज के मानव जीवन में जो असफलताएं है और जो हैं समस्यायें, उनका एकमात्र कारण यही है कि मनुष्य का मन असंयमित हो गया है और हो गया है बहिर्मुखी। वह मन के पीछे पागलो की तरह भाग रहा है। इसी कारण देश और समाज के हर क्षेत्र में हाहाकार मचा है। सर्वत्र अशान्ति और अभाव का राज्य है। जैसा कि मैने बतलाया है मन के साथ प्राण का घनिष्ठ संबंध है। मन के अस्थिर और चंचल होने पर प्राण भी (श्वास–प्रश्वास) अस्थिर और चंचल हो उठता है। तीसरा है विचार। जिसका जन्म होता है मन और प्राण के मूल तत्वों

से। विचार में आधा मन है और आधा है प्राण। मन की सहायता से वह स्थिर और एकाग्र होता है और प्राणों के योग से होता है गतिमान।

मन, प्राण और विचार तब तक अपने–अपने स्थान पर अकर्मण्य है अथवा अनुपयोगी है जब तक कि उनका योग, शक्ति से नहीं होता। शक्ति युक्त होने पर मन, प्राण और विचार अपनी–अपनी सीमाओं को तोड़कर असाधारण हो उठते हैं और तब उन्हें प्रचलित भाषा में मनःशक्ति, प्राण शक्ति और विचार शक्ति कहा जाता है। अब प्रश्न यह है कि वह कौन सी शक्ति है? वह है 'आत्मशक्ति'।

जैसे–जैसे मन, प्राण और विचार एकाग्र, स्थिर और संयमित होते जाते हैं, वैसे ही वैसे उन्हें आत्मशक्ति उपलब्ध होती जाती है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि आत्मशक्ति का जो समष्टि रूप है, उसे पराशक्ति, परमाशक्ति, आद्याशक्ति, महाशक्ति आदि नामो से संबोधित किया गया है। इसी शक्ति का व्यष्टि रूप मानव शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विद्यमान है। जहाँ तक प्रश्न मंत्र साधना का है, उसके लिए मनःशक्ति और प्राणशक्ति की ही आवश्यकता पड़ती है। उपर्युक्त दोनों शक्तियों का आश्रय लेकर मंत्र साधना की थी तर्क पंचानन महाशय ने और जिसके द्वारा कई प्रकार की सिद्धियाँ उपलब्ध थी उन्हें, इसमें सन्देह नहीं।

रात्रि का पहला प्रहर समाप्त हो चुका था। और हो चुका था उस महान साधक की साधना का समय भी। इतना बोल चुकने के बाद तर्क पंचानन महाशय अपने स्थान से उठकर आलमारी खोली, शराब की भरी बोतल निकाली और उसे गिलास में उड़ेल कर गट–गट पीने लगे महाशय। अब वहाँ रूकना उचित नहीं समझा मैंने। चरण स्पर्श कर बाहर निकल आया। उसके बाद कई दिनों तक जाना न हो सका मेरा? और जिस दिन गया उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी।

चन्द्रमा का निर्मल धवल प्रकाश पसरा हुआ था चारो तरफ, उसकी कोमल और स्निग्ध ज्योत्सना गंगा की निर्मल धारा पर नृत्य कर रही थी। रात्रि का मध्य प्रहर, सर्वत्र शान्ति और उस शान्ति की गोद में समाधिस्थ काशी के घाटों की मनोहारी श्रृंखलाएं।

नित्य की भांति मदिरापान करने के बाद थोड़ी देर ध्यानस्थ रहे तर्क पंचानन महाशय और फिर साधना विषय पर बाते करने लगे। सम्भवतः साधना का विषय था मंत्रशक्ति। प्रसंगवश बोले वह जिसके द्वारा सूक्ष्म तत्वों को उद्घाटित किया जाता है और पूर्ण रूप से अवगत हुआ जाता है – वही विज्ञान है।

विज्ञान की उत्पत्ति का स्थान मन है। सूक्ष्म ज्ञान मन के द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है। अतः जितने प्रकार के विज्ञान हैं वे सबके सब मन के द्वारा ही प्रकाश में आये हैं। मंत्र भी एक विशिष्ट विज्ञान है। जहाँ तक सृष्टि का संबंध है, वह मंत्रबल से भी सम्भव है और योगबल से भी। अन्तर मात्र केवल इतना ही है कि योगबल के द्वारा हुई सृष्टि में स्थायित्व रहता है उसका नाश प्रकृति के नियम के अनुसार होता है। जबकि मंत्रबल के द्वारा हुई सृष्टि में स्थायित्व नहीं होता। वह विशेष समय तक ही स्थिर रहती है और अपना अस्तित्व बनाए रखती है। इसका कारण यह है कि योगबल में तीनों शक्तियों का समन्वय रहता है जबकि मंत्रबल में केवल मनः शक्ति और प्राण शक्ति का ही सामंजस्य रहता है।

मंत्रशक्ति का चमत्कार

थोड़ा रूक कर तर्क पंचानन महाशय ने एक गिलास में पानी भर कर कहा, इस पानी को मंत्र शक्ति से थोड़े समय के लिए मदिरा के रूप में परिवर्तित कर देता हूँ। मैंने देखा–बिना गिलास का स्पर्श किये केवल दस मिनट तक उसकी ओर देखते हुए मन ही मन कुछ बुदबुदाते रहे महाशय और फिर बोले–लो गिलास उठाकर देखो क्या

है। वैसा ही किया मैंने। गिलास उठाकर देखा देशी शराब का एक तेज भभका भर गया मेरे नासापुट में और मेरा जी मिचलाने लगा उसकी दुर्गन्ध से। फिर तर्क पंचानन महाशय ने और एक गिलास पानी मंगवाया और उसी प्रक्रिया से उस गिलास के पानी को गरम गरम दूध में कर दिया परिवर्तित। कहने की आवश्यकता नही महीनों तक उस मदिरा का और उस दूध का अस्तित्व पूर्ववत बना रहा। न मदिरा की दुर्गन्ध नष्ट हुआ और न तो दूध ही ठण्डा हुआ। क्या इनका उपयोग किया जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में तर्क पंचानन महाशय ने कहा — क्यों नहीं, ये दोनों वस्तुएं असली है नकली नहीं। मदिरा, मदिरा जैसी लगेगी उसका नशा भी होगा। दूध भी दूध जैसा ही लगेगा पीने में और उसका भी स्वाद होगा।

मंत्र शक्ति द्वारा वस्तु का निर्माण सम्भव है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तर्क पंचानन महाशय ने कहा — वस्तु का दूसरे वस्तु में तो परिवर्तित करना सम्भव है, लेकिन निर्माण नहीं। निर्माण दो प्रकार से होता है — प्राकृतिक शक्ति द्वारा और कर्म शक्ति द्वारा। प्राकृतिक शक्ति द्वारा जो वस्तु निर्मित होती है वह चिरस्थायी होती है, क्योंकि उसका निर्माण पंच तत्वों के आश्रय से होता है। कर्म शक्ति द्वारा निर्मित वस्तु का निर्माण होता है मनुष्य के विचार, भाव और संकल्प के आश्रय से। लेकिन उसमें चिरस्थायित्व का अभाव होता है। उसमें परिवर्तनशीलता रहती है। मनुष्य से मनुष्य के शरीर का निर्माण होता है लेकिन आत्मा का नहीं। शरीर चिरस्थायी नहीं है। एक न एक दिन वह नष्ट होगा ही लेकिन उसमें परिवर्तन होता रहता है समयानुसार। जहाँ तक प्रश्न आत्मा का है, वह प्रकृति के आधीन है यानी माया से वशीभूत है। इसलिए उसमें चिरस्थायित्व रहता है। यदि परिवर्तित होती भी है तो उसकी संज्ञा। जैसे मनुष्यात्मा, प्रेतात्मा, सूक्ष्मात्मा, दिव्यात्मा आदि। आत्मा तो है एक ही लेकिन पात्रानुसार

उसका नाम परिवर्तित होता रहता है।

सुना है कि योगबल से किसी भी वस्तु की सृष्टि अथवा निर्माण सम्भव है, जैसा कि कहा भी गया है – **'इच्छामात्रं प्रभो सृष्टि'।**

मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में तर्क पंचानन महाशय ने कहा – हाँ, यह सम्भव है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि इच्छा एक स्वतंत्र वस्तु है और शक्ति भी है अपने आपमें स्वतंत्र। इच्छा तो है लेकिन शक्ति के अभाव में वह साकार नही होती। साकार होने के लिए भौतिकशक्ति, देवीशक्ति और आत्माशक्ति में से कोई एक शक्ति चाहिए। स्वतंत्र रूप से तत्काल जो सृष्टि होती है वह मात्र केवल आत्मशक्ति द्वारा ही होती है। और वह आत्मशक्ति होती है केवल उच्च कोटि के योगियों के पास। अपनी आत्मशक्ति का आश्रय लेकर उच्चकोटि के योगीगण अपनी किसी भी इच्छा को तत्काल साकार कर लेते है। उनके इस यौगिक कार्य में किसी भी प्रकार का आक्षेप नहीं करती प्रकृति।

विश्व ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार की आत्माओं का अस्तित्व

तर्क पंचानन महाशय ने कहा – मैंने जो चमत्कार तुमको अभी दिखाया है वह विशुद्ध मंत्रशक्ति का था चमत्कार। यह जान लेना आवश्यक है कि तंत्र शास्त्र का जो मंत्र पक्ष है वह अत्यन्त गम्भीर और गूढ़ है। साथ ही विस्तृत भी है। तांत्रिक मंत्र से संबंधित ६४ विद्यायें हैं, जिनमें एक है आत्माकर्षणी विद्या। यह अत्यन्त रहस्यमयी गोपनीय एवं अत्यन्त कठिन विद्या है। इसकी रहस्यमयता तथा गोपनीयता को समझ पाना अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस विद्या की साधना करना सभी के बस की बात नहीं लेकिन एक बात अवश्य है और वह यह कि आत्माकर्षणी विद्या के सिद्ध हो जाने पर साधक तीनों प्रकार की आत्माओं को अपने अधिकार में कर उनसे मनोवांछित सहयोग प्राप्त कर सकता है भौतिक भी और अभौतिक भी। इतना

ही नहीं जो आत्माएं मानव योनि में आने के लिए इच्छुक हैं उनको उनके योग्य गर्भ की भी व्यवस्था इस महान सिद्धि के बल पर सम्भव है। वे तीनों कौन–कौन सी आत्माएं हैं? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तर्क पंचानन महाशय ने कहा – इस विश्व ब्रह्माण्ड में मुख्य रूप से तीन प्रकार की आत्माओं का अस्तित्व है – विदेही आत्मा, देवात्मा और मनुष्यात्मा।

विदेही आत्मा - विदेही आत्मा वह आत्मा है जिसका न कोई रूप है और न तो कोई देह ही है। यदि कुछ है तो वह है मात्र केवल उसका अदृश्य अस्तित्व। कभी कदा आवश्यक होने पर अपनी अति स्व ऊर्जा से एक ऐसे शरीर का निर्माण कुछ समय के लिए कर लेती है – जिसे योग की भाषा में वैन्दव शरीर कहते हैं।

वैन्दव शरीर को वही सिद्ध योगी देख सकता है जो मनोमय शरीर का अतिक्रमण कर आत्मशरीर को हो गया है उपलब्ध। विश्व ब्रह्माण्ड में कुल सोलह मण्डल हैं जिनमें एक है सप्तऋषि मण्डल। जिसके पश्चिम ओर नर–नारायण मण्डल है और उत्तर की ओर मान्धाता पर्वत के ठीक ऊपर सनक, सनन्दन और सनत कुमार का दिव्य मण्डल है और उसी दिव्य मण्डल के ऊपर आत्म मण्डल है। जिसमें विदेही आत्माएं आनन्दमग्न रहती है। सूर्य की सप्त रश्मियों के माध्यम से विदेही आत्माओं का सम्पर्क सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड से बराबर बना रहता है। उच्चकोटि के सिद्ध, साधक, योगी और सन्त महात्माओं की आत्मा को दिव्यात्मा कहते हैं। दिव्यात्मा शरीरधारी हो या हो अशरीरी उनसे सूर्य रश्मियों के माध्यम से विदेही आत्माएं बराबर संबंध बनाए रखती हैं जिसके परिणामस्वरूप उच्चकोटि के सन्त महात्मा, सिद्ध साधक और योगीगण बराबर आत्मोन्नति करते हुए आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होते रहते हैं।

विदेही आत्माओं द्वारा मनुष्यात्माओं को अहैतुकी सहयोग -

जिस मनुष्य की आत्मा शुभ संस्कार सम्पन्न है। जिसका कई जन्मों का पुण्य उदय है और जो अध्यात्म में आस्था रखता है और जो शुभ भाव और शुद्ध विचार रखता है। ऐसे मनुष्य को उसकी आत्मा के माध्यम से समय–समय पर विदेही आत्माएं, बिना किसी साधना–उपासना के और बिना किसी आध्यात्मिक प्रयास के अपना अगोचर सहयोग प्रदान करती है। जिसके फलस्वरूप उस मनुष्य द्वारा संसार और समाज का कल्याण होता है। बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है और विकास होता है ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में।

थोड़ा रूक कर तर्क पंचानन महाशय आगे बोले – तुमको ज्ञात होना चाहिए कि इस सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में कोई सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो वह है मात्र केवल मनुष्य। उसे कई प्रकार से श्रेष्ठता उपलब्ध हुई है। पहला है मन। मनुष्य मन का स्वामी है। मन केवल मनुष्य के पास है अन्य किसी प्राणी के पास नहीं, इसीलिए उसे मनुष्य कहते है। दूसरा है कर्म। कर्म केवल मनुष्य कर सकता है, अन्य कोई प्राणी नहीं। कर्म सम्पादन के लिए मानव शरीर आवश्यक है इसलिए मानव शरीर भी अपने आप मे महत्वपूर्ण और गरिमामय है, दुर्लभ भी है और इसीलिए परब्रह्म परमेश्वर को भी अपने जागतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय–समय पर मानव देह स्वीकार करना पड़ता है। और यही एकमात्र कारण है कि विदेही आत्माओं को भी मनुष्य प्रिय है। इसी का परिणाम है कि परमात्मा द्वारा प्रेरित होकर विदेही आत्माएं मनुष्य को प्रेरणा देती है दिशा–निर्देश करती है और सहयोग प्रदान करती है बौद्धिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, आध्यात्मिक क्षेत्र में और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में। अब तक उपर्युक्त क्षेत्रों में जो उन्नति हुई और जो विकास हुआ है और भविष्य में होगा उसका आधार एकमात्र यही रहस्यमय तथ्य है। यह हुई विदेही आत्माओं की मनुष्य के प्रति अहैतुकी कृपा और निरपेक्ष सहयोग।

विदेही आत्माओं के लिए आत्माकर्षणी विद्या का प्रयोग - जो संस्कार सम्पन्न व्यक्ति अपनी आत्मोन्नति के लिए आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होना चाहता है और उसके लिए चाहता है विदेही आत्माओं का सहयोग और मार्गदर्शन तो उसके लिए 'आत्माकर्षणी विद्या' अत्यन्त सहयोगी सिद्ध होती है। उसकी साधना पूर्ण होने पर परिणामस्वरूप जो सिद्धिलाभ होता है। उसमे विदेही आत्माएं ऐसे साधक को उसकी आत्मा के माध्यम से उसे सहयोग और मार्गदर्शन प्रदान करती है। इतना ही नही आवश्यकता पड़ने पर सद्‌गुरु के रूप में साधक को दर्शन भी देती है और उसके इष्ट के विषय में भी बतलाती है। इष्ट के स्वरूप का ज्ञान होने पर इष्ट स्वयं सद्‌गुरु का स्थान ग्रहण कर लेता है। और समय–समय पर साधक का पथ प्रदर्शन भी करता है। ये सारे व्यापार आन्तर जगत में और आन्तरिक रूप से होते है। जिसे साधारणजन नहीं समझ सकते।

तीन प्रकार की देवात्माएं

विश्व ब्रह्माण्ड में जितने प्रकार के देवता है उन्हें मुख्य रूप से तीन श्रेणी में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी में सात्विक देवता है। दूसरी श्रेणी में राजसी देवता है, जिनको उपदेवता कहते है। तीसरी श्रेणी में तामसी देवता है, जिनको अपदेवता की संज्ञा दी गयी है। सात्विक देवात्माओं का शरीर आकाशतत्व से बना हुआ होता है। आकाश पंचतत्वों में मुख्य और प्रधान है। इसलिए कि उसमे सभी अन्य तत्व एक के बाद एक कर विलीन हो जाते है। विभिन्न प्रकार की सात्विक साधना–उपासना आदि के द्वारा जब हम किसी सात्विक देवता से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते है तो वह देवता हमारे आकाशीय शरीर के प्रति आकर्षित होकर उसके माध्यम से हमारी भावना के अनुरूप हमारी कामना को पूर्ण करता है। हमारा आकाशीय शरीर जितना शुद्ध, निर्मल और सात्विक रहेगा उतना ही उस देवता

का अनुग्रह और उसकी कृपा होगी हमे उपलब्ध।

दूसरी श्रेणी के देवता को राजसी देवता कहते हैं। वे उपदेवता है। उनके शरीर का निर्माण वायु तत्व से हुआ रहता है। वायु तत्व को सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम प्राण कहते हैं। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि उपदेवता की श्रेणी में आते है। वे रजोगुणी प्रवृत्ति और स्वभाव के होते है। राजसी साधना उपासना आदि के द्वारा आकर्षित होकर उपदेवता हमारे प्राणमय शरीर से सम्पर्क स्थापित कर उसके माध्यम से हमारी कामना अथवा इच्छा को पूर्ण करते हैं। हमारी राजसी साधना उपासना आदि जितनी अनुकूल रहेगी और हमारा प्राणमय शरीर जितना उस देवता के योग्य रहेगा उतना ही उस देवता की कृपा और अनुकम्पा हमे प्राप्त होगी। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि उपदेवताओं में प्रबल प्राण शक्ति होती है। अपनी उसी शक्ति का आश्रय लेकर आवश्यकता पड़ने पर भौतिक शरीर भी धारण कर लेती हैं वे। सात्विक देवात्माएं भाव की भूखी होती है। उनका एकमात्र भोजन भाव है। वैसे ही उपदेवता का भोजन है प्रेम, सौन्दर्य, कला और भावना। भाव का संबंध आत्मा से और भावना का संबंध मन से समझना चाहिए। भाव और भावना में यही अन्तर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आत्माकर्षणी विद्या के द्वारा इन दोनों प्रकार के देवताओं को आकर्षित कर अपने मनोनुकूल किया जा सकता है। इसमे सन्देह नहीं।

तीसरी श्रेणी में आते है अपदेवता। हाकिनी, डाकिनी, शाकिनी, पिशाच, बेताल आदि गुह्ययोनि के अपदेवता है। गुह्ययोनि, मानव योनि के बाद एक विशिष्ट योनि है। इस योनि की अपदेवात्माएं कभी भी मानव योनि में जन्म नही लेती। वे अपनी ही योनि में जन्म लेती है। पिशाच से पिशाच ही जन्म लेगा, दूसरा और कोई नहीं। हाकिनियों की सोलह जातियां है और इसी प्रकार डाकिनियों और शाकिनियों

की भी सोलह–सोलह जातियाँ है। ग्यारह जातियाँ पिशाचों की है और इसी प्रकार सोलह जातियाँ बेतालों की भी हैं। सभी की जातियों के नाम अलग–अलग है। और प्रत्येक जाति की साधना–उपासना आदि भी भिन्न–भिन्न है। अपदेवताओं के शरीर का निर्माण अग्नि तत्व से हुआ रहता है। उनके स्वभाव में रजोगुण और तमोगुण दोनों का मिश्रण होता है। वे क्रोधी होते हैं तो दयालु भी। कल्याण करते है तो अकल्याण भी। इनमें मनोबल और प्राणबल दोनों की अधिकता रहती है। कहाँ क्या हो रहा है? वे अपने मनोबल से तत्काल जान जाते हैं। यही नहीं कहाँ कौन सी और कैसी घटना घटने वाली है–यह भी अपने मनोबल से तत्काल जान जाते है वे। उनका अत्यधिक उग्र होता है स्वभाव। तमोगुणी तांत्रिक विधि से की गयी आत्मकर्षणी विद्या की साधना से आकर्षित होकर वे भी साधक के मनोमय अथवा प्राणमय शरीर द्वारा उससे सम्पर्क करते हैं और साधक का मनोरथ पूर्ण करते हैं। कभी–कभी अपने निज रूप में तो कभी–कभी साधक के इक्षित रूप में प्रत्यक्ष प्रकट भी होते हैं। यह कहना अनावश्यक न होगा कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के देवताओं की साधना–उपासना और उनसे संबंधित गुह्य तांत्रिक एवं यौगिक क्रियायें अपने आपमें अति कठिन और गूढ़ है। उनकी गोपनीयता से उच्चकोटि के तंत्र साधक ही परिचित हो सकते हैं। यदि हम उनके अनुकूल होने की चेष्टा करे तो उनकी अहैतुकी कृपा–अनुकम्पा और सहयोग अगोचर रूप से बराबर उपलब्ध हो सकता है बिना किसी बाधा के और बिना किसी साधना–उपासना के।

अभौतिक सत्ता और उसके चार मुख्य भाग

इस सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में सृष्टि तत्व के दो मुख्य रूप है–भौतिक रूप और अभौतिक रूप। जो दृश्यमान है वह भौतिक रूप की सत्ता है और जो अदृश्यमान है गोचर पथ पर नहीं है वह अभौतिक

रूप की सत्ता है। प्रचलित भाषा में इन दोनों को भौतिक सत्ता और अभौतिक सत्ता कहते हैं। विश्व ब्रह्माण्ड का मात्र केवल एक भाग गोचर पथ के अन्तर्गत है और शेष तीन भाग है अगोचर पथ के अन्तर्गत।

अभौतिक सत्ता चार मुख्य भागों में विभक्त है। जिनके ऊपर ऋषि मण्डल है और ऋषि मण्डल के ऊपर है ब्रह्म मण्डल। ऋषि मण्डल के नीचे देव मण्डल है और उसी मण्डल की सीमा के अन्तर्गत उपर्युक्त चारों भाग है। ब्रह्म मण्डल और ऋषि मण्डल से क्रमशः श्वेत वर्ण और स्वर्ण वर्ण की रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं जो मनुष्य के सहस्त्रार चक्र और आज्ञा चक्र को प्रभावित करती है। देव मण्डल के पहले भाग में सात्विक गुण, धर्म और स्वभाव की देवात्माएं निवास करती है। इस भाग के अन्तर्गत कई लोक–लोकान्तर है। देव मण्डल के इस भाग से हल्की नीलिमा युक्त श्वेत वर्ण की रश्मियाँ विकीर्ण होती है जो मनुष्य के विशुद्ध चक्र को प्रभावित करती हैं।

देव मण्डल के दूसरे भाग में राजसी गुण, धर्म और स्वभाव की उपदेवतात्माएं निवास करती हैं। इस भाग से सिन्दूरी वर्ण की रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं जो मनुष्य के मणिपूरक चक्र को करती है प्रभावित।

देव मण्डल के तीसरे भाग में रजोगुण और तमोगुण मिश्रित गुण, धर्म और स्वभाव की अपदेवतात्मायें निवास करती हैं। इन दोनों भागों के अन्तर्गत कई लोक–लोकान्तर और जगत हैं। इससे पीतवर्ण की रश्मियाँ विकीर्ण होती है जो मनुष्य के स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करती है।

रश्मियों द्वारा मण्डलों से तादात्म्य - तर्क पंचानन महाशय बोले–एक रहस्य की बात तुमको बतलाता हूँ और वह यह कि जिस मण्डल से जिस प्रकार की रश्मि विकीर्ण होती है, उसी प्रकार की रश्मि उस चक्र से भी विकीर्ण होती है जिस रश्मि से वह चक्र प्रभावित अथवा अनुप्राणित होता है। वे रश्मियाँ वास्तव में एक प्रकार की

ब्रह्माण्डीय ऊर्जाएं है। उनकी अपनी–अपनी विद्युत चुम्बकीय तरंगे हैं। जिनकी गति भी भिन्न–भिन्न है और है विलक्षण। जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। योग तांत्रिक साधना भूमि में रश्मियों से प्रस्फुटित होने वाली उन विद्युत चुम्बकीय तरंगों का अपना भारी महत्व है। महत्व का पहला कारण यह है कि यदि हम पद्मासन की मुद्रा में मन को एकाग्र कर जिस चक्र पर चित्त को स्थिर करेंगे उस चक्र से विकीर्ण होने वाली तरंगे मण्डलीय तरंगों से तादात्म्य स्थापित कर लेती है और सहज ही उस तादात्म्य के माध्यम से हमारा संबंध स्थापित हो जाता है उस मण्डल से, उस अवस्था में यदि हम उस मण्डल में निवास करने वाली किसी भी वर्ग की देवात्मा के बीजाक्षरों को आत्माकर्षणी विद्या से संबंधित मंत्र में संयुक्त कर एक विशेष संख्या की सीमा तक जप करते हैं तो निश्चय ही उस वर्ग की देवात्मा आकर्षित होकर संबंधित चक्र के माध्यम से हमारी आत्मा से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेगी, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक वर्ग की देवतात्माओं की अपनी–अपनी वृत्तियाँ और अपनी–अपनी भावनाएं भी होती है। हमारी आत्मा तत्काल उनकी वृत्तियों और भावनाओं को समझ लेती है और भौतिक स्तर पर वे हमसे क्या चाहती है? और हमारे सहयोग से अपने किस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहती है? ये सब भी अपने आप अच्छी तरह समझ लेती है हमारी आत्मा। यदि हम अपने भौतिक स्तर पर उनकी अभौतिक वृत्तियों, भावनाओं और उनके उद्देश्यों को साकार कर सकने में समर्थ हैं तो निस्सन्देह वह तादात्म्य स्थायित्व ग्रहण कर लेगा। तादात्म्य की अवस्था में हमे एक विशेष प्रकार की आत्मिक अनुभूति होती है, एक विशेष प्रकार के आनन्द का भी होता है अनुभव। सच में वह अनुभूति और वह आनन्द अपने आपमे अनिर्वचनीय होता है।

तादात्म्य की उस आन्तरिक स्थिति में एक विशेष योग तांत्रिक

क्रियाओं का आश्रय लेकर एक विशेष स्थान पर बैठकर और एक विशेष संख्या तक मंत्र का जप करने पर वे देवात्मा जिस स्तर की है और जिस गुण धर्म की है उसके अनुसार हमारी इच्छा, अभिलाषा, आशा, कामना आदि को अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य के आधार पर निस्सन्देह पूर्ण कर देती है।

कौन सी देवात्मा कौन से कार्य में सहयोग देती है? ऊपर दिये गये विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार हम अभौतिक स्तर की आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करने के इच्छुक रहते हैं और उनसे सहयोग चाहते हैं वैसे ही सभी वर्ग और सभी श्रेणी की आत्माएं भी हमसे संबंध बनाने के इच्छुक रहती है और वे भी चाहती है कि मनुष्य उनकी सहायता करें, सहयोग दे और भौतिक स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। इस प्रसंग में एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि देवता शब्द का अर्थ है सदैव देने वाला। भले ही वह देवता किसी भी कोटि का और किसी भी श्रेणी का क्यों न हो, बस देना जानता है वह लेना नहीं। जितने भी जगत हैं इस विश्व ब्रह्माण्ड की सीमा के अन्तर्गत उनमें स्थूल जगत का सर्वाधिक महत्व है और उसी प्रकार सर्वाधिक महत्व है स्थूल जगत में निवास करने वाले मनुष्य का, इसलिए कि स्थूल जगत ही एक ऐसा जगत है जो अन्य सभी जगत से श्रेष्ठ हैं उसकी श्रेष्ठता इसी में निहित है कि आत्मा की जागृत अवस्था है वह। और स्थूल जगत में जितने और जितने प्रकार के प्राणी हैं उनमें श्रेष्ठ प्राणी एकमात्र मनुष्य है क्योंकि बुद्धि, विवेक, विचार, ज्ञान, प्रज्ञा और मन ये सब अपने-अपने विकसित रूप में उसमें एक साथ समाविष्ट है, इसलिए जितनी भी मानवेतर आत्माएं हैं, वे अपनी किसी भी कामना और भावना को साकार रूप देने के लिए मनुष्य के माध्यम से स्थूल जगत का ही आश्रय लेती हैं। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि परब्रह्म परमेश्वर को भी

अपने उद्देश्य को साकार करने के लिए कई बार मनुष्य शरीर ग्रहण करना पड़ा और स्थूल जगत का लेना पड़ा आश्रय। जिनकी लीला और जिनके चरित्र से प्लावित है हमारा धर्म और संस्कृति। अब प्रश्न यह है कि कौन सी देवात्माएं हमारी कौन सी कामना को पूर्ण करती हैं और कौन से उद्देश्य को करती है साकार।

सात्विक देवात्माएँ - मंत्राविष्ट होकर जब सात्विक देवात्माएं हमारे सम्पर्क में आती हैं तो प्रसन्न होती है। उनको मनुष्य का सान्निध्य सुखद प्रतीत होता है। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि सात्विक आत्माएं तभी हमारे सम्पर्क में आयेंगी और हमसे तभी तादात्म्य स्थापित करेंगी जब हम स्वयं शरीर से मन से और आत्मा से सात्विक होंगे। सात्विक आत्माएं, धर्म और संस्कृति के उत्थान में देश और समाज के कल्याण में आध्यात्मिक दिशा में धार्मिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन मनन और अध्ययन में हमारे लिए अति सहयोगी सिद्ध होती है। इतना ही नहीं हमारे विचारों पर अपना प्रभाव डालकर हमारे द्वारा गरीबो की सहायता करती है, मठ, आश्रम, पाठशाला, धर्मशाला आदि का निर्माण करती है। और निर्माण करती हैं कूप, सरोवर, मन्दिर और तीर्थ स्थानों में देव स्थापना। ऐसी देवात्माओं के सान्निध्य में रहने वाला व्यक्ति सदैव आत्मिक सुख का अनुभव करता है। सदैव आनन्दमग्न रहता है और सदैव लोक कल्याण करता है। उसकी वाणी से वे ही शब्द प्रस्फुटित होते है, जिसे वे देवात्माएं प्रकट करना चाहती हैं। उसकी लेखनी उसी विषय को लिपिबद्ध करती है जिसे वे देवत्माएं संसार को प्रदान करना चाहती हैं।

देवात्माओं के सम्पर्क में रहनेवाला व्यक्ति अपने विषय में तो कम लेकिन अन्य लोगों के विषय में अधिक विचार करता है और यथा सामर्थ्य सेवा भाव से उनकी सहायता भी करता है। वह सदैव अन्तर्मुखी रहता है और रहता है अपने आपमे लीन। ऐसा व्यक्ति निस्सन्देह

श्रेयहीन होता है और रहता है उपेक्षित। अब तक हमारे देश में जितने मनस्वी, मनीषी और महापुरुष हो चुके है, वे सभी किसी न किसी माध्यम से देवात्माओं के सम्पर्क में रहे होंगे और उनको अहर्निश सान्निध्य प्राप्त रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि सात्विक वृत्ति की देवात्माएं मनुष्य शरीर धारण करके भी कभी–कभी सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति की सहायता करती है। स्वयं अपना ही एक अविश्वसनीय अनुभव सुनाता हूँ तुमको।

एक देवात्मा का सान्निध्य

मैं उस समय नासिक में था। गोदावरी में स्नान करना त्र्यम्बकेश्वर महादेव का दर्शन पूजन करना और रात्रि में साधना करना बस यही मेरी दिनचर्या थी उन दिनों। सात्विक विधि से आत्माकर्षणी विद्या से संबंधित साधना करता था मै। लगभग चार–पाँच वर्ष का समय व्यतीत होने पर भी कोई प्रत्यक्षानुभूति नही हुई थी मुझे लेकिन एक बात अवश्य थी, वह यह कि मेरी आत्मा सदैव प्रफुल्ल रहती थी और मन रहता था सदैव प्रसन्न। गोदावरी के तट पर बिल्कुल निर्जन इलाके में झोपड़ी थी मेरी। अकेले रहता था मै। कभी कदा कोई साधु सन्यासी आ जाता तो उसकी सेवा कर देता। दो तीन दिन रहकर चला जाता वह फिर। ऐसे ही एक बार मेरी कुटिया में एक महात्मा का आगमन हुआ। महात्मा तेजस्वी पुरुष लगे मुझे। लम्बी–चौड़ी कद काठी के थे वह। गौरांग शरीर था उनका। सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व, बड़ी–बड़ी आँखे, जिनमें थी नैसर्गिक चमक। शरीर पर गैरिक वस्त्र था और पैरो में खड़ाऊँ। महात्मा का सान्निध्य सुखकर प्रतीत हुआ मुझे। काफी देर तक अपलक उनकी ओर निहारता रहा मै। महात्मा की बातचीत करने का ढंग, व्यवहार और आव भाव विचित्र और रहस्यमय लगा मुझे। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावशाली होते

हुए भी रहस्यमय था इसमें सन्देह नहीं। पूरे एक मास रहे महात्मा मेरी झोपड़ी में। इस अवधि में महात्मा को न नित्य क्रिया करते हुए देखा न स्नान करते हुए देखा, न सोते हुए देखा, न कहीं बाहर घूमते हुए देखा और न तो भोजन ही करते हुए देखा मैंने। कभी कदा दूध पीकर कुछ फल खाते हुए देखा था अवश्य मैंने। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह दूध और फल उनको कहाँ से और कैसे प्राप्त हो जाता था? उस दिन चैत्र पूर्णिमा थी। महात्मा ने गम्भीर स्वर में मुझसे कहा—आज भण्डारा कराने का विचार है। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। भण्डारा के संबंध में मैं भी कई दिनों से सोच रहा था लेकिन धनाभाव के कारण सम्भव नहीं था वह कार्य। मैंने पूछा — आपका विचार तो ठीक है लेकिन भण्डारा के लिए धन चाहिए। उसकी व्यवस्था ...।

मेरा वाक्य पूरा नहीं हुआ, बीच में ही महात्मा बोल पड़े उसकी चिन्ता तुमको नहीं करनी चाहिए उसकी व्यवस्था हो जायेगी यह कहकर महात्मा ने हजार—हजार के दस नोट मेरे सामने रख दिया। जिसे देखकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। दस हजार के नोट महात्मा के पास आया कैसे? निश्चय ही यह महात्मा कोई साधारण पुरुष नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि मेरे विचार को वह कैसे जान गये थे? भण्डारा हुआ। पूरे सात दिन चलता रहा भण्डारा। और उन सात दिनों में लगभग हजारों साधु सन्तों ने भोजन किया और फिर भी खाद्य सामग्री शेष रह गयी थी।

मेरी अदम्य इच्छा थी कैलाश मानसरोवर की यात्रा करने की। वह इच्छा भी महात्मा की कृपा से पूर्ण हो गयी। लौटकर जब मैं हरिद्वार में ठहरा तो महात्मा बोले — काशी चलना होगा। काशी में सदैव के लिए निवास करने की मेरी इच्छा पहले से ही थी और वह भी पूरी हो गयी। पिछले पच्चीस वर्षो से काशी वास कर रहा हूँ मैं।

महात्मा का क्या हुआ? जिज्ञासु भाव से पूछा मैंने? महात्मा कुछ समय तक रहे मेरे साथ काशी में। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि कैसे वह जान जाते थे मेरी इच्छा अथवा कामना को। और वह पूरी हो जाती थी उनके द्वारा। पहले से ही महात्मा का व्यक्तित्व रहस्यमय था मेरे लिए। लेकिन काशी निवास काल में वह और रहस्यमय हो उठा था। प्रायः रात्रि के समय घण्टो सत्संग होता मेरा महात्मा के साथ। कभी योग पर और कभी तंत्र अथवा अध्यात्म के किसी विषय पर। कहने की आवश्यकता नहीं महात्मा द्वारा योग–तांत्रिक साधना भूमि में आशातीत कई रहस्यमयी उपलब्धियाँ हुई मुझे, इसमें सन्देह नहीं।

और फिर एक दिन।

अर्द्ध रात्रि का समय। गंगातट पर बैठा था मैं और मेरे बगल में बैठे थे महात्मा भी। मौन, निहार रहे थे आकाश की ओर वह। एकाएक अपने स्थान से उठे और खड़े होकर गम्भीर स्वर में बोले – अच्छा भवतारण। मेरा समय हो गया। अब चलता हूँ मैं। मेरे कुछ पूछने और कुछ बोलने के पहले ही आश्चर्यजनक ढंग से गायब हो गये महाशय। भौचक्का सा मुंह बाये चारो ओर देखने लगा मैं। वातावरण में गहरी नीरवता बिखरी हुई थी उस समय।

पूरे पाँच वर्ष मेरे साथ रहे थे महात्मा। लेकिन कौन थे? कहाँ से आये थे और फिर एकाएक अदृश्य हो गये देखते ही देखते वह। उस रात सो न सका मैं। बार–बार महात्मा का रहस्यमय व्यक्तित्व उभर आता मेरे मानस पटल पर, भोर के समय थोड़ी सी झपकी लगी और उसी तन्द्रिल अवस्था में देखा मेरे सामने मुस्कराते महात्मा खड़े है। उनका पूरा शरीर पारदर्शक था। जिसमें से स्वर्णमयी रश्मियाँ विकीर्ण हो रही थी। उनके न होठ हिले और न तो कोई शब्द मुख से निकला लेकिन वह क्या कहना चाहते है यह समझते देर न लगी

मुझे। महात्मा और कोई नहीं, देवपुरुष थे। मेरी साधना से आकर्षित होकर उन्होंने सशरीर तादात्म्य स्थापित किया था मुझसे और मेरी कामना को किया था साकार।

क्या अभी भी संबंध है उस देवात्मा से आपका? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में थोड़ा मौन रहकर तर्क पंचानन महाशय बोले — हाँ! अभी भी है लेकिन साकार रूप में फिर प्रत्यक्ष नहीं हुई वह देवात्मा। हाँ! एक बात अवश्य है और वह यह कि मेरी सात्विक इच्छा, कामना और अभिलाषा को अवश्य अदृश्य रूप से पूर्ण कर देती है वह।

देवात्मा द्वारा वस्तु की सृष्टि - थोड़ा रूक कर न जाने क्या सोचने लगे तर्क पंचानन महाशय फिर बोले — कई दिनों से मेरी इच्छा थी तुमको पंचमेवा की खीर खिलाने की। मेरा विचार है कि आज इसी समय खीर खिला दूँ तुमको। आश्चर्यचकित रह गया मैं। खीर खाने की इच्छा मेरी भी प्रबल थी कई दिनों से। क्या मेरे मन की बात जान गये थे तर्क पंचानन महाशय, लेकिन कैसे? अभी मैं यही सोच रहा था कि देखा न जाने कहाँ से और कैसे एक बड़े से चांदी के कटोरे में भरा पंचमेवा का गरम–गरम खीर प्रकट हो गया तर्क पंचानन महाशय के सम्मुख। स्तब्ध रह गया मैं एक बारगी सचमुच उस देवात्मा ने अदृश्य रूप से सृष्टि की थी उस खीर की, इसमें सन्देह नहीं। खीर अति स्वादिष्ट थी। उसका स्वाद कभी भी भुलाया न जा सकेगा मुझसे।

तर्क पंचानन महाशय का पिछला जन्म

एक दिन प्रसंगवश तर्क पंचानन महाशय ने कहा — जब मैं पहली बार महात्मा के साथ काशी आया तो मुझे ऐसा लगा कि काशी से भली भांति परिचित हूँ मैं। काशी की गलियाँ, घाट और सभी मन्दिर मेरे जाने पहचाने है। जब इसकी चर्चा मैने महात्मा से की तो मुस्कराकर बोले तुम्हारा अनुमान सत्य है। कभी इस सत्य का स्वयं अनुभव हो

जायेगा तुम्हे।

क्या आपको अनुभव हुआ?

हाँ! हुआ। अनुभव ही नहीं प्रत्यक्ष देखा मैंने अपने पिछले जन्म को और जीवन को भी।

वह कैसे? व्यग्र हो उठा मैं।

महात्मा के चले जाने के बाद अपने पिछले जन्म के विषय में जानने–समझने के लिए एक दिन व्यग्र हो उठा था मैं। उसी समय उस रहस्यमयी देवात्मा के सामीप्य का अनुभव हुआ मुझे एकाएक और उसी समय प्रकट हुआ एक गोलाकार धवल प्रकाश पुंज मेरे सामने। हत्प्रभ सा देखने लगा मैं उस प्रकाश पुंज को। मैंने देखा–वह प्रकाशपुंज धीरे–धीरे सिमट कर एक बिन्दु के रूप में परिवर्तित हो गया। बाद में लगा जैसे वह बिन्दु मेरी आँखों में समा गया और दूसरे क्षण मेरी आँखे बन्द हो गयी अपने आप और उस स्थिति में अपने पूर्व जन्म को देखा मैंने। जिस मकान में तुम बैठे हो यही मकान था मेरा पिछले जन्म में भी। एक सुन्दर युवा ब्राह्मण के रूप में देखा मैंने अपने आपको, अपनी पत्नी और अपने दोनों पुत्रों को भी पहचानने में भूल नही हुई मुझसे। वेदपाठी ब्राह्मण था मैं। लोग मेरा सम्मान करते थे। कथा वाचक भी था मैं, प्रायः उच्च परिवार के धनाढ्य लोग मेरी कथा सुनते थे और खूब दान दक्षिणा भी देते थे। मेरे एक गुरू थे। योगी पुरुष थे वह। वाराणसी में उनका खूब नाम था। वाराणसी के बाहर भी उनकी प्रसिद्धि थी। उनके शिष्यों की भी संख्या कम न थी। उन्होंने मुझे योग की दीक्षा दी थी। अल्पकाल में ही मेरी समाधि लगने लग गयी थी। मेरा अधिक समय समाधि में ही व्यतीत होने लगा था। उस समय मेरी अवस्था सत्तर–पचहत्तर के लगभग थी। मेरा भरा पूरा परिवार था। नाती–पोते, बहु–बेटियाँ सब थी बस पत्नी नहीं थी। पत्नी का देहान्त दस वर्ष पूर्व हो चुका था। अब मेरा सारा

समय ध्यान, धारणा और समाधि में ही व्यतीत होता था। समाधि की अवस्था में सूक्ष्म शरीर पर नियन्त्रण आवश्यक है। एक दिन समाधि की गहरी अवस्था में पहुँच गया मैं और सूक्ष्म शरीर पर से मेरा नियन्त्रण हट गया और फिर वापस नहीं लौटा मैं अपने स्थूल शरीर में। मतलब यह कि मेरी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के बाद बहुत समय तक अपने गुरुदेव के साथ लोक–लोकान्तरों में भ्रमण करता रहा मैं और फिर कब और कैसे मेरा पुनर्जन्म हो गया यह नहीं बतला सकता मैं।

थोड़ा रूक कर तर्क पंचानन महाशय आगे बोले पूर्व जन्म का ज्ञान होने पर सर्वप्रथम मैंने उस मकान की खोज की जिसमें मैंने पिछले जन्म का जीवन व्यतीत किया था। अधिक परेशानी नहीं हुई और मकान मिल गया मुझे। उस समय एक बंगाली सज्जन उसमें रहते थे। नाम था निशिकान्त मुखर्जी। बंगाल से आकर काशीवास के लिए मेरे दामाद से उस मकान को खरीदा था उन्होंने। वृद्ध सज्जन पुरुष थे मुखर्जी महाशय। परिवार कलकत्ता में रहता था। धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण सहज ही प्रभावित हो गये वह मुझसे। जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि मकान में रहने के लिए एक कमरा मिल गया मुझे। उस दिन खूब प्रसन्न था मैं। कुछ समय बाद देवात्मा की सहायता से मैंने उस मकान को खरीद लिया। कुछ समय तक रहे निशिकान्त महाशय, फिर उनका देहान्त हो गया।

रात के दो बज चुके थे। प्रसंग ऐसा था कि न मुझे समय का ज्ञान रहा और न तो तर्क पंचानन महाशय को ही। अपनी साधना पूजा आदि भी न कर सके थे समय पर महाशय। अपने स्थान से उठते हुए बोले – तर्क पंचानन महाशय अब फिर कभी आना तो आगे के विषयों पर चर्चा होगी।

उपदेवता यक्ष

उस दिन के बाद काफी व्यस्त हो गया था मैं, लगभग एक महीने

तक न जा सका तर्क पंचानन महाशय के दर्शन के निमित्त। मेरी जिज्ञासाएं अभी पूर्ण नहीं हुई थी और कौतूहल भी शान्त नही हुआ था पूरी तरह। बहुत से विषयों पर चर्चा अभी नहीं हुई थी अधूरी थी वे।

एक दिन दोपहर के समय ही पहुँच गया मैं। सोचा सांझ होते ही वापस लौट आऊँगा ताकि तर्क पंचानन महाशय की साधना में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। एक जोड़ी धोती, एक जोड़ी गंजी और एक जोड़ा गमछा साथ ले जाना न भूला। एक बोतल बढ़िया अंग्रेजी शराब भी रख लिया मैंने। झोले में एक ओर।

अपने मनोनुकूल सामग्री देखकर तर्कपंचानन महाशय हो–हो कर पहले खूब हँसे और फिर बोले–बड़ा चालाक और चतुर है। पेट की बात कैसे निकाली जाय इस कला से परिचित है तू। मैं कुछ बोला नहीं। मुस्कराते हुए उनके चरणों का स्पर्श कर बैठ गया चटाई पर।

तीन गिलास मदिरा उदरस्थ करने के बाद तर्क पंचानन महाशय बोले भर्राये स्वर में – जहाँ विषय छूटा है वही से आगे जानना चाहता है तू ? हाँ ! मैंने सिर हिलाकर कहा।

सात्विक देवात्माओं के विषय में तो तुमने सब कुछ समझ लिया है। उसके बाद है राजसी देवतात्माएं जैसा कि मैं बतला चुका हूँ – यक्ष, गन्धर्व किन्नर ये तीन वर्ग उपदेवतात्माओं के हैं। सोलह प्रकार की यक्ष, यक्षिणियाँ हैं वे स्वयं सुन्दर होते हैं और सौन्दर्य के प्रेमी भी होते हैं। मनुष्य के प्रति इनका विशेष आकर्षण होता है। सुन्दर और आकर्षक स्त्री के प्रति यक्ष लोगों की रूचि सर्वाधिक होती है। जहाँ सुन्दर आकर्षक और कमनीय व लावण्यमयी युवती को देखते हैं तुरन्त मोहित हो जाते हैं वे उस पर। और विभिन्न प्रकार से उसकी सहायता करते हैं अदृश्य रूप से। यक्ष लोग रति प्रिय और अत्यधिक कामुक होते हैं। कभी–कभी अपनी काम पिपासा को शान्त भी करते

हैं अनुरूप स्त्रियों के द्वारा वे, लेकिन इस रहस्य का ज्ञान उस स्त्री को नहीं होता, जिसके माध्यम से अपनी कामवासना को तृप्त करते हैं। ऐसी स्त्री सदैव प्रसन्न और प्रफुल्ल रहती है लेकिन उसे इस बात का पता नहीं रहता कि वह अकारण इतना प्रसन्नचित्त और प्रफुल्ल क्यों हैं?

वास्तव में यक्ष लोगों में श्रृंगार रस प्रधान है। रतिक्रिया और काम क्रीड़ा के समस्त गूढ़ रहस्यों से वे परिचित होते हैं। जो कलाकार काम और रति की विभिन्न मुद्राओं का आश्रय लेकर श्रृंगारिक मूर्ति अथवा चित्र का निर्माण करते हैं और इसी प्रकार जो कथाकार कथा की रचना करते हैं जो काव्यकार काव्य की सृष्टि करते हैं और जो कवि कविता का करते हैं सृजन, उनको बराबर अगोचर रूप से सहयोग मिलता है और मिलती है प्रेरणा यक्षों की, इसमें सन्देह नहीं। उसी सहयोग और प्रेरणा के परिणामस्वरूप कलाकारों, काव्यकारों, साहित्यकारों और कवियों के मस्तिष्क में नई–नई कल्पनाएँ जन्म लेती है और उन्ही कल्पनाओं के सागर में अन्तर्मुखी होकर डूबे रहते हैं वे सदैव।

जो लोग आत्माकर्षणी विद्या की सिद्धि को उपलब्ध है उनको तो इस दिशा में भरपूर सहयोग प्राप्त होता है यक्षों का। कभी–कभी सुन्दर मानव रूप में भी प्रकट होकर उनकी सहायता करते हैं।

ऐसी ही यक्षिणियाँ भी होती हैं। वे भी जहाँ सुन्दर युवा और आकर्षक व्यक्ति को देखती हैं कि तुरन्त मोहित हो जाती है। वे भी रति प्रिया और कामुक होती हैं लेकिन होती है अति सुन्दर। उनकी आँखें मोरनी जैसी होती है और होता है उनमें एक विशेष प्रकार का नैसर्गिक आकर्षण। जो गुण और जो विशेषता यक्षों में होती है वह गुण और वह विशेषता यक्षिणियों में भी होती है। वे मनुष्य से तादात्म्य स्थापित करने के लिए सदैव लालायित रहती है। वे भी अपने अनुकूल

व्यक्ति की अगोचर रूप से सहायता करती है। जिसने आत्माकर्षणी विद्या के द्वारा किसी यक्षिणी को सिद्ध कर लिया है, उसकी प्रत्येक कामना को पूर्ण करती है वह। लेकिन साधक को उसका मूल्य चुकाना पड़ता है उसकी काम वासना को तृप्त कर। कभी–कभी यक्षिणियाँ भी सशरीरी प्रकट हो जाती है। और इच्छानुसार रूप भी धारण कर लेती है। वास्तव में यक्षिणियाँ अति रहस्यमयी होती है। जो उनके चंगुल अथवा मायाजाल में फंस जाता है उसका फिर उसमें मुक्त होना सम्भव नहीं।

यक्षों का पौराणिक इतिहास

प्रारम्भ में तुमको यह जान लेना चाहिए कि विश्व ब्रह्माण्ड में जितने प्रकार के प्राणी हैं – वे सभी प्राण तथा उसके विभिन्न आयामों द्वारा संचालित होते हैं। जहाँ तक आत्माओं का संबंध है वे स्वयं की नैसर्गिक ऊर्जा द्वारा होती है संचालित और उसी के आधार पर इच्छानुसार रूप धारण कर लेती है अवसर उपलब्ध होने पर। ऐसी ही आत्माओं को विशुद्धात्मा कहते हैं।

यक्षों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्राण शक्ति और आत्म शक्ति दोनों का सामंजस्य है। वे जितना देवताओं के समीप है कहीं उससे अधिक मनुष्य के हैं समीप। इनका अपना पौराणिक इतिहास अत्यन्त विचित्र है?

क्या इस पर आप प्रकाश डालेंगे मैंने कहा? शायद मेरा प्रश्न तर्क पंचानन महाशय को बाल्यसुलभ लगा, इसलिए थोड़ा हंसे और फिर बोले, तुमको ज्ञात होना चाहिए कि प्रजापति ब्रह्मा ने सबसे पहले पंचतत्वों में जल की उत्पत्ति की और उसके पश्चात् अन्य समस्त प्राणियों का निर्माण किया। जल का अर्थ है जीवन देने वाला। इसीलिए जल की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई सृष्टि के प्राक्काल में। जिन प्राणियों का निर्माण हुआ था वे सब मिलकर प्रजापति ब्रह्मा के पास पहुंचे और

कहने लगे हम सब लोग भूख प्यास से व्याकुल हैं। प्रजापति ब्रह्मा ने कहा – जल की रक्षा करो। एक मात्र जल ही जीवन है। कालान्तर में जल तत्व द्वारा ही अन्य प्राणदायक पदार्थो का निर्माण होगा इसलिए जल को महत्व दो और उसकी रक्षा करो।

यह सुनकर उन समस्त प्राणियों में से अधिकांश बोल उठे–राक्षामः और कुछ बोल उठे–यक्षामः।

हम रक्षा करेंगे बोलने वाले राक्षस अथवा दानव कहलाये। आगे चलकर और इसी प्रकार जिन प्राणियों ने कहा – हम आपका यजन करेंगे उनको संज्ञा प्राप्त हुई यक्ष अथवा मानव की इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल में केवल दो जातियाँ ही थी एक थी राक्षस जाति जिसे हम दूसरे शब्दों दानव कहते है। और दूसरी थी यक्ष जाति जिसे हम कहते हैं दूसरे शब्दों में मानव। दानव और मानव ये दो सृष्टि के प्राक्काल के स्थूल शरीरधारी प्राणी है। मानव में प्रकृति प्रदत्त मन की प्रधानता है और जबकि दानव में है बुद्धि चातुर्य की। इस विशेषता के कारण दोनों में पार्थक्य है।

अग्नि पुराण के अनुसार यक्षों की उत्पत्ति वरुण यानी प्रचेता से हुई है। इसीलिए जल तत्व का प्रतीक वरुण है। जल तत्व व्यापक काम की स्थिति है। और यही कारण है कि यक्ष यक्षणियाँ अत्यधिक कामातुर कामेच्छुक और कामाचारी होती है। मनुष्य से सौ गुना अधिक यक्ष–यक्षणियों में काम पिपासा होती है।

पौराणिक दृष्टि से रामायण कल के ऐतिहासिक अवलोकन से जो तथ्य सामने आये हैं उनके अनुसार विन्ध्य पर्वत का उत्तरी भाग आर्यावर्त क्षेत्र था। उस आर्यावर्त क्षेत्र में आर्य यानी मानव बसे हुए थे। उनमें से भी बहुत से लोग टूट–टूट कर कालान्तर में दक्षिण में बसने लगे। ऐसे लोग जो आध्यात्मिक वृत्ति को छोड़कर भोग वासना आदि की ओर आकृष्ट हुए और आन्ध्रा में जा बसे, उनको आर्यो ने

वात्य की संज्ञा दी। उस समय आन्ध्र क्षेत्र की सीमा में समग्र दक्षिण भारत, लंका सहित दक्षिण पूर्व एशिया, आष्ट्रेलिया, मेडागास्कर सहित दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका सम्मिलित थे। कहने की आवश्यकता नहीं इन सभी क्षेत्रों में भोग व वासना प्रधान जाति राक्षसों और दानवों का निवास था। लंका उन समस्त क्षेत्रों की राजधानी थी। भारतीय क्षेत्र में दण्डकारण्य और नासिक भी उनके उपनिवेश थे।

आन्ध्र क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सभी देश के निवासी आज भी पूर्ण भौतिकवादी, कामुक और भोग विलास को महत्व देने वाले राक्षस जाति के समझे जा सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

कालान्तर में इन्हीं राक्षसों के साथ यक्ष संस्कृति भी सम्मिलित हो गयी। इस प्रकार समग्र आन्ध्रालय उत्तर का गन्धमादन सहित कैलास, पामीर सहित समग्र पश्चिमोत्तर एशिया आदि यक्ष–राक्षस परस्पर मिश्रित रक्त में बह चले। इन स्थानों के बीच धार्मिक और आध्यात्मिक उपासना–साधना करने वाली यक्ष संस्कृति से सम्पृक्त कुछ लोग अपने को निरापद देवयोनि में गिनने लगे। इस प्रकार यक्ष संस्कृति के अन्तर्गत बाद में यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और किन्नरों की भी जातियाँ मिल गयी आकर। वायु पुराण, मत्स्य पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में गन्धर्वो एवं किन्नरों से विलग शब्द का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है। राक्षसों के साथ यक्षों का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध है। यहाँ वैश्रवण, कुबेर राजा, और राक्षस उनकी प्रजा के रूप में अभिचित्रित है।

ऊपर जिन वात्यों का उल्लेख किया गया है उनमें एक पुलस्त्य भी थे। जो दक्षिण में जा बसे थे। उनके पुत्र विश्रवा थे। विश्रवा की पहली पत्नी इलविडा से वैश्रवण कुबेर की उत्पत्ति हुई और दूसरी पत्नी कैकसी से उत्पत्ति हुई रावण की। इस प्रकार कुबेर और रावण समरक्त भाई रहे हैं। कुबेर ने धन के लिए तप किया और जिसके

फलस्वरूप कुबेर को कई दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त हैं। रावण जाकर दक्षिण में बस गया और कुबेर बस गये जाकर उत्तर में। कुबेर का एक नाम सोम भी है इसलिए उत्तर दिशा को सौम्या भी कहते हैं। रावण की नगरी लंका थी और जब कि कुबेर की नगरी थी अलका। कुबेर थे तपस्वी, साधक, धर्मिष्ट और अध्यात्मप्राण, उसे कई दुर्लभ और चमत्कारी सिद्धियाँ भी उपलब्ध थी। इसलिए यक्षों ने उनका राज्याभिषेक कर अपना राजा बना दिया और कुबेर यक्षपति बन गये।

कुबेर की दूसरी माता का नाम था मन्दाकिनी जबकि महाभारत में इनकी माता है गाय। तर्क पंचानन महाशय ने कहा – सबसे अधिक विचित्र बात तो यह है कि रावण के साथ यक्षों के संयोग का उल्लेख प्रायः कहीं नही उपलब्ध है। परन्तु कुबेर के साथ राक्षसों का विपुल संयोग उल्लिखित है। सम्भवतः यह इसलिए हुआ कि यक्ष संस्कृति के अधिष्ठाता कुबेर, भोग, विलास और देवार्चन, पूजन, धर्म, कर्म, आदि से संबंधित आध्यात्मिक दोनों संस्कृतियों को स्वीकार करते थे। भोग में योग की भावना रखते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों संस्कृतियाँ उनके लिए अपने–अपने स्थान पर महत्वपूर्ण थी इसलिए कि पहली संस्कृति लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी और जबकि दूसरी संस्कृति पूर्ति करती थी आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक आवश्यकताओं की। यक्षों के अधिष्ठात्र देवता रुद्र है। रुद्र उनके उपास्य देव हैं। राक्षसों की तरह रात्रि में वे भी आहार के लिए विचरण करते है।

गुह्यक

यक्ष जाति के अन्तर्गत उनकी एक उप जाति भी है जिसे गुह्यक कहते हैं। गुह्यकों में प्राणशक्ति की अधिकता होती है। अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर वे भयंकर मायावी होते हैं। मायावी विद्या का आविर्भाव उन्हीं के द्वारा हुआ है। गुह्यक शिव के गण के रूप

में प्रसिद्ध है। शिव को प्रसन्न कर उन्होंने सिद्धि के रूप में उनसे मायावी विद्या प्राप्त की थी। जिसका आश्रय लेकर गुह्यक नाना प्रकार की माया की रचना करते हैं। रूप बदलना, लिंग बदलना एक से अनेक हो जाना, एक साथ कई स्थानों पर दिखलायी पड़ना, कृत्रिम वर्षा करना, कृत्रिम फल–फूल के बागों का निर्माण करना आदि माया विद्या है। रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि राक्षसों ने गुह्यकों से ही माया विद्या प्राप्त की थी इसमें सन्देह नहीं।

कुबेर के पास गुह्यकों का अपना एक विशिष्ठ वर्ग था जो कुबेर के धन और राज्य की रक्षा करता था। आज भी मनुष्य के धन और सम्पत्ति के रक्षक माने जाते हैं। हिमालय के उत्तरी भाग में गुह्यकों का निवास था और आज भी अगोचर रूप से उनका निवास है हिमालय में। गुह्यक माया विद्या में तो प्रसिद्ध ही थे इसके अतिरिक्त वे शास्त्रोपजीवी रूप में भी प्रसिद्ध थे। आज भी शास्त्रों का अध्ययन करने वाले पण्डितों और शास्त्र जीवी विद्वानों की सहायता अगोचर रूप में करते हैं गुह्यक।

तर्क पंचानन महाशय ने इस प्रसंग में आगे बतलाया कि काशी में एक महापुरुष रहते थे, जिनका नाम था जनार्दन मिश्र। वे षट् शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। कई पुराणों की भाषा टीका भी की थी उन्होंने। सुनने में आया था कि जनार्दन मिश्र को गुह्यक सिद्धि थी। उसी सिद्धि के बल पर वे शास्त्र मर्मज्ञ बने थे और पुराणों की भाषा टीका भी की थी। बड़ा ही रहस्यमय और अद्भुत व्यक्तित्व था मिश्र जी का। वे प्रायः घर में ही रहते थे। कभी कदा गंगा स्नान के लिए बाहर निकलते थे महाशय। हर समय चिन्तन–मनन में ही डूबे रहते थे वे।

क्या आपको जनार्दन मिश्र का दर्शन लाभ हुआ था? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तर्क पंचानन महाशय बोले – हाँ, हुआ था। इतना कह कर कुछ देर तक मौन रहे वह। उनके मौन में क्या रहस्य था

यह समझ में नही आया मुझे उस समय। खैर! मौन भंग हुआ। कहने लगे छोड़ो इस चर्चा को फिर कभी अवसर मिला तो विस्तार से बतलाऊँगा जनार्दन मिश्र के संबंध में। हाँ तो मैं यह कह रहा था कि यक्षों के अधिष्ठाता कुबेर का संबंध धन से है। जिस प्रकार गुह्यक उनके धन सम्पत्ति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार कुबेर भी देवताओं के धन, सम्पत्ति की रक्षा करते हैं वास्तव में देवताओं के राजा इन्द्र के कोषाध्यक्ष हैं कुबेर।

यक्ष संस्कृति का विकास

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यक्ष संस्कृति का विकास पौराणिक काल में हुआ। प्रायः सभी पुराणों में इनकी विभिन्न स्थितियों, वृत्तियों का वर्णन मिलता है। कश्मीर की भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थिति को स्पष्ट करने वाला एकमात्र पुराण, नीलमत यक्षों के संबंध में पूर्ण प्रकाश डालता है।

यक्षों की दूसरी विशेषता उनका जीवन के प्रति व्यावहारिक ज्ञान और विद्वता है। उनकी ज्ञान विदग्धता बड़ी गहन थी। युधिष्ठिर जैसा सत्यवादी ज्ञानी पुरुष से प्रश्न करने वाला कोई यक्ष ही तो था। जो मनुष्य से तिगुना लम्बा था, उसका शरीर विशालकाय था और उसके नेत्र बड़े—बड़े थे। उसका मस्तक काफी चौड़ा था, बाल घने काले और काफी लम्बे थे। वह सूर्य के समान तेजस्वी था और उसकी वाणी भी मेघगर्जन के समान थी।

लिंग परिवर्तन कला और वास्तु कला के मर्मज्ञ - यक्ष लोग लिंग परिवर्तन की कला जानते हैं। वे किसी स्त्री को पूर्ण रूप से पुरुष और किसी पुरुष को भी पूर्ण रूप से स्त्री बना सकने में समर्थ होते है। और समर्थ होते हैं लैंगिक परिवर्तन के साथ ही साथ रूप, रंग, भाव, विचार, स्वर और वाणी के परिवर्तन में भी। जिस मायावी विद्या की चर्चा की गयी है उसका आधार योग और तंत्र है। एक

प्रकार से वह योग तांत्रिक विद्या की एक अद्‌भुत और साथ ही एक रहस्यमयी कला है जिसे यक्षों ने प्राप्त किया था गुह्यकों से। द्रुपद की पुत्री शिखिण्डिनी ने अपने पिता की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए पुरुष बनना चाहा था। इसके लिए वह घने जंगलों में एकान्तवास कर रहे एक यक्ष से मिली जिसका नाम था स्थूल कर्ण। स्थूल कर्ण ने इस शर्त पर उसे पुरुष बनाया कि समयानुसार उसे वह उसका पुरुषत्व वापस कर देगी। शिखिण्डिनी इस बात से सहमत हो गयी और उन दोनों ने परस्पर लिंग परिवर्तन कर डाला। स्थूल कर्ण ने शिखिण्डिनी के स्त्रीत्व को धारण कर लिया। और शिखिण्डिनी ने प्रकाशवान पुरुषत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रसंग के अन्तर्गत तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि काशी में एक महात्मा रहते थे। नाम था अनन्ता बाबा। लगभग पचास–साठ वर्ष पहले काशी के प्रसिद्ध दुर्गा मन्दिर के सामने काफी दूर–दूर तक खेत ही खेत थे। वास्तव में वह ग्रामीण इलाका था। उसी इलाके में एक झोपड़ी बनाकर रहते थे अनन्ताबाबा। काशी के प्रतिष्ठित घरानों के लोग उनके शिष्य थे। अनन्ता बाबा की झोपड़ी तो छोटी–सी थी लेकिन उस झोपड़ी में किसी वस्तु या किसी पदार्थ का कभी अभाव नहीं रहता था। झोपड़ी के सामने कुछ दूर पर एक कुआं था जिसके पत्थर के बने चबुतरे पर बैठकर सभी आने जाने वाले लोगों से मिलते जुलते और बाते करते अनन्ता बाबा। वास्तव में वे एक रहस्यमय महात्मा थे और योगी भी। मैं भी कभी कदा आया जाया करता था उनके पास। बाबा अत्यन्त सरल चित्त और मृदु भाषी थे। लोगों की उनके प्रति असीम श्रद्धा थी। सभी लोग उनका सम्मान करते थे। कुछ दिनों के बाद मैं अत्यन्त निकट आ गया बाबा के। जब सभी लोग चले जाते थे तो बाबा स्वयं अपने हाथो से दाल बाटी और चोखा बनाते थे गोहरे की आग पर। और तब तक रात के दस के ऊपर हो जाते थे। उस समय केवल मैं ही रहता था बाबा के

पास। वे स्वयं खाते और मुझे भी अपने पास बिठाकर प्रेम से खिलाते। बड़ा ही स्वाद होता था उनके हाथ से बने भोजन में।

एक बार जब बाबा के साथ मैं भोजन कर रहा था उसी समय अन्धेरे में एक लम्बी चौड़ी काठी का व्यक्ति प्रकट हुआ वहाँ। वह व्यक्ति कम से कम सात फिट लम्बा अवश्य रहा होगा। उसका सिर काफी बड़ा था, मस्तक भी चौड़ा था, उसके सिर के लम्बे बाल जैसे जमीन को छू रहे थे। उसकी आँखें गोलाकार थीं और थी काफी बड़ी और धधकती हुई आग जैसी लाल थी। नाक तोते की तरह लम्बी और नुकीली थी। उसके शरीर का रंग गोरा या काला न होकर हल्का आसमानी था। उसने गले में सोने के कई हार और मोतियों की मालायें पहन रखी थी। उसके कान काफी लम्बे चौड़े थे जिसमें सोने के कुण्डल झूल रहे थे। हार और कुण्डलों में जड़ित विभिन्न रत्नों की चमक अंधेरे में भी स्पष्ट दिखलायी दे रही थी।

उस रहस्यमय अमानवीय व्यक्ति को आश्चर्य और भय मिश्रित भाव से देखने लगा मैं। उसका व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक प्रतीत हुआ मुझे। उसके शरीर से चन्दन जैसी सुगन्ध निकल रही थी उस समय और उस सुगन्ध से अविभूत होता जा रहा था मैं।

राजोचित ढंग से धीरे–धीरे चल कर वह रहस्यमय अमानवीय व्यक्ति खड़ा हो गया अनन्ता बाबा के सामने। बाबा उसे देखकर एक बार मुस्कराये फिर मधुर स्वर में बोले आ गये वीरभद्र। मैं तो भूल ही गया था कि आज अमावस्या है।

यह सुनकर उस व्यक्ति ने अपने लम्बे हाथों को आगे बढ़ाकर बाबा के सामने कोई चीज रखा। वह कौन सी चीज थी। यह मैं न देख सका। और उसके बाद रहस्यमय ढंग से वह रहस्यमय अमानवीय व्यक्ति एकाएक अदृश्य हो गया अमावस्या के काले चिपचपाते अन्धकार में। कौन था वह रहस्यमय व्यक्ति? क्या हर अमावस्या की रात में

आता था वह? और कौन सी चीज दे गया वह अनन्ता बाबा को? ये और भी कई प्रश्न मथते रहे मेरे मानस पटल में कई दिनों तक। अनन्ता बाबा मेरी मानसिक स्थिति को समझ गये थे सम्भवतः, अन्त में एक दिन मेरे सारे प्रश्नों का उत्तर मिल ही गया। स्वयं अनन्ता बाबा ने ही समाधान किया था।

वह रहस्यमय अमानवीय व्यक्ति एक शक्ति सम्पन्न यक्ष था। बाबा ने आत्माकर्षणी विद्या द्वारा उसे सिद्ध किया था कभी। वह यक्ष प्रत्येक अमावस्या को आता था और एक स्वर्ण मुद्रा दे जाता था बाबा को, और बाबा की सभी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति उसी स्वर्ण मुद्रा से होती थी।

अनन्ता बाबा और उनकी यक्ष सिद्धि की कथा सुनकर घोर आश्चर्य हुआ था मुझे उस समय। जब तर्क पंचानन महाशय से मेरी भेंट हुई थी उस समय १९६० ई. का वर्ष था। तब भी दुर्गाकुण्ड के सामने से एक कच्चा रास्ता भीतर की ओर गया था। उसी रास्ते पर एक पुरानी चुंगी थी और था एक जीर्ण–शीर्ण प्राइमरी स्कूल। और उस चुंगी और उस स्कूल के पीछे काफी दूर तक फैला हुआ था सिलसिलेवार खेतों का विस्तार जिनमे फसल पक कर लहरा रहे थे उस समय। यक्ष सिद्ध अनन्ता बाबा के स्थान को देखने की लालसा खींच ले गयी थी वहाँ मुझे। अनन्ता बाबा की झोपड़ी तो कहीं नहीं दिखायी दी लेकिन उनका कुआं अवश्य मिल गया। काफी पुराना था वह कुआं। पहले उस कुएं के पानी से खेतों की सिंचाई होती थी मगर अब पानी सूख गया था। उसकी दीवारें भी टूट–फूट गयी थीं। और उसके चबुतरे के पत्थर भी इधर–उधर खिसक गये थे। अपनी दुरावस्था में होते हुए भी वह प्राचीन कुआं एक महान सिद्ध साधक की स्मृतियों को अपने आप में समेटे हुए था अभी भी।

सांझ की स्याह कालिमा बिखर चुकी थी चारो तरफ हरे भरे

खेतों पर। वातावरण में घोर निस्तब्धता छायी हुई थी। मन को बड़ी शान्ति मिल रही थी वहाँ। कुंए के एक टूटे पत्थर पर बैठ गया मैं। कब सांझ की कालिमा रात्रि के अन्धकार में बदल गयी इसका पता ही न चला मुझे। सहसा ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति आकर मेरे बगल में बैठ गया है चुपचाप। सिर घुमाकर मैने देखा उस चिपचिपे अंधेरे में भी वह व्यक्ति बिल्कुल स्पष्ट दिखलायी दे रहा था मुझे। वह युवा और अत्यधिक सुन्दर था। उसके व्यक्तित्व में राजोचित शालीनता थी। उसके बाल काले और घुंघराले थे और कन्धों तक झूल रहे थे। उसकी आँखे काफी बड़ी थी और उनमें एक विशेष प्रकार की नैसर्गिक चमक थी। जो उस अंधेरे में भी साफ दिखलायी दे रही थी मुझे।

थोड़ा भयभीत हो गया था। उसकी उपस्थिति कुछ विचित्र–सी लग रही थी मुझे। किसी प्रकार सहमते हुए पूछा—कौन है आप?

मेरा प्रश्न सुनकर वह रहस्यमय व्यक्ति इस प्रकार चौका जैसे गहरी नींद से एकाएक जगा हो। फिर उसने सिर घुमाकर मेरी ओर देखा–उसकी आँखों की चमक अब और अधिक गहरी हो गयी थी। धीरे–धीरे बोलना शुरू किया उसने उसका स्वर बड़ा ही कोमल और स्निग्ध था। लगता था जैसे वह बहुत दूर से बोल रहा हो, आपने अनन्ता बाबा की कथा तो सुन ही ली है और यह भी जान गये है कि उनको यक्ष सिद्धि थी। और अब आप यह भी जान ले कि वह यक्ष मैं ही हूँ। यह सुनकर सनसना गया मेरा पूरा शरीर एक बारगी। लगा जैसे बिजली का करेन्ट दौड़ गया हो मेरे पूरे शरीर में। सांय सांय करता हुआ सुनसान स्थान और काली अंधेरी रात। ऐसी अवस्था में उस रहस्यमय व्यक्ति की उपस्थिति ने मेरे मन और प्राण को स्तम्भित कर दिया जैसे। किसी प्रकार अपने आपको संयमित किया मैने और हकलाते हुए पूछा—क्या आप वीरभद्र हैं?

हाँ, वीरभद्र ही हूँ मैं। निश्चय ही इस रूप में देखकर आपका

शंकित होना स्वाभाविक है। मेरे जिस रूप का वर्णन किया गया था वह वास्तविक रूप था मेरा। आप तो जानते ही है कि यक्ष लोग रूप रंग बदलने में सिद्ध हस्त होते हैं। थोड़ा रूक कर अपने आपको यक्ष कहने वाला वह रहस्यमय व्यक्ति आगे बोला न जाने क्यों आपके प्रति आकर्षित हूँ मैं। सम्भवतः आप तंत्र पर शोध और अन्वेषण कर रहे हैं इसीलिए ...., क्योंकि तंत्र का आन्तरिक संबंध यक्षलोक से है। आपको जब कभी अपने मार्ग में किसी प्रकार की कठिनाई उत्पन्न हो उस समय मेरा स्मरण अवश्य करियेगा आप। तत्काल उस कठिनाई का निराकरण हो जायेगा...। मुझे आप अपना सहयोगी समझे ...। अन्तिम शब्द के साथ वह रहस्यमय व्यक्ति रहस्यमय ढंग से गायब हो गया उस अन्धकार में। मुँह बाये अवाक् देखता रह गया मैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। न जाने कब तक पाषाणवत् बैठा रहा मैं कुंए के खण्डित पाषाण पर मौन साधे चुपचाप। और उस स्थिति में बस यही सोच रहा था कि क्या मैंने कोई सपना देखा है? नहीं, नहीं, सपना नहीं सच था सब कुछ जो सुना था और जो देखा था सब, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरे दिन सायंकाल तर्क पंचानन महाशय से मिला और उनको शुरू से लेकर अन्त तक सारी कथा सुना डाली मैंने एक सांस में। ऊपर शून्य में देखते हुए सुनते रहे तर्क पंचानन महाशय मेरी कथा। फिर उठे और उठकर मदिरा की बोतल खोली, चमकते हुए कांच के गिलास में मदिरा ढाली उन्होंने और फिर गट–गट कर पीने लगे वह। दूसरे क्षण चेहरा लाल हो उठा उनका और आँखे भी लाल हो उठी गूलर की तरह। कुछ देर तक खड़े–खड़े न जाने क्या सोचते रहे, और फिर मेरी ओर मुड़कर भर्राये स्वर में बोले महाशय कल अमावस्या थी न?

मैने सिर हिलाकर कहा – हाँ। कल अमावस्या की रात थी।

ठीक। दूसरी बार गिलास में मदिरा ढालते हुए बोले तर्क पंचानन महाशय तुमको यह बतलाना भूल ही गया कि कभी—कभी वह सिद्ध यक्ष वहाँ उस क्षेत्र में भेष बदलकर भ्रमण करने के लिए किसी न किसी अमावस्या की रात में आता हैं। अवश्य कल तुमको वह सिद्ध यक्ष मिला और बातें की इसे एक संयोग ही समझना होगा। हाँ ! सहयोग देने की बात मेरी समझ में नहीं आ रही है अवश्य कोई रहस्य है इसमें ...।

रहस्य की बात सुनकर एक प्रकार से चिन्तित हो उठा मैं, स्वाभाविक भी था चिन्तित होना। एक अपार्थिव सत्ता से सम्पर्क स्थापित होने का परिणाम शुभ भी हो सकता है और अशुभ भी।

किसी कारणवश कई दिनों तक न जा सका मैं तर्क पंचानन महाशय से मिलने। वे विद्वान थे, साधक थे और थे उच्चावस्था प्राप्त तंत्र सिद्ध महात्मा भी। इसमें सन्देह नहीं उनके द्वारा अब तक ज्ञान की दिशा में जो उपलब्धि हुई थी मुझे वह अपने आपमें एक विशेष आध्यात्मिक सम्पत्ति थी इसमें भी सन्देह नहीं। अभी उस महापुरुष से और बहुत कुछ जानना समझना शेष था मेरे लिए। उस दिन दीपावली थी शायद, मुझे अच्छी तरह याद है। दोपहर के समय एक बोतल अंग्रेजी मदिरा और कुछ अन्य खाद्य सामग्री लेकर गया मैं उनके निवास पर। हाँ साथ में उनके लिए एक बढ़िया कम्बल भी ले जाना नहीं भूला था मैंने। अपने मनोनुकूल पदार्थ देखकर प्रसन्न हो उठे महाशय, विशेषकर मदिरा की भरी बोतल को देखकर। बड़े ही शुभ अवसर पर आये तुम – हो–हो कर हँसते हुए बोले तर्क पंचानन महाशय – आज यक्ष रात्रि है न। जानते हो तुम दीपावली की अमावस्या की रात्रि को यक्ष रात्रि कहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परम चेतना रूप महाकाल है जिसको आप महानिशा में अन्धकार के रूप में पराचेतना महाकाली चारों ओर से आवृत्त कर लेती है। यक्ष गण महानिशा बेला में मनुष्य

के विविध रूप में धरती पर विचरण करते हैं। भिखारी के रूप में, चाण्डाल के रूप में, सन्यासी के रूप में, या फिर साधारण मानव रूप में। कभी–कभी धनी, सेठ, अथवा राजोचित भेषभूषा में भी विचरण किया करते हैं, लेकिन एक साधक ही उनको पहचान सकता है, साधारण वर्ग के लोग नहीं। दीपावली के सायंकाल का समय अपने आप में अति महत्व रखता है। उस समय जिस गृहस्थ के मकान के मुख्य दरवाजे पर उत्तर और दक्षिण दिशा में दीपक जलते हुए यक्ष देखते हैं तो उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती। वे उस गृहस्थ को धन धान्य से परिपूर्ण रहने तथा मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का आशीर्वाद देते हैं। यक्षों को विविध प्रकार की मिठाईयाँ पसन्द हैं। दीपावली पर्व पर कोई व्यक्ति किसी भी रूप में दरवाजे पर आ जाय और खाने के लिए मिठाई मांगे तो प्रसन्नचित्त होकर उसे मिठाई अवश्य देना चाहिए। सम्भव है वह आगन्तुक कोई यक्ष ही हो। इतना ही नहीं उस पर्व पर जिस मिठाई की दुकान पर विभिन्न प्रकार की स्वादिष्ठ मिठाईयाँ सजी हुई रहती हैं यदि वे शुद्ध और पवित्र हैं तो उन्हें देखकर यक्षगण प्रसन्न होते हैं। और धन वृद्धि का आशीर्वाद भी देते हैं। ऐसी दुकान पर कोई व्यक्ति याचक के रूप में मिठाई मांगे तो उसे अवश्य दे देना चाहिए प्रसन्न भाव से। सम्भव है वह कोई, उस याचक के रूप में कोई यक्ष ही हो।

चतुर्दशी अमावस्या और प्रतिपदा इन तीन तिथियों की रात्रि को यक्ष रात्रि बतलाया गया है। इन तीन रात्रियों में यक्ष गण पृथ्वी पर विशेषकर भारत भूमि में यक्षिणियों के साथ विहार तो करते ही हैं। यक्षपति कुबेर भी अपने गणकों के साथ हिमालय में रात्रि का आस्वादन करते है। वाराह पुराण में दीपावली को यक्ष रात्रि बतलाया गया है। **यक्ष प्रिया यक्षाणां वा रात्रि।** वात्सायन कामसूत्र में भी यक्ष रात्रि का उल्लेख है। जैसा कि बतलाया जा चुका है–यक्ष जाति मानव जाति

के अत्यन्त निकट है। यक्ष संस्कृति और मानव संस्कृति की एकरूपता पुराणों में अनेक स्थानों में देखने को मिलती है। कभी कदा अवसर प्राप्त होने पर यक्ष लोग मानव शरीर में भी जन्म लेते हैं और अपने रूप, सौन्दर्य, आकर्षक व्यक्तित्व और अपनी वाकपटुता व दूरदर्शिता के कारण उच्चकोटि के कलाकार नाटककार अभिनेता, शिल्प शास्त्रज्ञ आदि के रूप में संसार में प्रसिद्ध होते हैं। उनकी ख्याति का दीप शताब्दियों तक प्रज्ज्वलित रहता है।

यक्षों की तरह यक्षणियाँ भी मानवयोनि में जन्म लेती है। उनका मानवी व्यक्तित्व विलक्षण होता है। रूप, रंग, आचार–विचार और रहन–सहन भी होता है उनका विलक्षण। संगीत और गायन कला में अत्यन्त निपुण होती हैं वे। और उसी क्षेत्र में धन, यश, और कीर्ति उपलब्ध करती हैं और अन्त में संसार में अपना अमिट प्रभाव छोड़कर विदा हो जाती हैं केवल रह जाती है उनकी स्मृतियाँ।

वास्तुकला और सेतु निर्माण कला के भी मर्मज्ञ होते हैं यक्ष लोग। कालिदास वर्णित यक्षों की नगरी "अलकापुरी" का चित्रांकन शोभातीत है। आवश्यकता पड़ने पर मेधावी और योग्य संस्कारी व्यक्ति के मस्तिष्क के गुह्य भाग को प्रभावित कर उसके द्वारा यक्षगण वास्तु शास्त्र से संबंधित उच्च अट्टालिकाओं, राज प्रासादों, राज सभाओं, महलों का सुरुचिपूर्ण निर्माण करते हैं। इसी प्रकार करते हैं आश्चर्यचकित कर डालने वाले पुलों (सेतु) का भी निर्माण। जब ऐसा सम्भव नहीं होता तो यक्षगण स्वयं मानव योनि में जन्म लेकर उस कार्य को अपनी रुचि और अपनी कलाबुद्धि से करते हैं जिन्हें देखकर मनुष्य भाव–विभोर और आश्चर्यचकित हो उठता है।

यक्षों द्वारा आकाशमार्ग से देवताओं पर पुष्पवर्षा करने का उल्लेख पुराणों में उपलब्ध है। देवताओं द्वारा असुरों पर जब विजय प्राप्त होता था अथवा कोई शुभ कार्य होता था उस समय यक्ष गण आकाश मार्ग

से आकर देवताओं को माला पहनाते थे और प्रसन्न होकर उन पर पुष्प वर्षा करते थे। यक्षणियाँ सामूहिक रूप से करती थी नृत्य। इससे स्पष्ट है कि यक्ष–यक्षणियाँ आकाश गमन विद्या से भी परिचित थी। बौद्धकाल में भी यक्षों का प्रभाव देखने को मिलता है। कहीं–कहीं किसी बुद्ध प्रतिमा के शिरोभाग के दोनों ओर उड्डयनशील मुद्रा में हाथ में माला लिए यक्ष उत्कीर्ण है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यक्षों में सबसे अधिक पौरुष और वैभव होता है। एक प्रकार से समस्त कलाओं के ज्ञाता होते हैं वे। देव, दानव, मानव, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, राक्षस, भूत–प्रेत, विद्याधर आदि जितनी भी योनियाँ है उनमें सर्वश्रेष्ठ यक्ष योनि है। एक प्रकार से यह योनि मानव योनि से भी परिस्कृत है और इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है – हे अर्जुन! मैं मानवों में यक्षपति कुबेर हूँ। इस वचन से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य और यक्ष के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं दोनों की सभ्यता और संस्कृति प्रायः समान है। (विशेष अध्ययन के लिए पढ़े 'यक्षलोक ले. अरुण कुमार शर्मा)।

उपदेवता गन्धर्व

यक्ष के बाद गन्धर्व का नाम लिया जाता है। इनके शरीर का रंग हल्का सिन्दूरी होता है। गन्धर्व भी यक्षों की राजसी प्रवृत्ति के होते हैं। इनका भी क्रीड़ा क्षेत्र हिमालय है। इनका भी शरीर सुगठित और यक्षों की तरह लम्बा होता है। इनकी आँखें मोर जैसी होती हैं जो किसी को सम्मोहित कर सकने में समर्थ होती है। नाक तोते की तरह नुकीली और कान बड़े–बड़े होते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार के रत्न जड़ित स्वर्णाभूषण इनको प्रिय है। इनके बलिष्ट शरीर पर स्वर्णाभूषण बहुत सुन्दर लगता है। जिसके फलस्वरूप और निखर उठता है उनका आकर्षक व्यक्तित्व। इनके सिर के बाल घने और काले होते हैं और पीठ पर बिखरे रहते हैं। ये अपने सिर पर रत्न जड़ित नीले रेशमी

वस्त्र की गोल पगड़ी भी बांधते हैं। जिसमें आगे की ओर बड़ा सा मोर पंख लगा रहता है। ये भगवान शिव के भक्त होते हैं और मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण करते हैं। गन्धर्व कन्यायें भी अति सुन्दर होती हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और मोहक होता है। ये भी रत्नजड़ित स्वर्णाभूषण धारण करती हैं। नृत्य और गायन कला में निपुण होती हैं गन्धर्व कन्यायें। जहाँ भी नृत्य और गायन का आयोजन होता है वहाँ निश्चित रूप से उपस्थित होती हैं। ये आकाशगामिनी भी होती हैं। आकाश मार्ग से लम्बी–लम्बी यात्रायें करती हैं ये। कोई भी पार्थिव वस्तु इनकी गति में बाधक नहीं बनती। कभी–कभी इच्छा होने पर मानव रूप में भी प्रकट होकर भौतिक जगत में यत्र–तत्र विचरण करती है। शैव धर्मावलम्बी होने के कारण यक्ष यक्षिणियों की तरह गन्धर्व और गन्धर्व कन्यायें शिवरात्रि पर्व पर काशी विश्वनाथ (वाराणसी), त्र्यम्बकेश्वर महादेव (नासिक) महाकाल (उज्जैन) का दर्शन करने के लिए अवश्य आती है और वह भी प्रायः मानव रूप में।

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि बहुत पहले नगवा घाट के ऊपर एक महात्मा रहते थे। एक बहुत बड़ा पुराना पीपल का वृक्ष था। उसी के नीचे उनकी छोटी सी कुटिया थी। महात्मा दिगम्बर थे और उनका नाम था बाबा रामदास। बाबा रामदास के गुरु थे बाबा खराब दास, तत्कालीन काशी नरेश बड़ा सम्मान करते थे बाबा खराब दास का। उनका आशीर्वाद था गालियाँ देना। तरह–तरह की गालियाँ देने में सिद्ध हस्त थे महाशय। वे कभी काशी में रहते थे तो कभी चकिया। चकिया के घने जंगलों के बीच एकान्त में उनकी छोटी सी कुटिया थी। काशी में तो वे मुक्त विचरण करते थे। आत्माकर्षणी विद्या की सिद्धि उपलब्ध थी बाबा खराब दास को। गन्धर्वों को वशीभूत कर रखा था उन्होंने। कभी कदा किसी पूर्णिमा की रात्रि में, जब वे अपनी कुटिया में रहते थे, गन्धर्व कन्यायें उनके सामने नृत्य करती

थी जिनके पायलों में बंधे हुए घुंघुरूओं के मधुर स्वर ओस में भीगे और निस्तब्धता में डूबे हुए जंगली वातावरण में गूंज उठते थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि नृत्य की ध्वनि आसपास के गांव वाले अवश्य सुनते थे, लेकिन नृत्य कौन कर रहा है उस उजाले पाख में, उसे कोई न देख पाता था और न तो समझ ही पाता था। कभी किसी ने प्रयास भी किया तो असफल रहा वह।

अपने अन्तिम समय में बाबा खराबदास ने अपनी वह सिद्धि अपने पट्ट शिष्य बाबा रामदास को देते हुए कहा यह योग तंत्र की अति गुह्य विद्या है। इसका सदैव सदुपयोग करना, दुरुपयोग नहीं। बाबा रामदास ने ऐसा ही किया। वे पर्व विशेष कर गन्धर्वो और गन्धर्व कन्याओं को मानव रूप में प्रत्यक्ष देखते थे काशी की गलियों में और घाटों पर भ्रमण करते हुए, बाबा विश्वनाथ का दर्शन करते हुए और करते हुए गंगा स्नान।

बोतल में शेष बची मदिरा को उदरस्थ कर आगे बोले तर्क पंचानन महाशय – यक्षों की तरह गन्धर्व भी कला प्रेमी, नृत्य प्रेमी और गायन कला में दक्ष होते हैं। मृदंग, पखावज, तम्बूरा और सारंगी उनके प्रिय वाद्य यंत्र है। इन वाद्य यंत्रों से निकलने वाली विविध प्रकार की ध्वनि गन्धर्व लोक तक पहुँचती है। जिसे सुनकर गन्धर्वगण प्रसन्न होते हैं। जिस कलाकार के ऊपर इनकी कृपा हो जाती है तो समझिए पूरे संसार में उसकी ख्याति फैलते देर नहीं लगती। संगीत के क्षेत्र में अब तक जितनी भी प्रगति और उन्नति हुई है, उसकी पृष्ठभूमि में अगोचर रूप से गन्धर्वो और गन्धर्व कन्याओं की ही प्रेरणा और उनका ही सहयोग समझना चाहिए।

उपदेवता किन्नर

यक्ष और गन्धर्वो के बाद किन्नर है उनकी अपनी विशेषता है। और वह यह कि स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों है वे। स्त्रीतत्व की मात्रा

भी हैं और पुरुषतत्व की भी उनमें। किन्नरों और किन्नरियों में तत्व की मात्रा का अन्तर है। किन्नरों में पुरुष तत्व थोड़ा अधिक होता है। इसी प्रकार किन्नरियों में स्त्रीतत्व की मात्रा कुछ अधिक होती है। और यही कारण है प्रत्यक्ष रूप में किन्नर और किन्नरी में समानता दिखलायी देती है। भेष–भूषा, व्यवहार आदि दोनों का प्रायः एक सा होता है। सुन्दर सुगन्धित पुष्प, इत्र, स्वर्णाभूषण, मूल्यवान वस्त्र आदि इनकी प्रिय वस्तुएं हैं। गायन और नृत्य दोनों कलाओं में निपुण होते हैं किन्नर। उनका कद मझोला, शरीर सुगठित और तांबिये रंग का होता है। उन्हें एक सीमा तक सुन्दर और आकर्षक कहा जा सकता है। वे पीले और नीले रंग का अंग वस्त्र धारण करते हैं और रत्न जड़ित आभूषण भी। कभी–कभी स्त्री–पुरुष के रूप में इस संसार में भी विचरण करते हैं। कभी–कभी तो मानव गर्भ से भी जन्म ले लेते हैं। लेकिन मानव शरीर में भी वे अर्धनारीश्वर ही रहते है। उनमें स्त्रियोचित गुण विशेष होते हैं। फिर भी वे पुरुषों के संसर्ग में रहना अधिक पसन्द करते हैं। आत्माकर्षणी विद्या से किन्नर और किन्नरियाँ भी प्रभावित होकर अगोचर–गोचर रूप से साधक की सहायता करती है।

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि कलकत्ता में एक प्रसिद्ध नृत्यकला केन्द्र था। उच्चकुल और भले घर की लड़कियाँ नृत्य सीखने के लिए आती थी। उस नृत्यकला के संचालक और व्यवस्थापक थे कृष्ण गोपाल वन्दोपाध्याय। वन्दोपाध्याय महाशय स्वयं नृत्यकला में पारंगत और प्रवीण थे। वे स्वयं लड़कियों को नृत्य कला की शिक्षा देते थे। वैसे उनके सहयोग के लिए दो–तीन नर्तक और भी थे। नृत्यकला केन्द्र की ख्याति इतनी थी कि एक बार किसी समारोह में महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर भी वहाँ उपस्थित हुए थे।

कृष्ण गोपाल वन्दोपाध्याय के समीप रहने वाले लोगों का कहना

था कि तारापीठ के किसी तांत्रिक से उन्होंने कोई ऐसी सिद्धि प्राप्त की थी, जिसके द्वारा अपने शरीर में स्वयं किसी किन्नर अथवा किन्नरी का आवाहन करते थे महाशय। शरीर को माध्यम बनाकर किन्नर स्वयं नृत्य करता और कभी करती थी कोई किन्नरी। सभी इस रहस्य से अपरिचित थे। कोई इस रहस्य को समझ नहीं पाया कि प्रसिद्ध नृत्य कला केन्द्र के संस्थापक व्यवस्थापक और संचालन कृष्ण गोपाल वन्दोपाध्याय कोई किन्नर सिद्ध हैं और वही सिद्ध किन्नर उनके शरीर में प्रविष्ट होकर युवक–युवतियों को नृत्य की शिक्षा भी देता है।

बड़ी रहस्यमय और अद्‌भुत कथा है यह – मैंने कहा। हाँ! चेहरे पर हाथ फेरते हुए तर्क पंचानन महाशय बोले – सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि साठ वर्ष की अवस्था में एक गम्भीर बीमारी के परिणाम स्वरूप वन्दोपाध्याय महाशय की मृत्यु हो गयी। डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया था। जब उनके शव को अग्नि संस्कार के लिए नीमतल्ला श्मशान में ले जाया जाने लगा तो अचानक जीवित हो उठे वह, घोर आश्चर्य हुआ लोगों को। स्वाभाविक भी था। छः घण्टे का मृत व्यक्ति यदि जीवित हो उठता है और सामान्य व्यवहार करता है तो सहज ही आश्चर्य और कौतूहल की सृष्टि होगी लोगों के मन में। लेकिन लोगों का कहना था कि उस घटना के बाद से वन्दोपाध्याय महाशय के स्वभाव और रहन–सहन में परिवर्तन आ गया था। वे प्रायः मौन रहते थे। एकान्त में अधिक रहने का प्रयास करते थे। भोजन और निद्रा तो उनसे दूर ही हो गयी थी जैसे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि वे जहाँ भी रहते थे वहाँ के वातावरण में चारों ओर इत्रों और चम्पा–चमेली, जूही आदि फूलों की ताजी सुगन्ध बिखरी हुई होती थी। अत्यधिक रहस्यमय हो उठा था कृष्ण गोपाल वन्दोपाध्याय का व्यक्तित्व। लगभग दस वर्ष और जीवित रहे महाशय। इस अवधि में अपने छात्र–छात्राओं के माध्यम से उन्होंने जो योगदान

दिया नृत्य और गायन के क्षेत्र में वह अपने आपमें अद्‌भुत था इसमें सन्देह नहीं। इसके लिए बंग संस्कृति उपकृत है।

थोड़ा रूक कर तर्क पंचानन महाशय आगे बोले—यह सुनकर घोर आश्चर्य होगा और थोड़ा अविश्वास भी तुमको, कि वन्दोपाध्याय महाशय की पहली बार जो मृत्यु हुई थी वह वास्तविक मृत्यु थी। उसी समय मर चुके थे वे।

ऐं! क्या कहा आपने ... तब ... फिर ... वह ... लड़खड़ाते स्वर में बोला मैं?

पूरे दस वर्ष तक वन्दोपाध्याय महाशय के शरीर में उसी किन्नर की आत्मा रही जिसकी सिद्धि प्राप्त की थी महाशय ने और जब शरीर छोड़कर वह बाहर निकला उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने देखा कि एक नीले रंग का प्रकाश पुंज मृत शरीर के बाहर निकला और उसके चारों ओर एक बार घूम कर खिड़की के बाहर निकल गया और दूसरे ही क्षण पूरा वातावरण असीम दुर्गन्ध से भर उठा एक बारगी। वन्दोपाध्याय महाशय का पूरा शरीर सड़ गल कर अलग—अलग हो गया था और उसी सड़े गले अंगों से निकल रहा था वह असहनीय दुर्गन्ध।

उपदेवता विद्याधर और अप्सराएँ

उपदेवताओं की अन्तिम श्रेणी में आते हैं विद्याधर और अप्सराएँ। रजोगुणी और तमोगुणी मिश्रित होती है इनकी वृत्तियाँ। वायु और पृथ्वी तत्व दोनों होते हैं उनमें। इसलिए विद्याधर और अप्सरायें आकाश में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर स्वेच्छानुसार विचरण करती है।

विद्याधर अति सुन्दर और गौर वर्ण के होते हैं। उनका शरीर सुगठित और लम्बा होता है। वे शरीर पर अंग वस्त्र और रेशमी पगड़ी धारण करते हैं। इनकी आँखें काली और होठ रक्ताभ होते हैं। विद्याधर वेद, शास्त्र मर्मज्ञ और ज्ञानी होते हैं। यज्ञशाला, गोशाला, अश्वशाला

आदि के निर्माण में सिद्धहस्त होते हैं। यज्ञशाला का निर्माण करना अत्यन्त जटिल कार्य है। किञ्चित मात्र त्रुटि होने पर यज्ञ के हविष्य को देवगण स्वीकार नहीं करते। यज्ञ व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यज्ञ के आचार्य को देवगण शाप देते है अपने यज्ञ हविष्य के न प्राप्त होने पर। इसलिए प्राचीन काल में यज्ञशाला के निर्माण की दिशा में विद्याधरों का सहयोग लिया जाता था। धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ की यज्ञशाला के निर्माण में विद्याधरों का पूर्ण योगदान था। तभी सफल हो सका था यज्ञ। वेद, शास्त्र, पुराण उपनिषद आदि ग्रन्थों के रहस्यों और गुह्य भावों को जानने समझने के लिए उच्चकोटि के विद्वान और मनीषी आत्माकर्षणी विद्या का आश्रय लेकर सहयोग लेते थे विद्याधरों से। अब तक संस्कृत के जितने प्रसिद्ध विद्वान, कवि, काव्यकार और साहित्यकार हो चुके हैं वे सभी किसी न किसी रूप में विद्याधरों से संबंधित थे इसमें सन्देह नहीं।

विद्याधर सिद्ध गजानन शास्त्री

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि मेरे एक परिचित थे नाम था गजानन शास्त्री। त्र्यम्बकेश्वर (नासिक) में स्थायी रूप से रहते थे। गजानन शास्त्री महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण थे। वेद शास्त्र पुराण आदि के अतिरिक्त तंत्र शास्त्र भी उनके अध्ययन और चिन्तन–मनन का विषय था। तंत्र से संबंधित कई महत्वपूर्ण पुस्तक मराठी भाषा में उन्होंने लिखी थी। कई पुराणों का अनुवाद भी किया था उन्होंने मराठी भाषा में। बड़े ही मनस्वी और विद्वान पुरुष थे गजानन शास्त्री इसमें सन्देह नहीं। प्रायः चिन्तन–मनन के सागर में ही डूबे रहते थे वे। छोटा–सा मकान था उनका, जिसमें केवल तीन कमरे थे और वे भी छोटे–छोटे एक कमरे में रहते थे महाशय। परिवार महाराष्ट्र में कहीं रहता था। तंत्र के साथ–साथ ज्योतिष का भी भरपूर ज्ञान था उनको। इसलिए प्रायः सभी वर्ग के लोगों का आना जाना लगा रहता था उनके यहाँ।

वे मकान के बाहर पत्थर के बने एक लम्बे–चौड़े चबुतरे पर बैठते और सभी से मिलते और उनकी समस्यायें हल करते। मकान के भीतर विशेषकर अपने कमरे में किसी को भी जाने नहीं देते थे वे।

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि एक विश्वसनीय व्यक्ति से ज्ञात हुआ कि गजानन शास्त्री का गहरा संबंध किसी श्रीधर नाम के विद्याधर से था। वे जो कुछ कर पायें, उसमें श्रीधर का पूर्ण सहयोग उपलब्ध रहा। इसमें सन्देह नहीं।

किसी समय गजानन शास्त्री ने काशी में विद्याध्यन भी किया था। सम्भवतः उसी समय मेरा परिचय उनसे हुआ था। एक बार उनके आग्रह पर नासिक मैं भी गया था। उस समय उनका तंत्र मंत्र और ज्योतिष का कार्य व्यापार खूब चल रहा था। अपने मकान में ही ठहराया मुझे उन्होंने। उनका कमरा और मेरा कमरा आमने–सामने था। बीच में आंगन था। एक रात विचित्र और अविश्वसनीय दृश्य देखने को मिला मुझे। रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। अचानक मेरी नींद उचट गयी। गजानन शास्त्री के कमरे का थोड़ा खुला हुआ था दरवाजा। भीतर हल्की रोशनी बिखरी हुई थी। तीन–चार दिनो से ठहरा हुआ था मैं। इसके पहले दरवाजा कभी खुला हुआ नहीं देखा था और न तो कमरे में प्रकाश ही। जिज्ञासा हुई और कौतूहल भी। रहा नहीं गया। धीरे से उठकर आंगन में आया और फिर दरवाजे के पास। भीतर झांक कर देखा, भय मिश्रित आश्चर्य से भर उठा एक बारगी। भीतर जो दृश्य था वह निस्सन्देह कौतूहल पूर्ण आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय था।

अपने तख्त पर बैठे हुए थे पद्मासन की मुद्रा में गजानन शास्त्री। उनके हाथ में कलम और कागज था। उसी तख्त पर दूसरी ओर पद्मासन की मुद्रा में एक विलक्षण रूप रंग और आकार–प्रकार का बैठा था एक व्यक्ति। अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक था व्यक्तित्व

उस व्यक्ति का। सिर पर पीले रंग की रेशमी पगड़ी, शरीर पर पीले रंग का ही रेशमी अंग वस्त्र, गले में मूल्यवान रत्नों से जड़ित स्वर्ण मालाएं, कानों में रत्नों के स्वर्ण कुण्डल, मस्तक पर त्रिपुण्ड की रेखायें, घनी भौहें, बड़ी–बड़ी कजरारी आँखें, नुकीली नाक और रक्ताभ होंठ। उस रहस्यमय व्यक्ति के चेहरे पर गम्भीरता थी, तेज था और था दिव्य भाव। वह व्यक्ति अपने स्थान पर बिल्कुल स्थिर बैठा हुआ था लगता था जैसे कोई पाषाण मूर्ति हो किसी देवता की। और वह देवता सदृश्य रहस्यमय व्यक्ति कोमल स्वर में कुछ बोल रहा था। जिसे लिखते जा रहे थे सामने बैठे गजानन शास्त्री। अधिक समय तक वहाँ खड़ा नहीं रहा मैं अपने कमरे में आकर लेट गया बिस्तर पर। लेकिन मेरी दृष्टि गजानन शास्त्री के कमरे के दरवाजे पर ही टिकी रही। उस व्यक्ति को बाहर निकलते देखना चाहता था और निकलकर किधर जाता है वह इसे भी जानना चाहता था मैं। लेकिन निराशा ही हुई। सबेरा होने वाला था, वह रहस्यमय व्यक्ति बाहर नहीं निकला और हाँ! दरवाजा अवश्य बन्द हो गया भीतर से..., तो क्या वह व्यक्ति अभी भी भीतर ही था और यदि था तो कभी न कभी उसे बाहर निकलना ही होगा। लेकिन वह नही निकला, निकले गजानन शास्त्री। घोर आश्चर्य हुआ मुझे, आखिर वह व्यक्ति गया कहाँ? नित्यक्रिया से निवृत्त होकर मेरे कमरे में आकर बैठ गये गजानन शास्त्री। उनका चेहरा थोड़ा गम्भीर था उस समय। असहज लगे वे मुझे। अपने स्वर को स्वाभाविक बनाते हुए बोले – आप तंत्र साधक हैं। मेरे रहस्य से परिचित होने के लिए व्याकुल भी थे आप। वह व्यक्ति कौन था? यह जानने समझने के लिए निश्चय ही आप व्याकुल होंगे, जिज्ञासा और कौतूहल भी कम न होगा आपके मन में उसके प्रति।

सिर हिलाकर मैंने कहा – आप ठीक समझ रहे हैं। जो कोई भी हो, लेकिन था अद्‌भुत, विचित्र और रहस्यमय व्यक्ति वह, इसमें

सन्देह नहीं।

आपने ठीक समझा – गजानन शास्त्री बोले वह रहस्यमय विचित्र और असाधारण व्यक्ति और कोई नहीं श्रीधर था।

श्रीधर था! चिहुंक कर बोल पड़ा मैं एक बारगी।

हाँ! भाई हाँ! श्रीधर था वह।

यह सुनकर पूरा शरीर सनसना उठा मेरा। कुछ देर तक मुंह बाये देखता रहा गजानन शास्त्री की ओर मैं।

तर्क पंचानन आगे बोले – मेरा जो अनुमान था और मैंने जो कुछ सुना था वह सत्य निकला। जब काशी में अध्ययन कर रहे थे गजानन शास्त्री उसी समय उनको एक सिद्ध तांत्रिक मिला था। वह वृद्ध था, और आश्रयहीन। गजानन शास्त्री ने उस सिद्ध तांत्रिक की सेवा ही नहीं की, उसको आश्रय भी दिया अपने यहाँ। गजानन शास्त्री अध्ययनशील थे। उनका अधिक से अधिक अध्ययन लेखन और चिन्तन–मनन में ही व्यतीत होता था। यह बात उस तांत्रिक से छिपी नहीं रही। एक दिन उसने गजानन शास्त्री से कहा जितना तुम परिश्रम करते हो उससे कोई विशेष लाभ नहीं। आध्यात्मिक और बौद्धिक लाभ के साथ ज्ञान लाभ भी होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जबकि वेद, उपनिषद, शास्त्र आदि के अथाह सागर की गहरायी में प्रवेश किया जाय।

कैसे सम्भव है यह – उत्सुक हो उठे गजानन शास्त्री। थोड़ा गम्भीर होकर वह वृद्ध सिद्ध तांत्रिक कहने लगा–अपनी युवावस्था में तुम्हारी ही तरह मैं भी था अध्ययनशील। अन्य शास्त्रों की तरह तंत्र शास्त्र के अथाह सागर में प्रवेश कर उसके क्रिया पक्ष और ज्ञान पक्ष दोनों पक्षों पर अपना पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहता था। लेकिन यह भी भलीभांति जानता था कि बिना पारलौकिक सहयोग के यह सम्भव नहीं। संयोग ही समझिए उसी समय अचानक एक प्राचीन

पाण्डुलिपि मेरे हाथ लग गयी। उस दुर्लभ पाण्डुलिपि की आयु तीन सौ वर्ष के लगभग थी और उसका मुख्य विषय तंत्र साधना थी। तंत्र के क्रिया पक्ष पर अत्यधिक प्रकाश डाला गया था उस दुर्लभ पाण्डुलिपि में। उसी में मुझे मिला यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि की साधना और उनकी सिद्धि का विस्तृत विवरण। यक्षों की तरह किन्नर भी अन्य शास्त्रों की तरह तंत्र शास्त्र के दोनों पक्षों के परम ज्ञाता होते है यह मुझे ज्ञात था। उस पाण्डुलिपि में दिए गये निर्देश के अनुसार मैंने किन्नर की साधना की और उसकी सिद्धि के परिणामस्वरूप श्रीधर नाम के विद्याधर से मेरा सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रायः मेरे सामने सशरीर उपस्थित होने लगा वह। भरपूर सहयोग दिया उसने मुझे। वेद, शास्त्र उपनिषद, पुराण, योग और तंत्र के अन्तराल में छिपे हुए उन रहस्यों से उसने परिचित कराया मुझे जो देशकाल के प्रभाव से अतीत के तिमिराच्छन्न के अन्धकार में विलीन हो चुके हैं।

थोड़ा रूक कर कुछ सोचते हुए वह वृद्ध सिद्ध तांत्रिक ने कहा – मेरा अब कोई ठीक नहीं है। कभी भी मेरी मृत्यु हो सकती हैं। तुमने मेरी सेवा की है और मुझे आश्रय भी दिया है। तुम पर मेरी आत्मा प्रसन्न है। मेरी मृत्यु के पश्चात श्रीधर तुमको भी उसी प्रकार सहयोग देगा, उसी प्रकार मार्गदर्शन करेगा और उसी प्रकार तिमिराच्छन्न रहस्यों से परिचित करायेगा, जैसा कि मेरे साथ किया है अभी तक उसने।

उस तांत्रिक की बात सत्य सिद्ध हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात् गजानन शास्त्री का सम्पर्क स्वयं अपने आप स्थापित हो गया श्रीधर नाम के विद्याधर से। स्वयं सशरीर उपस्थित हो जाता है वह। आवाहन नहीं करना पड़ता मुझे।

तब तो आप तंत्र के अनेक गूढ़ तत्वों से भली भांति परिचित हो चुके होंगे–मैंने गजानन शास्त्री के चेहरे की ओर देखते हुए अपनी

जिज्ञासा प्रकट की।

गजानन शास्त्री बोले – तंत्र तो अगाध समुद्र के समान है। जितना मेरा संस्कार था और जितनी मेरी योग्यता थी उतना ही उपलब्ध कर सकी मेरी आत्मा। मैं तो यही सोचता हूँ कि जितने की आशा की थी उतना उपलब्ध नहीं हुआ मुझे। अपनी आत्मा में रिक्तता का ही अनुभव करता हूँ मैं।

आपका ऐसा कहना आपके पाण्डित्य की पुष्टि करता है। ज्ञान और साधना मार्ग के पथिक सदैव अपने आपको रिक्त ही समझते हैं, कभी नहीं समझते अपने आपको पूर्ण यही तो उनकी विशेषता है।

मेरी बात सुनकर गजानन शास्त्री थोड़ा मुस्कराये लेकिन बोले कुछ नहीं।

लगभग एक सप्ताह और रहा मैं उस महान साधक के सामीप्य में। वास्तव में तंत्र के विषय में गजानन शास्त्री से जो कुछ उपलब्ध हुआ वह अनुभवजन्य ज्ञान था पुस्तकीय नहीं। काफी लम्बा समय व्यतीत हो चुका है इस समय अपने पार्थिव शरीर में गजानन शास्त्री है या नहीं, यह बतलाया नहीं जा सकता।

विद्याधरी अथवा अप्सराएं : कोष ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चौबीस प्रकार के विद्याधर होते हैं और चौबीस प्रकार की होती है विद्याधरी। जिनको अप्सरा कहा जाता है उन्हीं का दूसरा नाम है विद्याधरी।

अप्सराओं का भी व्यक्तित्व सुन्दर और आकर्षक होता है। उनके शरीर का रंग बर्फ की तरह सफेद और पारदर्शक होता है। इनके पीठ पर मोर पंख के समान दो लम्बे–लम्बे पंख होते हैं। इसलिए अप्सराओं को लोग परी भी कहते है। इनके बाल काफी लम्बे घने और काले होते है। इनकी आँखे बड़ी–बड़ी होती है और बाघिन की तरह उनमें चमक भी होती है। मस्तक चौड़ा नाक तोते की तरह और

होंठ लाल होते है। वे पतली–दुबली और लम्बे कद काठी की होती है। इनका स्वर मधुर और कोमल होता है। अपने लम्बे और घने पंखों की सहायता से आकाश में पक्षियों की तरह मुक्त विचरण करती है लेकिन इनकी उड़ने की गति अकल्पनीय होती है। वे इच्छानुसार कहीं भी आ जा सकती है। इनके मार्ग में कोई भी पार्थिव वस्तु बाधक सिद्ध नहीं होती। अपनी अबाध गति से सर्वत्र विचरण करने की क्षमता रखती हैं अप्सराएं, इसमें सन्देह नहीं। तंत्र के चौसठ विद्याओं में एक विद्या है आकाशगामिनी विद्या। आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि एक ऐसी सिद्धि है जिसके द्वारा अप्सराओं को आकर्षित कर वशीभूत किया जा सकता है कुछ अवधि तक।

अप्सरायें रूप बदलने में सिद्ध होती है। वशीभूत होने पर कमनीय, लावण्यमयी और सुन्दर युवती के रूप में साधक के सामने प्रकट होती है। काल का ज्ञान अद्‌भुत होता है अप्सराओं को। इसके अतिरिक्त लोक लोकान्तरों के विषय में भी गहरी जानकारी रखती हैं वे। पृथ्वी से संबंधित किस लोक लोकान्तर में कौन सी घटना घटने वाली है अथवा घट रही है और उसका कैसा तथा किस रूप में पृथ्वी के जन–जीवन पर प्रभाव पड़ेगा? इसका ज्ञान अप्सराओं को पहले से ही रहता है। इसी प्रकार काल ज्ञान होने के फलस्वरूप वर्तमान में अथवा भविष्य में काल की गति संसार के किस स्थान अथवा क्षेत्र में कैसी होगी और वहाँ उस स्थान या क्षेत्र में उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? इससे भी परिचित होती हैं अप्सरायें।

तर्क पंचानन महाशय ने बतलाया कि विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वत्र काल की गति समान नहीं है कहीं तीव्र से तीव्रतम है तो कहीं मन्द से मन्दतर। कोई–कोई स्थान तो ऐसे भी है जहाँ काल का प्रभाव है ही नहीं। ऐसे स्थानों को काल शून्य स्थान कहते हैं जहाँ गहनतम् अन्धकार का राज्य है। जिसमें प्रवेश करने पर मैं का बोध भी समाप्त

हो जाता है। मानव शरीर में वह काल शून्य स्थान योग के अनुसार मुख्य मस्तिष्क और अधो मस्तिष्क के सन्धि स्थल पर है। योगीगण ऊर्ध्वगत प्राण वायु के माध्यम से अपनी आत्मा को उस काल शून्य स्थान पर ले जाते हैं, जहाँ उनकी अस्मिता का अभाव हो जाता है। योग़ की यह एक परम अवस्था है। यदि यह परम अवस्था साधना काल में उपलब्ध हो जाती है तो शरीरान्त होने पर योगीगण ब्रह्माण्ड में स्थित उसी कालशून्य स्थान में प्रवेश करते है और सदैव के लिए उनकी अस्मिता उसी प्रगाढ़ अन्धकार में विलीन हो जाती है।

थोड़ा रूक कर तर्क पंचानन महाशय आगे बोले काल के तीन रूप हैं — महाकाल, काल और खण्ड काल। साधना भूमि में इन्हीं तीनों रूपों को सदाशिव, शिव और त्र्यम्बक कहते हैं। खण्डकाल से तात्पर्य है भूत काल, भविष्यकाल और वर्तमान काल। खण्ड काल की इन तीनों अवस्थाओं को त्र्यम्बक की संज्ञा दी गयी है। इस प्रसंग में यह भी समझ लेना चाहिए कि खण्डकाल का अस्तित्व केवल भू—मण्डल में ही है, लेकिन वह भी समान रूप से नहीं। कहीं भूतकाल का प्रभाव अधिक है तो कहीं भविष्यकाल का। रही बात वर्तमान काल की तो उसका प्रभाव इस भू—मण्डल में सीमित है और वह सीमित प्रभाव जहाँ है वह भूमण्डल का चतुर्थ आयामी जगत है। तीन आयाम के जगत में तो उसका अस्तित्व एक प्रकार से न के ही बराबर है। वास्तव में वर्तमान कहीं है ही नहीं। महाकाल और काल की गति की बात को तो छोड़िये। खण्डकाल की ही गति अपने आपमें अकल्पनीय है। वर्तमान काल की आधार बिन्दु पर भविष्य कब भूत में परिवर्तित हो जाता है इसका हमें पता ही नहीं चलता। काल के तीव्रतम प्रवाह में भूत में परिवर्तित होता जा रहा है भविष्य हर पल और हर क्षण। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वर्तमान का अस्तित्व कहीं नहीं है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, यदि है तो चतुर्थ आयामी

जगत में।

मानव जीवन को ही लीजिए। जीवन काल का भोजन है। हर क्षण जीवन को खा रहा है काल। क्योंकि वह त्रिकाल से बंधा हुआ है। मानव जीवन का अतीत यानी भूतकाल वास्तव में एक ऐसा दीर्घ कालीन इतिहास है, जिसका कब और किस अवस्था में प्रारम्भ हुआ यह बतलाया नहीं जा सकता। और उस तिमिराच्छन्न इतिहास के कौन से अध्याय में कब, कौन सी घटना घटी यह भी नहीं बतलाया जा सकता। सच पूछा जाय तो मानव जीवन के अतीत का पूरा का पूरा इतिहास भूतकाल के गहनतम् अन्धकार में आकण्ठ डूबा हुआ है इसमें सन्देह नहीं। एक परम योगी ही उस अन्धकार के सागर में डूबकर जान समझ सकता है और पढ़ सकता है मानव जीवन के अतीत के तिमिराच्छन्न इतिहास को या तो फिर एक अप्सरा सिद्ध व्यक्ति।

अप्सरा सिद्ध साधक भोला गिरि

क्या आपकी दृष्टि में कोई अप्सरा सिद्ध व्यक्ति रहा है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तर्क पंचानन महाशय पहले तो थोड़ी देर चुप रहे फिर बोले – उन दिनों मैं कलकत्ता में रहता था। युवावस्था थी मेरी। साधना क्षेत्र में प्रवेश कर चुका था। उस समय मेरे गुरू थे साधक भोलागिरि महाशय चौबीस परगना में रहते थे भोलागिरि महाशय। यह तब की बात है जब चौबीस परगना का इलाका निर्जन और सुनसान था। बीस पच्चीस कच्चे–पक्के मकान अवश्य थे लेकिन एक दूसरे से काफी दूर–दूर पर। पीछे–थोड़ा सा क्षेत्र जंगली भी था। और उसी जंगली क्षेत्र के एक बिल्कुल निरापद एकान्त स्थान में बनी एक झोपड़ी में रहते थे साधक भोला गिरि महाशय। कब मेरी उनसे भेंट हुई और उनके द्वारा मैं प्रेरित हुआ कब और कैसे साधना मार्ग में इसके अलावा उन्होंने कब दी मुझे दीक्षा तंत्र की इन सबका

लेखा जोखा अब मेरे मस्तिष्क में नहीं रह गया है इस अवस्था में लेकिन मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि अप्सरा की परम सिद्धि थी साधक भोला गिरि महाशय को, इसमें सन्देह नहीं। उसी सिद्धि का आश्रय लेकर भूत और भविष्य की घटनाओं का ऐसा सजीव चित्रण करते थे जैसे सामने चित्रपट पर देख रहे हों वह सब कुछ। इसी कारण आधे बंगाल में त्रिकालज्ञ के नाम से प्रसिद्ध थे गिरि महाशय। एक दो बार उस त्रिकालज्ञ की पदवी के कारण पुलिस के घेरे में आते—आते बचे महाशय। उस दिन से कान पकड़ लिया था उन्होंने कि चोरी—चमारी और खून, कत्ल के मामले में अपनी विद्या का चमत्कार नहीं दिखायेंगे वह। सिद्ध अप्सरा की सहायता से किसी भी व्यक्ति के अतीत में झांककर उसके संबंध में सब कुछ जान जाते थे महाशय, यहाँ तक कि उसके पिछले जन्म की भी बहुत सी बातें बतला दिया करते थे उस व्यक्ति को, जो सत्य होता था। अनुरोध करने पर कभी कदा भविष्य में घटने वाली घटनाओं पर से भी काल का पर्दा उठा देते थे वह। पूरे पाँच वर्ष रहा मैं भोला गिरि महाशय के सान्निध्य में। इस अवधि में योग परक तंत्र के गूढ़ आयामों से तो परिचित हुआ ही इसके अतिरिक्त कई प्रकार की दुर्लभ तांत्रिक सिद्धियाँ भी प्राप्त की मैंने उनसे।

उस समय उनकी अवस्था सौ के लगभग हो चुकी थी। पूर्ण रूप से प्रभावित हो चुका था उनका तन, मन और मस्तिष्क वृद्धावस्था से। सम्भवतः उनका अन्तिम समय निकट आ गया था। एक दिन कांपते स्वर में बोले बड़ी विकट स्थिति में फंस गयी है मेरी आत्मा। तुम्ही उबार सकते हो और कोई नहीं ...।

मेरी समझ में नहीं आया कुछ। बाद में स्थिति स्पष्ट हुई। आत्मा को शरीर छोड़ने में बाधक सिद्ध हो रही थी उनकी सिद्ध अप्सरा। वास्तव में बड़ी विचित्र स्थिति थी भोलागिरि की। किन्नरी, यक्षिणी,

अप्सरा आदि अभौतिक आत्माएं मंत्र शक्ति से अविभूत होकर जब भौतिक वातावरण में एक बार आ जाती हैं तो उनका पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर निकलना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। भौतिक जगत में उनको कोई न कोई आश्रय चाहिए ही और आश्रय वही दे सकता जिसको वे सिद्ध हों। सिद्ध अप्सरा को किसका आश्रय दे? ताकि उनका प्राणान्त हो सके–यही समस्या थी भोलागिरि के सामने उस समय।

कहने की आवश्यकता नहीं, गुरु का कष्ट देखा न गया मुझसे। एक विशेष तांत्रिक क्रिया द्वारा स्वीकार कर लिया भोलागिरि की सिद्ध अप्सरा को मैंने। पूर्ण रूप से मुक्त हो गये थे अब वह। अपनी उस विकट सिद्धि से। कुछ देर बाद उनकी आत्मा भी मुक्त हो गयी उनके पार्थिव से। फिर क्या हुआ? उत्सुक होकर पूछा मैंने।

होगा क्या? जो होना था वही हुआ–तर्क पंचानन महाशय थोड़ा विषण्ण होकर बोले–मैंने अपने गुरु की तरह उस अप्सरा का उपयोग नहीं किया कभी। लेकिन प्रत्येक पूर्णिमा की रात में स्वयं सामने प्रकट होने लगी और प्रकट होकर अपने आप लोक परलोक की ही नहीं, भूत, भविष्य, वर्तमान की भी बतलाने लगी बातें वह, जो अपने आपमें अत्यन्त रहस्यमय होती थी।

क्या अभी भी प्रकट होती है वह पूर्णिमा की रात में। मैंने जिज्ञासु भाव से पूछा?

हाँ! हर पूर्णिमा की रात, चन्द्रोदय से छः घण्टे व्यतीत होने पर भौतिक काया में प्रकट होती है वह केवल मात्र पच्चीस मिनट के लिए। फिर उसका अस्तित्व विलीन हो जाता है वायुमण्डल में।

जब अप्सरा प्रकट हुई

न जाने कैसे और क्या सोचकर पूछ बैठा मैं – क्या मेरा साक्षात्कार हो सकता हैं अप्सरा से? क्या उसे देख सकता हूँ मैं?

क्यों नहीं यदि मैं चाहूँ तो सम्भव हो सकता है। फिर न जाने क्या सोचते हुए तर्क पंचानन महाशय बोले – अगली पूर्णिमा की रात्रि के समय आ जाना तुम...।

यह सुनकर न जाने क्यों मेरा सारा शरीर सनसना उठा एकबारगी। कथा कहानियों के रूप में परी और अप्सराओं के संबंध में बहुत कुछ पढ़ा था और सुना भी था मैंने। लेकिन सोचने की बात तो अलग कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि कभी प्रत्यक्ष रूप में किसी अप्सरा को देखने का अवसर मिलेगा जीवन में।

आखिर पूर्णिमा की रात आ ही गयी। उस दिन सबेरे से ही मन न जाने क्यों घबरा रहा था। एक विचित्र सी बेचैनी थी। ऐसा लगता था कि जैसे कोई अनहोनी घटने वाली हो। कार्तिक की पूर्णिमा थी वह। सांझ का समय। पूरब का क्षितिज धीरे–धीरे सफेद हो रहा था। थोड़ी ही देर में बादलों के टुकड़ों के पीछे से झांकने लगा पूर्णमासी का रूपहला चांद। हाथ में माला फूल, मिठाई और शराब की बोतल लिए पहुँच गया मैं। नित्य की भांति, तर्क पंचानन महाशय ने महाकाली की छवि पर माला चढ़ाई, घी का दीप और अगरबत्ती जलायी माँ महामाया के सम्मुख और फिर अन्त में मदिरार्पण किया।

गंगाघाट की तरफ वाली खिड़कियाँ खुली हुई थी। झांककर देखा कुहरे की हल्की परत पर रूपहली चांदनी पसरी हुई थी। गहरी निस्तब्धता थी वातावरण में। काफी ऊपर तक आ गया था चांद नीले आकाश में। रात का दूसरा प्रहर समाप्त ही होने वाला था शायद। मदिरा की भरी बोतल खाली हो चुकी थी अब तक। उस महा तंत्र साधक की लाल हो रही थी भरी–भरी आँखें। और सामने खिड़की के बाहर न जाने क्या देख रही थीं वे। और तभी टन्–टन् कर बारह का घंटा बजा कहीं। और उसी क्षण कांप उठा एकबारगी माँ महामाया के सम्मुख प्रज्ज्वलित दीपक की लौ। अब बोझिल–सा होने लगा था

कमरे का वातावरण और उसी के साथ रहस्यमय भी। अभी तक खिड़की के बाहर ही थमी हुई थी महातंत्र साधक की बोझिल आँखें। पाषाणवत् बैठा था मैं अपने स्थान पर। मेरे अंग प्रत्यंग अवश से हो गये थे जैसे। अपने आपमें कुछ विचित्र सा अनुभव कर रहा था मैं। वह अनुभव किस चीज का था यह मेरी समझ के परे था। शेर के सामने जैसी स्थिति एक बकरी की होती है शायद वैसी ही स्थिति थी मेरी उस समय। अचानक चन्दन जैसी सुगन्ध फैल गयी कमरे के बोझिल और रहस्यमय वातावरण में। और उसी समय मेरी दृष्टि अपने आप घूम गयी खिड़की के बाहर आकाश की ओर। हे भगवान् घने कुहरे से बनी एक मानवाकृति धवल चांदनी रात-में धीरे–धीरे आगे बढ़ रही थी खिड़की की ओर। लगा जैसे तैर रही हो नीले आकाश में। भय, आश्चर्य और कौतूहल के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन एक बारगी। और उसी समय कमरे के बोझिल और रहस्यमय वातावरण में गम्भीर स्वर गूंज उठा महातंत्र साधक का–शान्त और स्थिर भाव से अपने स्थान पर बैठे रहो...वह आ रही है...।

सचमुच आ रही थी वह। कब वह मानवाकृति खिड़की से भीतर कमरे में आयी और कब एक परम लावण्यमयी सुन्दरी युवती के रूप में परिवर्तित हो गयी पल भर में। समझ में नहीं आया। निश्चय ही सम्मोहित सा हो गया था मैं उस समय। समझते देर न लगी मुझे। सिद्ध अप्सरा थी वह। सफेद, पारदर्शक काया, अंग–प्रत्यंग जैसे सांचे में ढले हुए, लम्बी गर्दन, गोल चेहरा, पतले रक्ताभ होठ, बड़ी–बड़ी भौराली आँखें, ऊँचा मस्तक और उस मस्तक पर ध्रुव तारे जैसी चमकती हुई लाल बिंदिया, काफी लम्बे काले रेशम जैसे घने बाल, और सिर पर रत्न जड़ित छोटा–सा मुकुट और विभिन्न प्रकार के चमकते रत्नों की मालायें गले में। उभरे हुए उरोज और पतली कमर। शरीर पर वस्त्र था या नही, यह समझ में नहीं आया लेकिन पूरे

पारदर्शक शरीर से प्रस्फुटित हो रही थी शुभ्र आभा। मुस्कराती हुई त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हो गयी महातंत्र साधक तर्क पंचानन महाशय के सामने वह सिद्ध अप्सरा। और कुछ क्षण रूक कर अपनी भौराली और स्निग्ध आँखों से मेरी ओर देखते हुए कोमल और मधुर स्वर में तर्क पंचानन महाशय से पूछी वह—कौन है यह युवक?

मेरे संबंध में उत्तर सुनकर केवल मन्द—मन्द मुस्करायी वह तन्वंगी और फिर सामने पहले से ही रखे हुए कारणपात्र को अपने दोनों हाथों से उठा लिया उसने और गट्—गट् कर पीने लगी वारुणी। वह और पीते समय सिर घुमाकर पहले की तरह अपनी भौराली आँखों से एक बार फिर मेरी ओर देखा उस सिद्ध अप्सरा ने। हे भगवान! उसकी उस झील जैसी गहरी और नीली आँखों में कितना सम्मोहन भरा था उस समय, मैं बतला नहीं सकता। और यह भी नहीं बतला सकता कि उस सम्मोहन भरी भौराली आँखों की गहरायी में मेरे प्रति क्या भाव था?

शायद पच्चीस मिनट का समय समाप्त होने वाला था। देखते ही देखते कुहरे के रूप में परिवर्तित हो गयी वह विद्याधरी। दूसरे क्षण वह कुहरा भी बिखर गया कमरे के रहस्यमय वातावरण में।

पूरी रात सो न सका मैं। बार—बार मानस पटल पर उभर आता था उस अप्सरा की सम्मोहन भरी भौराली आँखें। क्या कहना चाहती थी वे आँखें? अपनी मूक भाषा में?

लगातार कई दिनों तक न जा सका मैं तर्क पंचानन महाशय के यहाँ। और जब गया एक दिन तो देखा रोग शैय्या पर पड़े थे तर्क पंचानन महाशय। सारा शरीर एक बारगी गल कर शिथिल हो गया था। एक वृद्ध महिला उन्हें पानी पिलाने की कोशिश कर रही थी। लेकिन उनका मुँह था कि खुल ही नहीं रहा था। दाँत जम गये थे शायद। एक टक छत की ओर निहार रहे थे महाशय। क्या हो

गया अचानक उन्हें? उस वृद्ध महिला से ज्ञात हुआ कि पूर्णिमा के दूसरे ही दिन से इसी स्थिति में है वह। खाना, पीना, उठना–बैठना सब बन्द। शरीर भी हिल डुल नहीं रहा था उनका। शान्त और निष्प्राण सा लग रहा था वह। मेरी उपस्थिति की आहट लग गयी थी उन्हें शायद। सिर घुमाकर उन्होंने मेरी ओर देखा, पथरायी सी आँखें, निस्तेज, और भावशून्य लगा जैसे किसी मुर्दे की आँखें हो वह? एक महान साधक और सिद्ध को ऐसी रूग्ण स्थिति में देखकर विचलित हो उठा मेरा मन, प्राण। उनकी आँखों की मूक भाषा से लगा जैसे वह कुछ कहना चाहते हों मुझसे। शायद कण्ठ अवरूद्ध हो गया था इसीलिए चाहकर के भी वाणी फूट नहीं पा रही थी मुँह से। हे भगवान कैसी अवस्था थी वह। माँ की छवि की ओर देखा, माँ की आँखों में दया और करुणा का सागर लहरा रहा था लेकिन जिह्वा रक्ताभ लगी मुझे। पूर्णमासी की चढ़ी जवापुष्प की माला न जाने कब की मुरझा चुकी थी। सामने रखा कारण पात्र भी रिक्त था। अवाक् और स्तब्ध खड़ा था मैं। और तभी दो बंगाली सज्जन आ गये वहाँ। देखने सुनने में भद्र पुरुष प्रतीत हो रहे थे। जिज्ञासु भाव से एक साथ सिर घुमाकर मेरी ओर देखा दोनों ने। मैंने अपना परिचय दिया और अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी वृद्ध महिला से ज्ञात हुआ कि वे दोनों लोग पड़ोस में रहते हैं और बाबा के परम भक्त है। बाबा अस्वस्थ हैं इसलिए वे लोग आ जाते हैं उनका हाल–चाल लेने के लिए। उनके चले जाने के बाद भी वहीं रहा मैं। न जाने क्यों वहाँ से हटने का मन ही नहीं कर रहा था मेरा। धीरे–धीरे सांझ घिर आयी। वृद्ध महिला ने माँ के सामने घी का दीप जलाया और फिर कमरे की बत्ती जलायी। हल्का पीला प्रकाश फैल गया पूरे कमरे में। थोड़ी देर बाद आने को कह कर चली गयी वृद्ध महिला। अकेला रह गया मैं?

अचानक बाबा के निर्जीव से शरीर में चेतना का संचार हुआ।

अवरुद्ध कण्ठ खुला। मेरी ओर देखते हुए क्षीण स्वर में अटक–अटक कर कहने लगे तर्क पंचानन महाशय – मैंने ... अच्छा ... नहीं किया। उस अभौतिक सत्ता की आत्मा को तुम्हारा परिचय नहीं देना चाहिए था मुझे ...। अब क्या होगा माँ... तुम्ही रक्षा करना इस बालक की. .. सांस फूलने लगी थी अब उस परम तंत्र साधक की। आगे नहीं बोला गया उस महात्मा से।

तर्क पंचानन महाशय का महाप्रयाण - अब उनकी आँखें बन्द हो चुकी थी। चेहरा भी हो गया था भावहीन उनका। कमरे का वातावरण एकाएक बोझिल हो उठा एकबारगी। रहस्य का धुंआ भर गया जैसे वहाँ। चन्दन की चिर–परिचित सुगन्ध बिखर गयी उस बोझिल और रहस्यमय कमरे में। सिर घुमाकर चारो ओर देखा मैंने। खिड़की के रास्ते आती हुई दिखलायी दी वह अप्सरा मुझे। भय और आतंक के मिले जुले भाव से भर गया मन। सारा शरीर रोमान्चित हो उठा मेरा। क्या चाहती है वह रहस्यमयी विद्याधरी? किस यज्ञ की पूर्णाहुति चाहती है वह ...?

अब तक वह अप्सरा भीतर आकर तर्क पंचानन महाशय के सिरहाने खड़ी हो गयी थी और अपलक निहारने लगी थी उनके चेहरे की ओर तब तक वह वृद्ध महिला भी आ गयी थी वहाँ। लगा जैसे कोई असामान्य घटना घटने वाली हो वहाँ। निश्चय ही वृद्ध महिला उस अप्सरा के अस्तित्व को देख नहीं पायी थी। लेकिन मैं उसकी प्रत्येक गति विधि को स्पष्ट देख रहा था। अचानक कमरे में हल्का नीला प्रकाश कौंध सा गया एक पल के लिए। और उसी क्षणिक प्रकाश में घट गया अघटित महातंत्र साधक की काया को हमेशा–हमेशा के लिए छोड़कर चली गयी उनकी दिव्य आत्मा उस अप्सरा के साथ। रहा न गया मुझसे, उस परम दिव्य साधक के सफेद पड़ गये शीतल चरणों पर अपना सिर रखकर रोने लगा मैं

फफक–फफक कर। कहाँ मिलेगा ऐसा साधक? कहाँ मिलेगा तंत्र का ऐसा उद्‌भट विद्वान? और कौन बतलायेगा मुझे तंत्र के गूढ़ रहस्यों को?

स्याह अंधेरी रात। काशी के हरिश्चन्द्र घाट का महाश्मशान। धधकती हुई चिता और उस चिता से उठती हुई लाल पीली लपटें और उन लपटों के बीच जलती हुई उस महान तंत्र साधक की निष्प्राण काया।

न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं सामने जलती हुई चिता को। और उसी अवस्था में ऐसा लगा मानों कोई अस्पष्ट स्वर में कह रहा है–चिन्ता मत करो। तुम्हारी खोज यात्रा पूर्ण होगी। प्रयास करते रहो...।

किसका था वह स्वर? कौन दे रहा था मुझे सान्त्वना? समझ में नहीं आया कुछ।

तृतीय पात्र

दो प्रकार के अपदेवता

विश्व ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार की सृष्टि है—सत्वगुणी सृष्टि, रजोगुणी सृष्टि और तमोगुणी सृष्टि। तीनों प्रकार की सृष्टियाँ क्रमशः आत्म प्रधान, मनः प्रधान और कर्म प्रधान है। इन तीनों सृष्टियों के कर्ता हैं क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि प्रथम प्रकार की सृष्टि में निवास करने वाली आत्माएँ भोग और कर्म इन दोनों से मुक्त हैं। उनका अस्तित्व ही सब कुछ है। दूसरे प्रकार की सृष्टि में निवास करने वाली आत्माओं में केवल भोग मुख्य है। इसी प्रकार तीसरे प्रकार की सृष्टि की आत्माओं में मात्र केवल कर्म प्रधान है। शुभाशुभ कर्मो के फल के अनुसार उसके भोग की व्यवस्था नियति करती है और प्रकृति उस व्यवस्था के लिए कारण उपस्थित करती है। ब्रह्म मण्डल, ऋषि मण्डल और दिव्य मण्डल ये तीनों मण्डल आत्म प्रधान, सत्वगुणी सृष्टि के अन्तर्गत है।

जैसा कि बतलाया जा चुका है 'देव मण्डल' के अन्तर्गत अभौतिक सत्ता के चार मुख्य भाग हैं पहला और दूसरा भाग सात्विक और राजसी आत्माओं का क्षेत्र है। इसी प्रकार तीसरा भाग तामसी आत्माओं का है क्षेत्र। इस तीसरे भाग के दो खण्ड है। पहले खण्ड में रजोगुणी

और तमोगुणी मिश्रित वृत्ति और स्वभाव की आत्माएँ निवास करती है जिनको कोश की भाषा में 'सिद्ध' कहते हैं।

सिद्धगण : पिछले प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि सिद्धगण अच्छे बुरे दोनों स्वभाव के होते हैं। उनमें दया भाव, कृपा भाव और प्रेम अथवा करुणा भाव भी है तो दूसरी ओर भयंकर क्रोधी और सभी दृष्टि से सर्वस्व नाश करने का भी भाव है। सिद्धगण, पहले प्रकार के अप देवता है। इनका रूप रंग और व्यक्तित्व आकर्षक होता है। यक्षों की तरह वे सुन्दर भी होते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार के आभूषण और रत्न धारण करने के फलस्वरूप उनकी शोभा देखते ही बनती है। मनुष्य के प्रति इनकी रुचि गहरी होती हैं। भौतिक जगत के प्रति भी उनका आकर्षण कम नहीं होता। कभी कदा आवश्यकता पड़ने पर मानव रूप धारण कर संसार में विचरण करते हैं। एक बार काशी के दशाश्वमेध घाट के ऊपर एक सिद्धात्मा को मानव शरीर में देखा था मैंने। उनका कद छः फिट से अधिक था। गोरा रंग था शरीर का। सफेद रंग की रेशमी चादर और लुंगी थी उनके गौर वर्ण शरीर पर। उनकी गति विधि और व्यक्तित्व को देखकर मुझे यह समझते देर न लगी कि निश्चय ही कोई अद्‌भुत और मानवेतर प्राणी हैं वह। मुझे देखकर मुस्करा रहा था वह। मैं भी आकर्षित था उनके व्यक्तित्व के प्रति। मैं उनसे बात करना चाहता था लेकिन यह सम्भव न हो सका, क्योंकि देखते ही देखते अपने स्थान से गायब हो गये वह एकाएक। उस रहस्यमय व्यक्ति की चर्चा मैंने गुरुवर डॉ. कविराज से की तो उन्होंने बतलाया कि वह व्यक्ति कोई सिद्ध था। इसमें सन्देह नहीं। उस समय एक सज्जन वहाँ बैठे हुए थे, सम्भवतः वह कोई जिज्ञासु व्यक्ति थे। उन्होंने बड़े ही सहज ढंग से कहा—इसी काशी में ही एक तंत्र साधक गुप्त रूप से निवास करते हैं, नाम है काली चरण भवाल। बंगदेशीय शरीर हैं, अवस्था यही पचास वर्ष की है

लगभग। अच्छे साधक हैं वह। सिद्धों के संबंध में अच्छा ज्ञान रखते हैं महाशय। उनका अपना अनुभव भी है। काली चरण भवाल का पता ले लिया मैंने उक्त सज्जन से।

साधक काली चरण भवाल

वाराणसी के निकट जिस स्थान पर गंगा–गोमती नदी का संगम है, वहाँ विख्यात मार्कण्डेय महादेव का विशाल मन्दिर है। और उसी मन्दिर के बाहरी भाग में एक छोटी सी पक्की–कच्ची कुटिया में रहते थे साधक काली चरण भवाल। मेरे सबसे छोटे पुत्र अनिल शर्मा ने उनसे साधना संबंधी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की थी। पूरे तीन साल तक उनसे उसका सम्पर्क बना रहा। उस अवधि में अनिल शर्मा को गोपनीय साधनाओं के विषय में गहन अनुभव हो चुका था। अनिल शर्मा की मृत्यु का समाचार लेकर मैं ही गया था भवाल महाशय के यहाँ। मृत्यु का अप्रत्याशित समाचार सुनकर भवाल महाशय काफी दुःखी हुए थे, उन्होंने बस इतना ही कहा अनिल की आत्मा एक उच्चकोटि के साधक की आत्मा थी। उसे यदि उचित वातावरण और अनुकूल सहयोग प्राप्त हुआ होता तो तांत्रिक साधना मार्ग का एक प्रकाश स्तम्भ बनता वह भविष्य में, इसमें सन्देह नहीं। अनिल कुमार की आत्मा किस स्थिति में है? इस प्रश्न के उत्तर में भवाल महाशय ने केवल इतना ही कहा कि उसकी आत्मा यक्ष लोक में विश्राम कर रही है इस समय। कहने की आवश्यकता नहीं पूरे चालीस वर्ष के बाद साधक काली चरण भवाल का दर्शन लाभ हुआ था मुझे। वर्तमान कुटिया पहले ही जैसी ही थी। केवल चारों ओर के वातावरण में आ गया था बदलाव। भीड़–भाड़ भी कम थी उस समय। दो चार मकान के अलावा जंगल और खेतों के अलावा और कुछ नहीं था उस तीर्थ क्षेत्र में।

जब मैं पहुँचा था उस समय दोपहरी ढल चुकी थी। पश्चिम

की ओर मुँह किये सूरज की धूप का लाल–पीला धब्बा मार्कण्डेय महादेव के शिखर पर चिपका हुआ था जैसे। गहरी शान्ति थी चारों तरफ। कुटिया के सामने वाले पेड़ के नीचे बैठे थे काली चरण भवाल महाशय। साठ से अधिक नहीं प्रतीत होती थी उनकी आयु। गोरा रंग; मझोला कद, लम्बी सफेद दाढ़ी, जटाजूट से बाल, चौड़ा माथा बड़ी–बड़ी गहरी आँखें और शरीर पर सफेद वस्त्र।

सम्भवतः मेरी जिज्ञासा को समझ गये भवाल महाशय। एक बार मेरी ओर देखकर मुस्कराये वह और फिर बोले–सिद्धगणों के संबंध में जानना समझना है न तुमको? ज़ी! महात्मा – मैंने विनम्र स्वर में कहा। मेरी बात सुनकर भवाल महाशय ने पेड़ के नीचे बर्तन साफ कर रहे एक युवक को बुलाया–अरे! जमुना यहाँ तो आ।

महात्मा की आवाज सुनकर वह युवक मेरी ओर देखता हुआ उनके सामने खड़ा हो गया आकर। उस देहाती जैसे नवयुवक में न जाने क्या था कि अपलक निहारने लगा मैं उसकी ओर। निश्चय ही कोई विशेष आकर्षण था उस अपरिचित नवयुवक में इसमें सन्देह नहीं। गौर वर्ण, लम्बी चौड़ी कद काठी, सिर पर कस कर बांधा हुआ लाल रंग का गमछा, और शरीर पर लुंगी, और मटमैली गंजी। नंगा पैर, और यही था जमुना का व्यक्तित्व।

क्या है बाबा? जमुना ने हाथ जोड़कर और विनम्रता से सिर झुका कर पूछा?

दाहिने हाथ की उंगली से मेरी ओर इशारा करते हुए भवाल महाशय बोले – यह काशी से आये हैं इनकी कुछ जिज्ञासा और साथ ही कुछ प्रश्न भी है जिनका समाधान तुमको करना है।

यह सुनकर विमूढ़ सा देखने लगा मैं जमुना की ओर। यह अनपढ़ और देहाती–सा लगने वाला युवक क्या मेरा समाधान करेगा? निश्चय ही भवाल महाशय व्यंगात्मक व्यवहार कर रहे हैं मेरे साथ। एक प्रकार

से विषण्ण हो उठा मैं। सोचा, चलो उठो, यहाँ कुछ समाधान होने वाला नहीं। और तभी भवाल महाशय संकेत करते हुए बोले—जमुना ले जाओ पण्डित जी को अपने साथ कुटिया में।

तमोगुणी तांत्रिक शक्ति और सिद्धगण

कुटिया के भीतर जाते ही चेहरे का भाव बदल गया जमुना के। गम्भीर स्वर में पूछा—क्या आप सिद्धगणों के विषय में जानने समझने के लिए ही यहाँ आये हैं?

उत्तर में सिर हिलाकर मैंने कहा— हाँ।

तमोगुणी तांत्रिक क्रियाओं और साधना उपासनाओं के बिल्कुल समीप है सिद्धगण। रजोगुणी मिश्रित तमोगुणी वृत्ति और स्वभाव होने के कारण सिद्धगण रजोगुणी शक्ति से थोड़ा बहुत सम्पन्न तो होते ही हैं लेकिन विशेषकर तमोगुणी शक्ति से विशेष रूप से सम्पन्न होते हैं वे। यहाँ तुमको यह समझ लेना चाहिए कि बिना सिद्धगणों को प्रसन्न किये और उनकी सहायता प्राप्त किये तामसिक मार्ग की तांत्रिक क्रिया सफल और सम्पन्न नहीं।

एक देहाती गंवार और अनपढ़ सा दिखने वाला जमुना से इस प्रकार की बातें सुनकर अवाक और स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। अब मैं उसके मुख से निकलने वाले शब्दों को बड़े ध्यान से सुनने लगा था। आगे कहने लगा जमुना—मारपीट, झगड़ा, लड़ाई, दुश्मनी, बदले की भावना, शत्रु की किसी न किसी रूप से हानि पहुचाना दो व्यक्तियों के बीच विद्वेष उत्पन्न करना, अचानक कोई दुर्घटना का घटित होना, अचानक बीमार होना आदि कार्य तमोगुणी है। इन तमोगुणी कार्यो की सिद्धि के लिए जो तांत्रिक क्रियाएँ अथवा अनुष्ठान आदि है, उनमें सिद्धगणों की शक्ति अभिव्यक्त होती है —जो तांत्रिक क्रियाओं अथवा अनुष्ठानादि को सफल और सिद्ध करती है। सारांश यह कि उपर्युक्त प्रकार के तामसिक कार्यो के लिए प्रयुक्त यंत्र—मंत्र आदि की शक्ति

वास्तव में सिद्धगणों की अपनी शक्ति होती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को भगाना उसको उच्चाटित करना, किसी स्त्री या पुरुष को सम्मोहित करना, वश में करना, किसी को अपने अधिकार में कर उसके द्वारा मनोनुकूल कार्य कराना आदि रजोगुणी कार्य है। इन सब की सिद्धि के लिए भी जो तांत्रिक क्रियाएँ और अनुष्ठान अथवा प्रयोग किये जाते हैं, उनमें सिद्धगणों की अपनी स्वशक्ति ही होती है। उसी शक्ति के आधार पर तंत्र मंत्र यंत्र आदि सफल होते हैं और अपना प्रभाव भी दिखाते हैं। इसलिए जो तंत्र साधक तंत्र के रजोगुणी और तमोगुणी मिश्रित यंत्र मंत्रादि की सिद्धि और उसकी साधना उपासना में पूर्ण सफलता चाहते हैं तो उन्हें विधिवत् सिद्धगणों को प्रसन्न करना चाहिए और उनसे वह शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए जिसकी सहायता अथवा जिसके प्रभाव से यंत्र और मंत्र आदि अपना पूर्ण प्रभाव दिखा सके और साधना की इच्छा के अनुसार प्रदान कर सके सफलता। सारांश यह कि बिना सिद्धगणों की स्वशक्ति के आप कितना भी रजोगुणी और तमोगुणी मिश्रित कार्यों की सफलता और सिद्धि के लिए उनसे संबंधित यंत्रों का उपयोग करें और करें मंत्रो का जप अनुष्ठान, उपासना आदि कुछ होने जाने वाला नहीं। सब व्यर्थ ही समझा जायेगा। यदि आप सिद्धगणों की शक्ति और सहयोग प्राप्त कर लेते हैं तो एक साधारण कागज पर भी कोई भी यंत्र लिखकर उसका उपयोग करते हैं तो निश्चित ही सफलता प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रकार कोई भी मंत्र मात्र केवल पाँच सात, नौ, अथवा इक्यावन बार जपने से उसका प्रभाव तत्काल पड़ेगा, इसमें भी सन्देह नहीं। हाँ इस बात का अवश्य ख्याल रखना चाहिए कि वह यंत्र और मंत्र विशेष रूप से तमोगुणी हो। और जपने की माला कौड़ी की हो। और माला का धागा हो घोड़े के बाल का। वैसे मंत्र का जप उंगली पर भी किया जा सकता है।

सिद्धगणों का सहयोग और उनकी शक्ति कैसे प्राप्त हो-

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में रहस्यमय व्यक्ति जमुना ने बतलाया कि थोड़ा कठिन तो है अवश्य लेकिन साधक में आत्मबल, विश्वास और धैर्य है तो सिद्धगणों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। और उसकी शक्ति भी। जमुना ने थोड़ा रूककर आगे बतलाया दीपावली की अमावस्या से सात अथवा ग्यारह अमावास्या तक अर्धरात्रि के समय एक पाव जौ के आटे का श्राद्ध पिण्ड बनाकर उसमें उसी रात श्मशान में जलने वाली किसी चिता की राख एक मुट्ठी उसी श्राद्ध पिण्ड में मिला ले। जौ के आटे में राख पूरी तरह मिलाकर ही श्राद्ध पिण्ड बनाये जिसमें तिल, घी, चावल, शहद का भी मिश्रण हो। फिर सिद्ध के स्वरूप का ध्यान करते हुए श्मशान के निकट बैठकर आदमी का पुतला बनाए। लोहे के पत्र पर उस पुतले को लिटा कर उसे लाल फूल की माला पहनावे और उसका पंचोपचार पूजन करे। पुतले के सिर की ओर मिट्टी के पात्र में मदिरा, दूध और शहद रखें और पैर की ओर चमेली घी और सरसों के तेल का खड़ा दीप जलाये। ये सभी कार्य तभी होना चाहिए जब श्मशान में किसी नीच जाति का शव जल रहा हो और वह भी पुरुष का। उसके पश्चात् पुतले के सामने काले कम्बल के आसन पर बैठकर कौड़ी की माला पर जप करे और तब तक करे जब तक तीन चिताएं न जल जाये पूरी तरह श्मशान में। मंत्र क्या है? क्या आप मंत्र बतलाएंगे? मंत्र कोई किसी को नहीं देता। जो विधि विधान मैंने बतलाया है—उसी का नाम तंत्र है। तंत्र पूर्ण होने पर उसी अवस्था में इष्ट स्वयं मंत्र प्रदान करता है। किसी भी प्रकार के तंत्र साधना के पूर्व इष्ट साधना और उसकी सिद्धि अवश्य होनी चाहिए। बिना इष्ट के सब असफल।

रहा नहीं गया मुझसे, आखिर पूछ ही बैठा मैं—आप देखने में तो साधारण व्यक्ति लगते हैं। लेकिन इतनी गूढ़ साधना का ज्ञान कैसे

प्राप्त हुआ आपको? कुछ देर तक मेरी ओर देखता रहा जमुना, फिर धीरे से बोला—मैं स्वयं सिद्ध हूँ...। महात्मा के अधिकार में बंधा हुआ एक सिद्ध।

यह सुनकर रोमान्चित हो उठा मेरा सारा शरीर। भय और विस्मय के मिले जुले भाव से भर गया मन। किसी प्रकार कांपते स्वर में लड़खड़ाते हुए बोला—क्या आप जमुना नहीं हैं?

नहीं मैं जमुना नहीं हूँ। मैं तमो राज्य का मानवेतर शक्ति सम्पन्न प्राणी हूँ, मद्धिम किन्तु गम्भीर स्वर में उत्तर दिया उस रहस्यमय प्राणी ने।

उस समय मेरी क्या मानसिक स्थिति थी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मैं हतप्रभ था, अवाक् था, और था पाषाणवत्। सोचने विचारने की क्षमता भी हो गयी थी समाप्त। बाद में एक अविश्वसनीय रहस्य का उद्घाटन हुआ मेरे सामने। तामसिक लोक के उस सिद्ध को सिद्ध किया था भवाल महाशय ने। उपर्युक्त तांत्रिक क्रियाओं के बल पर। मंत्र शक्ति से बंधा हुआ वह सिद्ध विवश हो चुका था, लेकिन भवाल महाशय की परीक्षा लेना चाहा इसलिए कि परीक्षा के समय उसे वह पहचान न सके तो मंत्र शक्ति व्यर्थ हो जायेगी और वह मुक्त हो जायेगा उसके बन्धन से। भविष्य में फिर सिद्ध न कर सकेंगे महाशय।

अनुष्ठान पूर्ण होने पर भवाल महाशय ने यथा समय आवाहन किया सिद्ध का। और वह सिद्ध प्रकट भी हुआ लेकिन एक ग्रामीण, अनपढ़ और गंवार व्यक्ति के रूप में। और पागलों जैसा करने लगा व्यवहार वह। पहले तो भवाल महाशय कुछ समझे नहीं बाद में वास्तविकता से परिचित हो गये वह। अवसर गंवाना नहीं चाहते थे महाशय। तुरन्त नागवासुकी मंत्र से सिद्ध के उस मानवीय रूप को बांध दिया उन्होंने। और उसका नाम रखा जमुना।

फिर क्या, एक भयंकर तांत्रिक के रूप में भवाल महाशय को प्रसिद्धि प्राप्त करने में देर न लगी। उनकी कुटिया पर लोगों को भीड़ लगने लगी। दूर–दूर से भी लोग आने लगे उस तंत्र सम्राट का दर्शन करने के लिए।

एक और रहस्य पर से पर्दा हटा। जमुना के रूप में उस सिद्ध की शक्ति का आश्रय लेकर साधारण से कागज पर कोई यंत्र बनाकर उसका ताबीज किसी भी व्यक्ति को दे देते थे तो उसका कठिन से कठिन कार्य अप्रत्याशित रूप से हो जाता था। उनके ताबीज से असाध्य रोग भी दूर हो जाते थे। उनकी ताबीज से निःसन्तान को सन्तान हो जाता था। दरिद्रता भी दूर हो जाती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी ऐसी समस्या नहीं थी–जिसका हल नहीं था भवाल महाशय के पास। वे ताबीज देते, पानी फूंक कर देते, जड़ी बूटी भी देते। क्या नहीं देते थे वह और क्या नहीं करते थे महाशय। कोई यह नहीं जानता था कि उनके चमत्कार और उनकी सिद्धि के पीछे तमोगुणी राज्य के किसी प्राणी की शक्ति काम करती है।

जब मैंने सिद्ध का बतलाया हुआ प्रयोग किया

एक साधारण मानव के रूप में देखा था मैंने सिद्ध को। उसका वास्तविक स्वरूप क्या है, यह जानने के लिए मेरी प्रबल इच्छा थी। तांत्रिक क्रिया ज्ञात ही हो चुकी थी मुझे। बस, समय और अवसर की प्रतीक्षा थी। वाराणसी के समीप नारायणपुर का श्मशान योग्य और अनुकूल प्रतीत हुआ मुझे। श्मशान के चौधरी मेरे परिचित थे। श्मशान से थोड़ी ही दूर पर गंगा के ऊपर उनका कच्चा–पक्का मकान था। सपरिवार रहते थे डोम चौधरी। मैंने उन्हें सारी बातें समझा दी थी। सहयोग देने के लिए तैयार हो गये वह। दीपावली के दो–तीन दिन शेष रह गये। आवश्यक सामग्री एकत्र कर ली थी और कौड़ी की माला को भी बनवा लिया था मैंने। दीपावली के दिन सांझ के

समय ही पहुँच गया था मैं। डोम चौधरी ने मेरी व्यवस्था श्मशान में कर दी थी। बोले बगल वाले गांव से तीन लाशें आने वाली हैं। यह सुनकर प्रसन्न हो उठा मैं।

सांझ की स्याही अमावस की काली अंधेरी रात में परिवर्तित हो चुकी थी। निस्तब्ध वातावरण, चारो ओर सांय–सांय हो रहा था। श्मशान के पीपल के नीचे आवश्यक व्यवस्था कर आसन जमाकर बैठ गया मैं। गंगा के लहरों का कल–कल निनाद साफ सुनाई दे रहा था उस घोर निशा में। कुत्तों के भौंकने की आवाज श्मशान नीरवता को भंग कर देती थी कभी–कभी। एक के बाद एक करके शव आ गये श्मशान में। और तभी सियारों के झुण्ड विलाप करने लगे समवेत स्वर में। श्मशान का रहस्यमय वातावरण और बोझिल हो उठा एक बारगी। सियारों को विलाप करते देखकर करुण क्रन्दन करने लगे कुत्तों के झुण्ड भी। भय से रोमाञ्चित हो उठा मेरा सारा शरीर लेकिन फिर भी दत्त चित्त होकर बिना मंत्र के ही कौड़ी की माला घुमाने लगा उंगलियों पर मैं। तीनों चितायें धूं–धूं कर जलने लगी थी अब। उनकी लाल पीली लपटें लहरा रही थी हवा में। श्मशान के वातावरण में अब एक अबूझ सी खिन्नता भरी उदासी बिखर गयी थी। तन कर बैठा हुआ था मैं आसन पर। अपने स्थान पर माला घूम रही थी। अधखुली आँखों से सामने जलती हुई चिताओं की ओर एकाग्रचित्त से देख रहा था मैं और कानो में कहीं दूर से एक अपरिचित सी आवाज सुनायी दी तभी। बिना मंत्र के माला घुमा रहा है... मंत्र तो पहले प्राप्त कर। कौन था? किसकी आवाज थी वह? चौककर चारों ओर देखने लगा मैं अंधेरे में लेकिन कोई दिखलायी नहीं दिया मुझे। हाँ थोड़ा भय अवश्य लगा वह अपरिचित आवाज सुनकर। निश्चय ही सियारों का सामूहिक प्रलाप और साथ ही कुत्तों का करुण क्रन्दन मिलकर एक विचित्र पैशाचिक वातावरण की सृष्टि कर रहे थे उस सुनसान

निस्पन्द श्मशान में। और तभी उस महानिशा बेला में एक और शव आ गया वहाँ राम... राम... सत्य ... है। और उसी के साथ फिर वही आवाज सुनाई दी – बिना ... मंत्र ... के, इस बार कुछ अधिक भयभीत हो गया मैं। किसी प्रकार संभाला अपने आपको। आने वाले शव की चिता में आग लगा दी गयी थी और वह प्रज्ज्वलित हो रहा था धीरे–धीरे। शव के साथ आने वाले लोग अपना कर्तव्य पूरा कर चले गये थे अब। नीरवता पुनः छा गयी श्मशानी वातावरण में।

और तभी एक विचित्र और अविश्वसनीय दृश्य दिखलायी दिया मुझे। मैंने देखा जलती हुई चिता की लाल–पीली लपटों के पीछे एक स्याह आकृति हिल डुल रही है अपने स्थान पर, कभी छोटी तो कभी बड़ी हो जाती थी वह रहस्यमय आकृति। धीरे–धीरे वह आकृति एक सोलह सत्रह वर्ष की युवती के रूप में हो गयी परिवर्तित। सर्वांग नग्न थी वह। उसके शरीर का रंग कोयले की तरह काला था। लपटों के पीछे से स्पष्ट दिखलायी दे रहे थे उस नवयौवना के अंग प्रत्यंग। बिखरे हुए सिर के बाल कमर के नीचे तक झूल रहे थे। उसकी आँखे बाघिन की तरह पीली और चमकदार थी। चेहरा भयानक अवश्य था लेकिन उसे देखने से डर नहीं लगता था।

अभी मैं उसी अज्ञात नवयौवना की ओर देख ही रहा था कि अचानक जलती हुई चिता के बीच से होती हुई मेरे सामने खड़ी हो गयी वह। और मेरी ओर घूरती हुई बोली—मैं श्मशान भैरवी हूँ तुझे यहाँ बैठा देख चली आयी, रहा न गया मुझसे।

भय से पाषाणवत् हो गया मैं। मुँह बाये सुनने लगा मैं उस श्मशान भैरवी की बात। बिना मंत्र के माला घुमाने से क्या लाभ? पहले मंत्र तो प्राप्त कर...।

यह सुनते ही एक बारगी चौक पड़ा मैं। स्वर जाना पहचाना सा लगा मुझे। क्या इसी रहस्यमयी युवती की ही आवाज थी वह।

हाँ! इसी की आवाज थी। इसी का स्वर सुनायी दिया था कुछ समय पहले–बिना मंत्र के... माला... घुमाने से क्या लाभ ...।

किसी प्रकार अपने मन को और अपने चित्त को शान्त किया मैंने। और हकलाते हुए किसी प्रकार पूछा–कौन देगा मंत्र? किससे मांगू मैं...।

कोई तेरा इष्ट तो होगा ही–खी खी कर हंसती हुई बोली श्मशान भैरवी–बिना इष्ट के कौन आयेगा भला श्मशान में...। चिता की लपटों के झिलमिलाते प्रकाश में दप् दप् कर रहा था श्मशान भैरवी का काला स्याह चेहरा।

बोलना चाहा, लेकिन बोला न गया कुछ। कुछ क्षण बाद किसी प्रकार हकलाते हुए अटक–अटक कर बोला किसी प्रकार–'काली', काली है इष्ट देवी मेरी...। बस, बस, हो गया। उसी काली का ध्यान कर और कर उसी के मंत्र का जप इतना बोलकर गायब हो गयी श्मशान भैरवी चिताओं से उठने वाले धुओं के धुन्ध में।

किसी प्रकार मन प्राण और शरीर को नियन्त्रित किया मैंने और जपने लगा काली का ध्यान कर उनका बीजाक्षर मंत्र। लेकिन यह क्या? मंत्र जपते–जपते उसके स्थान पर एक दूसरा अटपटा सा मंत्र उभरने लगा नाभि प्रदेश में।

जब सिद्ध सामने प्रकट हुआ : वह अटपटा और निरर्थक सा प्रतीत होने वाला मंत्र इतना प्रभावशाली था कि काली का बीजाक्षर मंत्र भूल गया मैं एक बारगी और उसके स्थान पर जपने लगा उसी मंत्र को। यह आन्तरिक अनुभव बड़ा आश्चर्यजनक था मेरे लिए।

रात का तीसरा प्रहर था शायद। श्मशान की सभी चिताएं जलकर राख में बदल चुकी थी अब तक। निस्तब्धता और गहरी हो गयी थी। कभी–कदा श्मशान के मरियल कुत्तों के कराहने और रोने की आवाज भंग कर देती थी उस निस्तब्धता को। आँखे बन्द किये कांपते हाथो

से जप करता जा रहा था मैं। कितनी बार माला घूमी और कितना किया मैंने जप? अन्दाज नहीं लगा कुछ। एकाएक न जाने कैसे बन्द आँखे अपने आप खुल गयी। सामने श्मशान में हवा में झूलती हुई एक घूम्राकृति दिखलायी दी मुझे। धीरे–धीरे वह घूम्राकृति जमुना के रूप में परिवर्तित हो गयी। भय और आश्चर्य के मिले–जुले भाव से भर गया मन। रोमाञ्च भी हो आया मुझे। धीरे–धीरे चल कर जमुना मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया।

सपाट भाव हीन चेहरा, बुझी–बुझी सी बेजान आँखें, और चेतना हीन सी स्थिर काया। उसे देखकर ऐसा लगा, मानो किसी बर्फ से ढकी गुफा से बाहर निकला हो वह अभी–अभी।

अपने आप बन्द हो गया जप। उंगलियाँ निर्जीव हो गयी जैसे। कुछ सोचने समझने की शक्ति भी जाती रही। किंकर्तव्यविमूढ़ सा बिना पलक झपकाये टुकुर–टुकुर देख रहा था मैं जमुना के सपाट भावहीन चेहरे की ओर। उसकी सफेद पड़ गयी आँखें स्थिर थी उस समय। हिल डुल नहीं रही थी। और तभी उसकी घुटन भरी आवाज सुनायी दी मुझे। ऐसा लगा मानो कोई कसकर उसका गला दबा रहा हो। गहन अन्धकार में डूबे हुए उस नीरव और निस्तब्ध श्मशान में उस रहस्यमय प्राणी की उपस्थिति विचित्र और रोमांचकारी लग रही थी मुझे। क्या कहना चाहता है जमुना के रूप में वह मानवेतर प्राणी?

भर्राये स्वर में और लड़खड़ाते शब्दों में उस मंत्र बिद्ध सिद्ध ने जो कुछ कहा, उसे सुनकर स्तब्ध और जड़वत हो गया मैं एक बारगी। वह एक अविश्वसनीय सत्य था और जिसका संबंध था अपने आपमें एक विकट तंत्र सिद्धि से।

मेरे लिए सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि जमुना के रूप में उस सिद्ध ने मुझे श्मशान में करने के लिए जो तांत्रिक क्रियाएं बतलायी थी, वह वास्तव में उसकी स्वयं की मुक्ति के लिए थी। जिससे

मैं पूर्णतया अनभिज्ञ था उस समय।

बन्धन मुक्त रहना आत्मा का स्वभाव है

इस रहस्यमय तांत्रिक प्रसंग में यह जान समझ लेना आवश्यक है कि किसी भी लोक–लोकान्तर की किसी भी श्रेणी की किसी भी गुण धर्म की और किसी भी वृत्ति अथवा स्वभाव की आत्मा किसी प्रकार के बन्धन में बंधना स्वीकार नहीं करती। उनके लिए सबसे बड़ा और सबसे अधिक त्रासदायक बन्धन होता है शरीर का और मंत्र का। एक और बात यहाँ बतला देना आवश्यक है और वह यह कि मंत्र शक्ति से बंधी हुई किसी भी प्रकार की कोई भी आत्मा साधक के सामने प्रायः स्थूल शरीर में ही प्रकट होती है और वह शरीर उनका स्वयं का निर्मित होता है कुछ समय के लिए। साधक को भ्रमित करने के लिए करती हैं यह इसमें सन्देह नहीं। साधक भ्रमित हो भी जाते हैं, इसमें भी सन्देह नहीं। लेकिन जो साधक इस रहस्य से परिचित होते हैं। वह तत्काल उस आत्मा द्वारा निर्मित स्थूल शरीर को विशेष तांत्रिक क्रिया शक्ति से बांध देते है और जिसका परिणाम यह होता है कि बेचारी मंत्राकर्षित वह आत्मा अपने ही द्वारा निर्मित शरीर में बंधकर रहने के लिए बाध्य हो जाती है, लेकिन यह जान लेना चाहिए कि तभी से वह आत्मा अपनी मुक्ति का रास्ता खोजने लग जाती है। उनका बराबर यही प्रयास रहता है कि किसी भी प्रकार बन्धन से मुक्त होकर स्वतंत्रता प्राप्त हो उसे। उसके प्रयास के फलस्वरूप साधक बार–बार भयंकर रोगों से ग्रस्त होने लगता है। शरीर निर्बल और मानसिक शक्ति क्षीण होने लगती है धीरे–धीरे। मन चंचल और अस्थिर हो उठता है। अपने क्रिया कलाप पर नियन्त्रण नहीं रह जाता है उसका।

ऐसी विषम स्थिति में साधक अपनी सिद्धि को अपने अधिकार में रख पाने में असमर्थ हो जाता है अन्त में, और आत्मा मुक्त हो

जाती है उसके चंगुल से सदैव के लिए। यदि ऐसा भी सम्भव न हो सका तो वह ऐसे वातावरण का निर्माण करती है—जिसके कारण किसी भयंकर दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है साधक की लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्मा तभी साधक को इस प्रकार मारती है, जब उनके द्वारा निर्मित स्थूल शरीर भी बंधा हुआ होता है। क्योंकि वह उस शरीर से तभी मुक्त हो सकती है जबकि साधक भी अपने शरीर से मुक्त हो।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है उस सिद्ध की आत्मा स्वयं बंधी हुई थी और जिस मानव शरीर में अपने आपको प्रकट किया था वह भी बंधा हुआ था।

अब पूरब का आकाश धीरे—धीरे सफेद होने लगा था। लेकिन सुदूर तक फैले हुए धान के खेतों की ओर से सियारों के विलाप के स्वर और कुत्तों के रोने की आवाज कभी—कदा अभी भी सुनसान श्मशानी वातावरण में सुनायी पड़ जाती थी।

अभी भी चिता की राख पर खड़ा था जमुना के रूप में वह सिद्ध। मैंने एक बार उसके स्याह चेहरे की ओर देखा और पूछा—अब आप तो मुक्त हैं।

हाँ! मैं तो मुक्त हूँ, लेकिन इस शरीर से मुक्त नहीं हूँ—भर्राये स्वर में उत्तर दिया उस सिद्ध ने।

आगे कुछ पूछने की मेरी इच्छा हुई लेकिन क्या कुछ पूछ सका, और कुछ बोल सका? नहीं, उसके पहले ही अब तक मेरे सामने खड़ा सिद्ध निर्मित मानव शरीर आग की चिनगारियों के रूप में परिवर्तित होकर बिखर गया चारो ओर श्मशान में।

कई दिनों के बाद एक रात सपने में मुझे दिखलायी दिया वह सिद्ध। विनम्र स्वर में बोला—पण्डित जी! आपका सहयोग मैं न लिया होता तो इस प्रकार मुक्ति न मिलती कालीचरण भवाल के चंगुल से।

आभारी और कृतज्ञ हूँ मैं आपका। आपकी आत्मा निर्मल है, मन भी शुद्ध और पवित्र है। आप उदार मन और दयालु भी है, इसलिए प्रसन्न हूँ आप पर मैं। आपके अस्तित्व से सदैव सम्पर्क बनाएं रखूँगा और आप जब चाहे तब मेरा सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तव में वह सपना सत्य सिद्ध हुआ मेरे लिए। दीर्घ अन्तराल के बाद आज भी उस सिद्ध के अस्तित्व की उपस्थिति का आभास अपने निकट प्रतीत होता है कभी–कभी मुझे।

घोर तमोगुणी आत्माएँ

अभौतिक सत्ता के तीसरे भाग के दूसरे खण्ड में घोर तमोगुणी आत्माएँ निवास करती हैं। वे पाँच वर्गो में विभाजित हैं—पहले वर्ग की आत्माओं को हाकिनी, दूसरे वर्ग की आत्मा को डाकिनी, तीसरे वर्ग की आत्मा को शाकिनी कहते हैं ये तीनों स्त्री तत्व प्रधान तमोगुणी आत्माएँ हैं। इसी प्रकार चौथे वर्ग की आत्मा को पिशाच और पाँचवें वर्ग की आत्मा को बेताल कहते हैं। ये पुरुष तत्व प्रधान आत्माएँ है। सभी वर्गो की आत्माओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। तमोगुणी प्रकृति की विकृति हैं ये आत्माएँ और स्वयंम्भू भी है। काल के प्रभाव से मुक्त है। इनका रूप रंग और शरीर की रचना अपने आपमें अति लोमहर्षक और भयंकर होता है। और उनमें परिवर्तन भी कभी नहीं होता। उनकी तमोगुणी वृत्ति और उनका तमोगुणी स्वभाव एवं गुण, धर्म आदि सदैव अनिष्टकारी ही होता है। तमोगुणी प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी तामसिक शक्ति द्वारा अपने–अपने स्वभाव वृत्ति के अनुसार ये भौतिक जगत में नाना प्रकार का उत्पात करते हैं और करते हैं उपद्रव। जिसके परिणाम स्वरूप संसार में भयंकर जन, धन की होती है हानि।

प्रस्तुत पुस्तक के इस प्रसंग को लिखते समय मेरी भेंट एक सज्जन से हुई। उनका नाम हैं सत्येन्द्र रावल। रावल जी तंत्र के तमोगुणी साधना मार्ग के अन्तर्गत आने वाले कापालिक सम्प्रदाय और

अघोर सम्प्रदाय पर शोध और अन्वेषण कार्य कर रहे हैं स्वतंत्र रूप से। उनकी अपनी दृष्टि हैं उनको तमोगुणी अपदेवताओं के कुछ विचित्र और आश्चर्यजनक अनुभव भी हुए हैं। मेरे इन विचारों से पूर्ण सहमत हैं कि भारी वर्षा, भयंकर अग्निकाण्ड, झंझावात, तूफान, चक्रवात और भयंकर दुर्घटनाओं के अतिरिक्त किसी कारण व्यापक नर संहार आदि की पृष्ठ भूमि में भी इस प्रकार के अपदेवताओं की तामसिक शक्ति ही काम करती है। नाश करना उनका स्वभाव है और है उनकी वृत्ति।

मानव मस्तिष्क से अपदेवताओं का संबंध

जिस देश में जिस समाज में और जिस परिवार में विविध प्रकार के मांसो का भक्षण, मदिरापान, वेश्यावृत्ति, हत्या, जघन्य अपराध आदि तामसिक कार्य सर्वाधिक होते हैं। उस देश समाज और परिवार पर भयंकर प्रभाव पड़ता है तमोगुणी अपदेवताओं का। जिसका परिणाम भी अति भयंकर होता है इसमें सन्देह नहीं। अन्वेषण से इस बात का भी पता चला है कि अब तक विश्व में जितने भयानक युद्ध हुए हैं उनके मूल में बेतालों का ही सर्वाधिक सहयोग रहा है। वास्तव में बेताल युद्ध प्रिय और नर मांस भक्षक होते है। वे सदैव यही चाहते है कि भयंकर रूप से व्यापक युद्ध हो, और अत्यधिक नर संहार हो जिससे उन्हें नर रक्त पान और नर मांस भक्षण का अवसर प्राप्त हो।

इस प्रकार के अपदेवता जिस किसी व्यक्ति को अपने अनुकूल समझते हैं, उससे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करते हैं और प्रयास का माध्यम होता है उस व्यक्ति का मस्तिष्क। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मस्तिष्क की कुछ ऐसी तन्तुएँ है—जिनका संबंध अभौतिक सत्ता से है। अपदेवताएँ उन्हीं तन्तुओं के माध्यम से मनुष्य के मस्तिष्क पर अपनी तामसिक शक्ति का प्रभाव डाल कर उससे अपने मनोनुकूल कार्य लेते है। ऐसे प्रभावित व्यक्तियों द्वारा भारी

अनहित होता है। परिवार में विभिन्न प्रकार के कष्ट, दुख, क्लेश आदि उत्पन्न होते हैं। परिवार के लोग रोग ग्रस्त रहते है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, झगड़ा, मारपीट, हत्या आदि का होना तो निश्चित ही है। यदि समाज का कोई मुख्य व्यक्ति प्रभावित है तो समाज का भारी अकल्याण होता है। अनहित होता है और नाना प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। वह व्यक्ति तिरस्कृत तो होता ही है, समाज भी अवनति के कगार पर पहुँच जाता है। इसी प्रकार किसी उन्नत और प्रगतिशील देश को नष्ट करना होता है तो इसके लिए बेतालों की शक्ति क्रियाशील होती है। बेतालों की तामसिक शक्ति अत्यन्त भयंकर और अति विनाश कारिणी होती हैं। देश के प्रमुख राजनेताओं और देश के सर्वोच्च पद पर आसीन पुरुषों पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं जब तक देश विनाश के कगार पर नहीं पहुँच जाता है। राज द्रोह, शत्रु देशों से भय, आन्तरिक कलह, असाध्य रोगों का विस्तार उच्चपदासीन व्यक्तियों की मृत्यु राज पुरुषों अथवा राजनेताओं पर गम्भीर आरोप व उनकी हत्या प्रकृति प्रकोप द्वारा धन जन की हानि आदि की पृष्ठभूमि में बेताल शक्ति ही समझना चाहिए।

यदि अपदेवताओं की दृष्टि किसी व्यक्ति पर पड़ गयी तो समझिए उसका और उसके परिवार का सत्यानाश। ऐसा व्यक्ति यह समझ न सकेगा कि उसके शरीर के भीतर कोई तामसिक आत्मा की तामसिक शक्ति काम कर रही है। उस शक्ति से प्रेरित होकर वह व्यक्ति एक ऐसे मार्ग पर चलने लगता है और चलकर ऐसे–ऐसे असद् कर्मो तथा कुकृत्यों को अपना लेता है जिनके फलस्वरूप वह अपना जीवन स्वयं नर्क तो बना ही लेता है, इसके अतिरिक्त अपने परिवार के भविष्य में भी विष घोल देता है।

वाराणसी में एक अत्यन्त सुखी और समृद्ध परिवार रहता था। जिससे मैं परिचित था। परिवार में एक युवक रजनीकान्त था। घर

परिवार और व्यापार का भी सारा भार रजनीकान्त पर ही था। उसका सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व था। वाक् पटु, व्यावहारिक, सरल चित्त उदार और सज्जन व्यक्ति था वह। व्यापार के सिलसिले में केवल पच्चीस वर्ष की अवस्था में दो बार अमेरिका जा चुका था वह। इससे ही समझा जा सकता है कि कितना व्यापार कुशल था वह युवक। यथा समय उसका विवाह हुआ दो सन्ताने भी हुई। पत्नी धर्म परायणा सिद्ध हुई। जप, पूजा, उपासना, दान–दक्षिणा, व्रत, उपवास आदि नित्य का कार्य था उसका। एक बार रजनीकान्त को किसी विशेष कार्य से लन्दन जाना पड़ा। उसे किसी भी वस्तु की आदत नहीं थी। पान तक नहीं खाता था वह। सिगरेट शराब आदि नशीली वस्तुओं से वह उतना ही दूर था जितना धरती से आकाश।

रजनीकान्त के एक मित्र ने लन्दन के एक बहुत बड़े होटल में पार्टी दी। और उस पार्टी में भेंट हुई एक युवती से रजनीकान्त की। उस युवती का नाम था इला। न जाने कैसे इला के आकर्षण में फंस गया रजनीकान्त। जिसका परिणाम यह हुआ कि इला के बार–बार आग्रह और अनुरोध करने पर शराब का गिलास अपने होठों से लगाना पड़ा रजनीकान्त को। फिर क्या शराब की दो तीन घूंट हलक के नीचे उतरते ही रंगीन सपने दिखलायी देने लगे रजनीकान्त को। फिर जो होना था वह हुआ उस रात। शराब के बाद जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है, उसकी भी पूर्ति हो गयी। इला के संगमरमरी बाहों में बंधा रहा रजनीकान्त पूरी रात। कहने की आवश्यकता नहीं, उसी रात से शुरू हो गयी विनाश लीला। पाँच–छः साल के अन्दर सुरा सुन्दरी की आग में भस्म हो गया व्यापार शेष रह गया उसका मात्र ढांचा। सर्वाधिक दयनीय स्थिति थी रजनीकान्त की। चमचमाती विदेशी कार में घूमने वाला रजनीकान्त रिक्शा पर जाते हुए मिला एक दिन मुझे। उसे देखकर दंग रह गया मैं। जर–जर शरीर धंसे

हुए गाल, निस्तेज आँखे, मुझे देखते ही दोनों हाथों से मुँह छिपाकर रोने लगा रजनी कान्त। घर ले आया उसे। उसकी अवनति की पूरी कथा सुनी मैंने। और सुनकर समझते देर न लगी मुझे। किसी भयंकर, तमोगुणी अपदेवता की विनाशकारी दृष्टि पड़ गयी थी रजनीकान्त पर। मेरे एक तांत्रिक मित्र थे, नाम था तारानाथ भट्टाचार्य। काशी के हरिश्चन्द्र घाट के ऊपर एक संकरी गली में उनका निवास स्थान था। मंगला काली के उपासक थे महाशय। रजनीकान्त को ले कर गया मैं उनके यहाँ। सांझ का समय था। अपनी इष्ट देवी की साधना में लीन थे उस समय तारानाथ भट्टाचार्य। एक घंटे बाद आसन से उठे वह। संक्षिप्त में सारी कथा सुना डाली मैंने रजनीकान्त की। सब सुनने के बाद रजनीकान्त की ओर देखा स्थिर दृष्टि से उन्होंने। फिर मेरी ओर देखा सिर घुमाकर। उस समय उनके चेहरे पर जो भाव उभर आया था वह अति रहस्यमय था इसमें सन्देह नहीं और इसमें भी सन्देह नहीं कि सारा रहस्य अनावृत्त हो चुका था उस महान तंत्र साधक के सामने। बेताल के प्रभाव में था रजनीकान्त। उसी की तामसिक शक्ति ने रजनीकान्त को, रजनीकान्त के जीवन को और रजनीकान्त के पूरे परिवार को नर्क बना दिया था और चौपट कर दिया था उसके व्यापार को भी एक बारगी।

क्या वह बेताल था?

प्राचीन तंत्र ग्रन्थों में बहुत कुछ पढ़ा था बेताल के संबंध में इसके अतिरिक्त उसकी शक्ति और उसके प्रभाव के विषय में भी बहुत कुछ सुना था तंत्र साधकों से। लेकिन कभी जीवन में बेताल का रूप रंग भी देखने को मिलेगा, इसकी सपने में भी कल्पना नहीं की थी मैंने।

तारानाथ भट्टाचार्य भयंकर तंत्र साधक थे इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक अमावस्या की महानिशा बेला में विशेष रूप से साधना करते थे तंत्र की। प्रातः काल से ही मदिरा सेवन करने लग जाते थे महाशय

और वह मदिरा यज्ञ समाप्त होता था दूसरे दिन प्रातःकाल।

संयोग ही कहा जायेगा इसे कि उस दिन अमावास्या थी। सबेरे से ही मदिरापान शुरू हो गया था उस महासाधक का।

मेरी ओर देखते हुए भर्राये स्वर में बोले तारानाथ भट्टाचार्य—बेताल का आवाहन करना होगा।

बेताल का आवाहन? चकित भाव से बोला मैं। हाँ! बिना आवाहन किये उससे मुक्ति नहीं मिलेगी रजनीकान्त को। पूर्ववत् भर्राये स्वर में उत्तर दिया उस तंत्र साधक ने।

और फिर शुरू हुआ अपने आपमें भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान।

किसी भी मानवेतर आत्मा के आवाहन के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि में विशेष रूप से जिन वस्तुओं का हवन किया जाता है वे है दसांग, गुगुल, अगर, तगर, सुगन्धबाला, सुगन्ध कोकिला, सुगन्ध मैथिली और सर्वोषधि।

अपने स्थान पर बैठा था पाषाणवत् रजनीकान्त। उसके सामने हवनकुण्ड था और उस हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित थी। हवन कुण्ड के बगल में पद्मासन की मुद्रा में बैठे हुए थे तारानाथ भट्टाचार्य। उनके चेहरे पर न जाने कैसा पैशाचिक भाव उभर आया था उस समय। बार--बार मदिरापान कर रहे थे वह। मदिरा का प्रत्येक घूंट अभिमंत्रित था। एकाएक उनका चेहरा लाल हो उठा और गूलर की तरह लाल हो उठी उनकी आँखे भी। अरे, हाँ! यह तो कहना भूल ही गया था मै। हवन कुण्ड के बगल में एक तीन फुट लम्बा त्रिशूल खड़ा था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि जमीन में गड़ा नहीं था वह त्रिशूल। बस, खड़ा था मात्र केवल जमीन का आधार लेकर। और उसी त्रिशूल के पास रखा था एक चमचमाता हुआ छूरा भी। उस छूरे से मेरी नजर फिसल कर जिस वस्तु पर पड़ी वह था एक काला मुर्गा। उसके दोनों पैर बंधे हुए थे और वह मौन साधे बैठा ऊंघ रहा

था उस समय। हे भगवान! क्या बलि होगी उस असहाय पक्षी की? सिहर उठा मैं एक बारगी। एकाएक कुछ कौंध सा गया मेरे मस्तिष्क में, कब और कैसे आयी ये सारी वस्तुएँ? जब मैं आया था तो वहाँ कुछ भी नहीं था, न त्रिशूल, न छूरा, न मुर्गा और न तो हवनकुण्ड ही। पूरा कमरा खाली था। यदि कुछ था भी तो केवल एक तख्त। जिस पर सोते, बैठते थे तारानाथ भट्टाचार्य महाशय। कैसे और कब हो गयी उन सारी तामसिक वस्तुओं की सृष्टि? समझ में नहीं आ रहा था। कमरे के एक कोने में दुबका बैठा देख रहा था मैं आवाहन क्रियाओं को। अब हवन शुरू हो गया था। हवन सामग्री की आहुति दी जाने लगी हवन कुण्ड में। लाल–पीली लपटें उठने लगी। सुगन्धित धुंआ फैलने लगा कमरे में चारो ओर और उसी के साथ धीरे–धीरे रहस्यमय होने लगा वातावरण भी। लगा जैसे कोई अदृश्य शक्ति क्रियाशील हो उठी हो उस रहस्यमय वातावरण में। अब पूरे कमरे में फैला हुआ धुँआ सिमटने लगा रजनीकान्त के चारो ओर और कुछ ही क्षणों में धुँए के गुबार में डूब गया रजनीकान्त का पूरा अस्तित्व। उसी समय फड़फड़ाने लगा मुर्गा अपना पंख। और उछलने कूदने लगा अपने स्थान पर वह। किसी अज्ञात भय और आतंक के मिले जुले भाव से भर गया मेरा मन। कुछ विचित्र सी अनुभूति होने लगी अपने आपमें मुझे। एकाएक एक मर्मान्तक चीख गूंज उठी उस रहस्यमय वातावरण में। सिर घुमाकर देखा–बलि दे दी गयी थी मुर्गे की। खून से लथपथ उसका शरीर तड़प रहा था जमीन पर। और भयानक हो उठा था, कमरे का तांत्रिक वातावरण। सहमा सा चुपचाप बैठा देख रहा था मैं अपनी जगह पर सब कुछ। एक बार मन में आया कि भाग चलूं इस कमरे से बाहर, लेकिन प्रयास करने पर भी उठा न गया मुझसे। सच बात तो यह थी कि तारानाथ भट्टाचार्य का ऐसा भयानक तांत्रिक रूप पहले कभी मैंने नहीं देखा था। शायद

इसीलिए वहाँ से भागने की इच्छा हो रही थी। अब उच्च स्वर में मंत्रोच्चारण करने लगे थे तारानाथ भट्टाचार्य। मैंने देखा—मंत्रोच्चारण की ध्वनि के प्रभाव से रजनीकान्त के चारों ओर मंडराने वाला धुंआ धीरे—धीरे एक विशेष प्रकार का आकार लेने लगा था अब। बड़ा ही विचित्र था आकार वह। निश्चय ही वह आकार बडा ही वीभत्स और डरावना था। बाद में वह आकार एक रूप में परिवर्तित होने लगा था। वह ऐसा रूप था जिसको मैं शब्दों में बांध सकने में असमर्थ हूँ। कल्पना करिये, गैडें बनैले सूअर और बनैले भैसे के चेहरों को आपस में मिलाकर एक चेहरा बनाया जाय तो वह चेहरा कैसा होगा? समझिये वैसा ही था चेहरा उसका। उसका सिर हाथी के समान चौड़ा और सामने की ओर उभरा हुआ था। उसकी आँखे नारियल की तरह थी, लगा जैसे ताजे खून से भरी हो वें। क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि का मिला जुला भाव था उस समय उसके वीभत्स चेहरे पर। लगा जैसे कभी भी आक्रमण कर बैठेगा वह। उसे देखकर सनसना उठा मेरा सारा शरीर। रोम—रोम कांपने लगा मेरा जैसे। उधर से हटा ली भय और आतंक के कारण अपनी दृष्टि मैंने। रात गहरा गयी थी, लेकिन इसका ध्यान ही नही रहा जैसे मुझे। सच बात तो यह थी कि मेरा मस्तिष्क काम ही नहीं कर रहा था उस पैशाचिक वातावरण में। इसका एक कारण यह भी था कि तारानाथ भट्टाचार्य के अत्यन्त निकट होने के बाद भी उनका ऐसा रूप और उनका ऐसा भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान कभी नहीं देखा था मैंने इसके पहले। और तभी एक भयंकर अट्टहास गूंजा और चिथड़े—चिथड़े हो गया कमरे के रहस्यमय वातावरण में। वह अट्टहास किसका था, समझ न सका मैं। और उसके बाद आश्चर्यजनक ढंग से पूर्ववत् सामान्य हो गया और अब तक बुझा हुआ सौ पावर का बल्ब भक्क से जल उठा अपने आप। प्रकाश से भर उठा पूरा कमरा। देखा—अपने तख्त पर गम्भीर और शान्त भाव से

बैठे हुए थे महा साधक तारानाथ भट्टाचार्य। और तख्त के नीचे जमीन पर बिछी हुई चटाई पर मौन साधे और सिर झुकाये बैठा था रजनीकान्त भी। उसका मुरझाया हुआ क्लान्त चेहरा फूल की तरह अब खिला हुआ था। निश्चय ही उस पर से बेताल की छाया हट चुकी थी और वह उसकी तामसिक शक्ति से हो चुका था मुक्त भी। लेकिन आश्चर्यजनक और रहस्यमय बात तो यह थी कि वहाँ न कोई हवनकुण्ड था न अग्नि प्रज्ज्वलित थी, न सुगन्धित धुआं था, न त्रिशूल था, न छूरा था और न तो था वहाँ बलि का कटा हुआ मुर्गा ही। कहने का तात्पर्य यह कि तांत्रिक अनुष्ठान से संबंधित किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं था वहाँ उसे कमरे में। ऐसा लगता था—मानो वहाँ कोई अघटित घटा ही न हो। सचमुच बड़ी ही विचित्र और अविश्वसनीय बात थी अपने आपमें। चारो ओर सिर घुमाकर देखा मैंने आश्चर्यचकित भाव से।

हे भगवान् क्या कोई सपना देख रहा था मैं अभी तक? क्या कोई इन्द्रजाल की माया थी? या कोई थी भयानक पैशाचिक लीला? नहीं, नहीं ऐसा कुछ भी नही था। वास्तव में वह थी एक महातंत्र साधक द्वारा की गयी अद्भुत और अविश्वसनीय चतुर्थ आयामी सृष्टि और वह सृष्टि थी अपने आपमें पूर्ण सत्य इसमें भी सन्देह नहीं। टन् टन् कर कहीं बारह का घंटा बजा। रात गहरा गयी थी और उसी के साथ निस्तब्धता भी। भारी कदमों से चलकर किसी प्रकार घर आया, लेकिन पूरी रात नींद नहीं आयी। बार—बार सारा दृश्य उभर आता था मानस पटल पर।

चतुर्थ आयामी सृष्टि

अब मेरे मन में जो प्रश्न था वह था क्या ऐसा सब कुछ सम्भव है? और जब मैं दूसरे दिन इस प्रश्न को तारानाथ भट्टाचार्य के सम्मुख रखा तो उन्होंने उत्तर दिया—हाँ! यह पूर्णतया सम्भव है। उत्तर देते

समय उनका स्वर गम्भीर था। योग–तंत्र का यह परम विज्ञान है। यह विज्ञान उसी साधक के लिए सम्भव है जिसने योग मार्ग पर चलकर तंत्र का अनुशरण किया है। लेकिन यह सभी के लिए सम्भव नहीं। यह बाघ और बकरी को एक घाट पर पानी पिलाने के समान है। योग की उच्चतम अवस्था प्राप्त होने पर विशुद्ध तंत्र का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और वह मार्ग साधक को ले जाता है वैश्वानर जगत में (वैश्वानर जगत के संबंध में लेखक के अन्य पुस्तकों में विस्तार से लिखा गया है) वैश्वानर जगत का ही दूसरा नाम है भाव राज्य जिसे भाव जगत भी कहते है। इसी प्रकार भौतिक जगत को कहते है विचार जगत। भाव जगत में भाव की प्रधानता है। भाव ही सब कुछ है वहाँ। और उस भाव के मूल में जो शक्ति है उसे तंत्र की भाषा में महाशक्ति अथवा परमाशक्ति कहते हैं। इसी प्रकार भौतिक जगत में विचारों की ही प्रधानता है। विचार ही है सब कुछ। विभिन्न प्रकार के विचारों का ही माया जाल फैला हुआ है इस भौतिक संसार में। विचार की भी अपनी शक्ति है। जिसे तंत्र की भाषा में कहते है परा शक्ति। तांत्रिक साधना भूमि में उसी परा शक्ति कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विराजमान है। भाव जगत चतुर्थ आयामी है और जबकि विचार जगत हैं त्रिआयामी। भाव जगत में काल की गति अतिमन्द है। उसका प्रभाव भी अति मन्द गति से पड़ता है। जबकि विचार जगत में विचार की गति अत्यन्त तीव्र है और उसका प्रभाव भी तीव्र गति से पड़ता है। स्मरण रखना चाहिए कि भाव के गर्भ से ही विचार का जन्म होता है। इसलिए सर्वत्र भाव को ही प्रधानता ही गयी है। आध्यात्मिक भूमि में तो भाव ही सब कुछ है। भाव ही आध्यात्म का मूल्यांकन करता है। विचार जितना सूक्ष्म है उससे सौ गुना अधिक सूक्ष्म, भाव को समझना चाहिए।

यदि हम यह कहे कि विचार का संबंध योग से है और तंत्र

का संबंध है भाव से, तो अतिशयोक्ति न होगी। वास्तव में विचार की साधना योग की साधना है। चित्त की वृत्तियों के निरोध से विचार पर अधिकार प्राप्त होता है। वह अधिकार जितना गहन और स्थायी होगा उतनी ही विचार शून्य की अवस्था उपलब्ध होगी। इसी अवस्था का नाम है समाधि। और समाधि ही एकमात्र द्वार है भाव राज्य में प्रवेश करने का।

विचार राज्य में प्राण शक्ति के रूप में पराशक्ति कार्य करती है साधना भूमि में और जबकि भाव राज्य में मन शक्ति के रूप में परमाशक्ति कार्य करती है साधना भूमि में। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि मुख्य रूप से मन की तीन अवस्थाएँ हैं—चेतन मन की अवस्था अवचेतन मन की अवस्था और अमन की अवस्था। चेतन मन का संबंध जागृत अवस्था, भौतिक जगत, अथवा विचार जगत से समझना चाहिए। अवचेतन मन का संबंध समझना चाहिए सुषुप्तावस्था अभौतिक जगत अथवा भाव जगत से। तीसरी है अमन की। अमन की स्थिति चेतन मन और अवचेतन मन दोनों से परे है और उसका संबंध है समाधि की परम अवस्था से। लेकिन एक बात अवश्य है और वह यह कि मन अपनी तीनों अवस्थाओं में चैतन्य क्रियाशील रहता है और किसी न किसी प्रकार की सृष्टि करता ही रहता है।

योग के अनुसार पूर्णरुपेण चित्त का निरोध होने पर और साथ ही ध्यान की उच्च स्थिति में मन जिस अवस्था को उपलब्ध होता है—वह है समाधि की अवस्था। जिसे सहज समाधि की संज्ञा दी गयी है। वैसे यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो सहज समाधि एक ऐसी समाधि है जो अन्य समाधियों की उपलब्धियों का कारण बनती है। इसलिए सहज समाधि को योग भूमि में सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। महत्व का एक कारण और भी है वह यह कि भाव राज्य का द्वार भी इसी समाधि के द्वारा खुलता है। और योगी उसी द्वार से

तंत्र के मार्ग में प्रवेश करता है। तंत्र मार्ग में प्रवेश का अर्थ है विचार जाल से मुक्त होकर भाव में जीना, भाव राज्य में विचरण करना और परा मानसिक अवस्था को उपलब्ध होकर ज्ञान विशेष को प्राप्त करना।

विचार राज्य में चेतन मन विचार के अनुरूप स्थूल सृष्टि करता है और इसी प्रकार भाव राज्य में अचेतन मन भाव के अनुरूप करता है सूक्ष्म सृष्टि। लेकिन यह जान लेना आवश्यक है कि विचार जगत में काल की गति तीव्र होने के कारण स्थूल सृष्टि में अधिक से अधिक समय लगता है। और जब कि भाव राज्य में काल की गति अति मन्द होने के कारण सूक्ष्म सृष्टि में एक प्रकार से न के बराबर समय लगता है। उदाहरण के रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है जैसे हम एक मकान बनाना चाहते हैं। सर्वप्रथम मकान बनाने की कल्पना हमारे मन में उत्पन्न होती है, फिर वह कल्पना विचार का रूप धारण करती है। और तब उस विचार के अनुसार हम मकान का निर्माण शुरू करते हैं। और उस निर्माण काल में मकान से संबंधित समय–समय पर न जाने कितने विचार उत्पन्न होते रहते हैं हमारे चेतन मन में। और उसी के अनुसार मकान से संबंधित कल्पना साकार होती रहती है भौतिक सृष्टि के रूप में। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि एक मकान के निर्माण में कितना समय व्यतीत हो सकता है? कितनी मानसिक शक्ति व्यय हो सकती है और कितना अर्थ व्यय हो सकता है? जबकि भाव जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है। न समय का, न व्यय का, न मानसिक और आर्थिक शक्ति का ही व्यय। वहाँ तो केवल भाव उत्पन्न होना चाहिए। भाव उत्पन्न होते ही तत्काल सृष्टि हो जाती है। और वह सृष्टि तभी तक अपना अस्तित्व बनाये रखती है जब तक भाव का अस्तित्व रहता है। भाव जगत में निवास करने वाले साधक अपने भाव के बल पर अपने लिए साधना कुटी, बाग–बगीचा, फल–फूल के वृक्षों की सृष्टि कर उसमें निवास करते

हैं। ऐसे भी साधक हैं जो अपनी साधना के निमित्त तीर्थ स्थानों और देव मन्दिरों का भी अपने भावानुकूल निर्माण कर लेते है। कोई–कोई साधक आनन्द प्राप्ति के लिए महल सरोवर, झील, हरे–भरे पर्वत आदि का भी निर्माण कर लेते है। बहुत से ऐसे भी उच्च कोटि के साधक है जो काशी, मथुरा, हरिद्वार, कैलास मानसरोवर आदि स्थानों का भी निर्माण कर वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हैं।

भाव राज्य के अधिकारी साधकगणों की साधना स्थूल शरीर साध्य साधना की अवधि जब समाप्त हो जाती है तो उस अवस्था में उनका स्थूल शरीर आयु की मर्यादा पालन करने के लिए ही संसार में अपना अस्तित्व बनाए रखता है। साधक के लिए उसका मूल्य अथवा महत्व नही रह जाता। वह तो मात्र काल क्षेत्र के लिए अपने भौतिक शरीर में रहता है। वैसे उसका क़ोई उपयोग नहीं किसी भी दृष्टि से।

साधना के चार चरण

इस प्रसंग में यह जान लेना आवश्यक है कि साधना के चार चरण होते हैं। पहले चरण की साधना स्थूल शरीर से संबंधित है। दूसरे चरण की साधना सूक्ष्म शरीर से है संबंधित। इसी प्रकार तीसरे चरण की साधना मनोमय शरीर तथा चौथे शरीर की साधना आत्म शरीर से संबंधित हैं।

स्थूल शरीर साध्य साधना की अवधि पूर्ण होने पर साधक अपनी साधना के लिए अपने सूक्ष्म शरीर का अवलम्बन लेता है। इस अवस्था में साधक का स्थूल शरीर तो किसी भी प्रकार की साधना उपासना अथवा जप पूजा पाठ आदि करता हुआ दिखलायी नहीं देता लेकिन उसका सूक्ष्म शरीर ये सब कुछ करता रहता है। अपने स्थूल शरीर से किसी भी देवी देवता का दर्शन पूजन और तीर्थ यात्रा आदि कुछ नहीं करता, लेकिन अपने सूक्ष्म शरीर से क्षण मात्र में इच्छानुसार सभी देवी देवता का दर्शन पूजन आदि तो साधक कर ही लेता है, इसके

अतिरिक्त अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा जिस धर्म स्थल और जिस तीर्थ स्थल की यात्रा करना चाहे तत्काल कर सकता है वह। और यही कारण है कि सूक्ष्म शरीर जीवी योगी साधकगण प्रकट रूप में कभी भी साधना उपासना, पूजा पाठ, देव दर्शन करते हुए दिखलायी नहीं देते और न तो भटकते हुए ही दिखलायी देते है तीर्थ स्थानों अथवा आध्यात्मिक स्थलों पर। वे जहाँ रहते हैं वही स्थान उनका तीर्थ स्थल होता है। कभी करते हुए भी कर्म नहीं करते व शरीर को महत्व देते हैं और न तो शरीर से संबंधित किसी आवश्यकता को ही। जगत के लिए वे सापेक्ष हैं लेकिन वे उनके लिए जगत निरपेक्ष हैं। स्थूल शरीर की दृष्टि से अपने आपको शववत् समझते हैं और समझते है संसार को महाश्मशान।

सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर के बीच में भाव शरीर है। भाव शरीर सूक्ष्म शरीर से भी सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है। जब अपने सूक्ष्म शरीर का त्याग कर योगी साधकगण भावशरीर ग्रहण करते हैं तो उनके लिए भाव ही प्रधान होता है। सूक्ष्म जगत में योगी साधकों द्वारा जो सृष्टि होती है उसके मूल में उनकी इच्छा शक्ति होती है और जबकि भाव जगत में सृष्टि के मूल में उनका मात्र केवल भाव होता है।

क्या दोनों प्रकार की सृष्टि में कहीं कोई अन्तर भी है? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तारानाथ भट्टाचार्य ने कहा – सूक्ष्म जगत में जब तक इच्छा शक्ति में प्रबलता है तब तक उसके द्वारा निर्मित सृष्टि का भी अस्तित्व है लगभग ऐसा ही भाव जगत में भाव द्वारा हुई सृष्टि के संबंध में भी समझना चाहिए। लेकिन उसकी अपनी एक महत्वपूर्ण विशेषता भी है और यह कि किसी भी प्रकार के वैदिक, पौराणिक अथवा तांत्रिक अनुष्ठान आदि को तत्काल सम्पन्न किया जा सकता है और तत्काल उसका फल और उसका परिणाम भी प्राप्त किया

जा सकता है जबकि भौतिक पर्यावरण में ऐसा सम्भव नहीं है। फल कब मिलेगा, और परिणाम सामने कब आयेगा–सन्दिग्ध ही रहता है। फल मिल भी सकता है और नहीं भी। परिणाम उपलब्ध हो सकता है और नहीं भी। यदि साधक चाहे तो अपने अनुष्ठान के प्रतिबिम्ब अथवा उसकी प्रतिच्छाया को भौतिक वातावरण में प्रकट भी कर सकता है। जैसा कि तुम्हें ज्ञात है रजनीकान्त को बेताल से मुक्ति दिलाने के भाव जगत में जो वाममार्गीय तांत्रिक अनुष्ठान मैंने किया था उसे तुमको दिखलाने के लिए उसका प्रतिबिम्ब प्रकट कर रहा था मैं।

थोड़ा रूककर तारानाथ भट्टाचार्य आगे बोले वैदिक यज्ञ, अनुष्ठान आदि हो अथवा तांत्रिक। सभी का आधार एकमात्र है भाव। यज्ञ, अनुष्ठान पुरश्चरण, जप, हवन, पूजन देवार्चन आदि जो कुछ भी है, उनमें पूर्ण सफलता तभी उपलब्ध होती है जिसमें भाव की प्रधानता के साथ ही साथ संकल्प की भी शक्ति हो। यदि भाव न हो तो संकल्प शक्ति का कोई महत्व नहीं। भाव न हो तो संकल्प साकार नहीं हो सकता। आध्यात्मिक मार्ग में भी ऐसा ही समझना चाहिए। उच्च भावना के साथ ही साथ संकल्प शक्ति के अतिरिक्त आत्म निष्ठा भी होनी चाहिए। आध्यात्मिक भूमि में। तभी सफलता सम्भव है। अन्यथा नहीं।

मेरी एक जिज्ञासा है?

क्या?

आप तो भाव राज्य में प्रवेश कर वहाँ मनोवाञ्छित कार्य कर सकने में समर्थ है लेकिन जो आपकी तरह समर्थ नहीं है। वह क्या कर सकते हैं? तब तो फिर उनके द्वारा सम्पादित सभी प्रकार के अनुष्ठादि तथा तप जप व्यर्थ ही सिद्ध होंगे?

हाँ! इसमें सन्देह नहीं, परन्तु भावराज्य में प्रवेश करने का सामर्थ्य भले ही न हो लेकिन दृढ़ प्रतिज्ञ, दृढ़ संकल्पवान और एकाग्रचित्त तो हुआ ही जा सकता है। यदि यह सब सम्भव है तो कोई ऐसा क्षण

अवश्य उत्पन्न होगा जिसमें भाव विभोर हो उठेगा मन। फल अवश्य मिलेगा और परिणाम भी सामने अवश्य आयेगा, सम्भव है उसमें विलम्ब हो। थोड़ा समय लगे। थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़े।

इतना कहकर उस महान साधक और विचारक ने सामने माँ महामाया काली की मूर्ति की एक बार स्थिर दृष्टि से देखा और फिर अपने आसन से उठ गये। सम्भवतः उनकी साधना उपासना का समय हो गया था। उनका चरणस्पर्श किया और चला आया। सांझ की स्याह कालिमा बिखर गयी थी गलियों में। काफी देर तक विचारों में डूबा हुआ बैठा रहा मैं लाली घाट की धूल भरी सीढ़ियों पर। उस रात नींद नहीं आयी पूरी रात तारानाथ भट्टाचार्य के एक–एक शब्द कानो में गूंजते रहे। गुरूवर डॉ. गोपीनाथ जी कविराज जी ने प्रसंगवश एक बार कहा था–पुस्तकों के अध्ययन से हमें किसी के विचार उपलब्ध होते हैं अनुभव नहीं। अनुभव तो उनसे हमे प्राप्त होता है जो विचार जाल से मुक्त होकर अनुभवों में जी रहे हैं। जिनके पास अनुभवों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और उन्होंने यह भी कहा था कि अनुभव सिद्ध महापुरुषों का अभाव नहीं है अभाव है तो उनको जानने समझने और पहचानने का। यह बहुत बड़ी तपस्या है और इससे भी बड़ी तपस्या है उनके अनुभवों को ह्रदयंगम कर उन अनुभवों को भाषा का रूप देना। मैं इस तपस्या में कहाँ तक सफल हो सका हूँ इसका निर्णय तो मेरी पुस्तकों को पढ़ने वाले सुविज्ञजन ही कर सकेंगे।

अभौतिक सत्ता का चौथा भाग और सूक्ष्म जगत

अभौतिक सत्ता के चौथे भाग को हम यदि सूक्ष्म जगत की संज्ञा दें तो अनुचित न होगा। मुख्य रूप से सूक्ष्म जगत को हम तीन क्षेत्रों में विभक्त कर सकते हैं। वे तीनो क्षेत्र भूमण्डल के अन्तर्गत हैं जिनमें विभिन्न श्रेणियों और विभिन्न संस्कारों की वे आत्मायें निवास करती हैं जो कभी मनुष्य शरीर में थी और भविष्य में पुनः समयानुसार मनुष्य

शरीर ग्रहण करेंगी। इसीलिए उन्हें भौतिक आत्मा की संज्ञा दी गयी है। भौतिक आत्मा को दूसरे शब्दों में मनुष्यात्मा भी कह सकते हैं। इसलिए कि उसके पास एक अतिमूल्य और अतिमहत्वपूर्ण वस्तु है और वह है 'मन'। जिस आत्मा के पास मन हैं, उसे मनुष्यात्मा कहते हैं। इस विश्व ब्रह्माण्ड में किसी भी प्राणी अथवा आत्मा के पास मन नहीं है। भले ही वह देवात्मा हो या दिव्यात्मा। इसीलिए मानव योनि और मानव शरीर की अपनी गरिमा और महत्व हैं। वैसे तो आत्मा के वाहक रूप में क्रमशः सात शरीर हैं। लेकिन मनुष्यात्मा प्रारम्भ के स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर इन तीन शरीरों का उपयोग करती है। मनोमय शरीर मनुष्यात्मा का अपना निज का शरीर है किन्तु मनोमय शरीर और सूक्ष्म शरीर इन दोनों शरीरों से कहीं अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण है स्थूल शरीर। इन तीनों शरीर में मनुष्यात्मा तीन अलग–अलग अवस्थाओं में रहती है – जिसको जागृत अवस्था स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। जिस अवस्था में आत्मा रहती है उसी अवस्था का अनुभव उसे होता है अन्य दोनों अवस्थाओं में से किसी का नहीं। योग के अनुसार मनुष्यात्मा के लिए जागृत अवस्था सर्वश्रेष्ठ अवस्था है। और इस अवस्था का संबंध स्थूल शरीर से है। इसलिए स्थूल शरीर का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। एक महत्व की बात यह भी है कि स्थूल शरीर के साथ अन्य दोनों शरीर दूध पानी की तरह आपस में घुले मिले रहते हैं, लेकिन स्वप्नावस्था में मनुष्यात्मा स्थूल शरीर से अपने को अलग कर सूक्ष्म शरीर के माध्यम से स्वप्न जगत अथवा सूक्ष्म जगत में विचरण करने लगती है उस अवस्था में सूक्ष्म शरीर भी स्थूल शरीर से अलग हो जाता है स्वप्न काल तक।

मनुष्यात्मा की तीन अवस्थाएँ :– स्वप्नावस्था समाप्त होने पर मनुष्यात्मा मनोमय शरीर द्वारा अपनी तीसरी अवस्था सुषुप्ति अवस्था

में प्रवेश करती है और विचरण करने लग जाती हैं मनोमय जगत में। इस अवस्था में मनुष्यात्मा को न अपने दो शरीरों का ज्ञान रहता है और न तो ज्ञान रहता है उनसे संबंधित अवस्थाओं का ही। और जब मनुष्यात्मा अपने स्थूल शरीर में वापस लौटकर जाग्रत अवस्था को उपलब्ध होती हैं उस समय अन्य दोनों शरीर के साथ दोनों अवस्थाओं के अनुभवों का विवरण भी होता है उसके पास।

मनुष्यात्मा की उपर्युक्त तीनों अवस्थाएँ तब तक अपना अस्तित्व बनाए रखती है जब तक मनुष्यात्मा के पास 'मन' है। और उसी मन के कारण मनुष्यात्मा तीनों शरीरों द्वारा जीवन यात्रा करती रहती है, कभी स्थूल शरीर द्वारा तो कभी सूक्ष्म शरीर द्वारा तो कभी मनोमय शरीर द्वारा। इसी को कालचक्र कहते हैं और कहते हैं भवचक्र। लेकिन इसका प्रभाव जीवन पर नहीं पड़ता। जीवन का धारा सतत प्रवाहित रहती हैं। कोई भी अवस्था उसमें व्यवधान उपस्थित नहीं कर सकती। उसका अस्तित्व सदैव बना रहता है। कहने की आवश्यकता नहीं जब तक मन का अस्तित्व है तब तक मनुष्यात्मा बार–बार स्थूल शरीर ग्रहण करेगी और बार–बार उसका त्याग करेगी–इसी का नाम जीवन और मृत्यु है। यात्रा कोई भी हो उसका एक न एक दिन अन्त होना निश्चित है। भले ही उस अन्त की लम्बी प्रतीक्षा क्यों न करनी पड़े। जीवन यात्रा का भी एक न एक दिन अन्त होता है। भवचक्र से भी मुक्ति मिल जाती है मनुष्यात्मा को कभी न कभी। और कभी न कभी आवागमन से भी हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाता है उसे। और फिर परम शान्ति और परम विश्राम को उपलब्ध हो जाता है वह। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब मनुष्यात्मा मनोमय शरीर को सदैव के लिए त्याग देती है। इस त्याग का यौगिक अर्थ है आत्मा से मन का अलग होना। मन से आत्मा को अलग हो जाने के फलस्वरूप आवागमन समाप्त हो जाता है और समाप्त हो जाती है जन्म–मरण

की यात्रा भी, इसलिए कि मन ही के कारण कर्म होता है और कर्म के कारण आत्मा आवागमन अथवा जन्म–मरण के भवचक्र में फंसती है। जैसे 'मन' का अपना शरीर है उसी प्रकार आत्मा का भी अपना निज का शरीर है। जिसे आत्म शरीर कहते हैं। जिसका निर्माण आत्मा स्वयं अपने तेज से करती है। जिसे आत्मतेज कहते हैं। आत्म शरीर और आत्मा को यहाँ एक दूसरे से अलग नहीं समझना चाहिए। दोनों 'एक' ही है। वहाँ द्वैत नहीं अद्वैत भाव है। और ऐसी ही आत्मा को योगीगण शुद्धात्मा अथवा मुक्तात्मा कहते हैं।

शुद्धात्मा :– आत्मा का ही एक परम अंश है मन लेकिन मन से संयुक्त होने पर उसमें जीव भाव का उदय हो जाता है। इसलिए इस अवस्था में आत्मा को जीवात्मा कहते हैं। साधारणतः मनुष्य के भीतर जो आत्मा है वह जीवात्मा है। कालान्तर में मन से मुक्त होने पर जीवात्मा फिर जीवात्मा नहीं रह जाती वह शुद्धात्मा हो जाती हैं। इसी को आत्मा की मुक्तावस्था कहते हैं। इस परम अवस्था में आत्मा को स्वयं के अस्तित्व का मात्र बोध रहता है अन्य किसी वस्तु का नहीं। योग के अनुसार उस स्वयं के बोध के अन्तर्गत आत्मा अखिल विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में परमात्मा का दर्शन करती है। यह परम दिव्य अवस्था है आत्मा की। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि दिव्य अवस्था प्राप्त विशुद्धात्मा परमात्मा की लीला का साधन बन जाती है। अब तक संसार में राम, कृष्ण, बुद्ध से लेकर आदि शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, वामाखेपा चैतन्य महाप्रभु, ईसा मुहम्मद आदि जितने अवतारी पुरुष दिव्य पुरुष और युग पुरुष के रूप में परमात्मा ने जगत कल्यार्थ और जगत हितार्थ लीलायें की हैं उन सबका माध्यम रही है ऐसी ही दिव्य अवस्था प्राप्त विशुद्धात्मायें।

विश्वब्रह्माण्ड में स्थूल शरीर का मूल्य और महत्व

एक साधारण मनुष्यात्मा आध्यात्मिक मार्ग पर शनैः शनैः चलती

हुई आत्मिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचती है और जिसके परिणाम स्वरूप उसे उपलब्ध होती है विशुद्ध दिव्यावस्था, योग की दृष्टि में यह परम सौभाग्य है और यह परम सौभाग्य विरले ही किसी मनुष्यात्मा को प्राप्त होता है, लेकिन इस परम आध्यात्मिक उपलब्धि के मूल में है ज्ञान और कर्म। और यह आयत्तिकरण मात्र सम्भव है मानवशरीर में। मानव योनि को छोड़कर अन्य सभी योनियाँ यहाँ तक कि देव योनि भी भोग योनियाँ है। लेकिन एक मात्र मानवयोनि ही एक ऐसी योनी हैं जो भोग योनि के साथ–साथ कर्मयोनि भी हैं। मनुष्य ज्ञान भी प्राप्त करता है और कर्म भी करता है। किन्तु उपलब्ध ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं करता। ज्ञान के अनुसार कर्म करना अपने आपमें एक महत्व रखता है। ज्ञान कुछ है और कर्म है कुछ और। ज्ञान और कर्म के बीच यह जो अन्तर है – वहीं अन्तर आध्यात्मिक मार्ग में बाधक है। उसी के कारण मनुष्य आध्यात्म मार्ग पर चलकर विशुद्धात्मा के स्वरूप को उपलब्ध नहीं हो पाता। ज्ञान के अनुसार कर्म करने वाला अथवा आचरण करने वाला ही सच्चे अर्थो में मनुष्य है। इसके मूल में प्रज्ञा है। प्रज्ञा का सीधा संबंध आत्मा से है। आत्मा ज्ञान–विज्ञान का भण्डार है। प्रज्ञा द्वारा ही वह बाहर निकलता है। कहा भी है–'प्रज्ञा वानलभते ज्ञानम्' प्रज्ञावान ही ज्ञान को उपलब्ध होते है। प्रज्ञा ही ज्ञान को कर्म में और कर्म को ज्ञान में नियोजित करती है और करती है आयत्त। यह कार्य अत्यन्त कठिन है। सबके बस की बात नहीं। ज्ञान और कर्म का आयत्तिकरण वास्तव में एक घाट पर बाघ और बकरी को एक साथ पानी पिलाने के समान हैं। विचार करने पर ज्ञात होता है कि हमारा ज्ञान कुछ और है और हमारा कर्म है कुछ और अपनी प्रज्ञा का तो हमे कुछ पता ही नहीं है। उसका बोध हमे तभी हो सकता है जब हम अपने आपको तथा अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को चारो ओर से सिकोड़ कर स्वयं अपने आपसे पूछे कि हम कौन है?

यह प्रश्न हम यदि बराबर दुहराते रहे तो एक न एक दिन हमे अपने आप में प्रज्ञा का बोध जाग्रत हो जायेगा इसमें सन्देह नहीं। और प्रज्ञा के उदय होते ही हम ज्ञान और कर्म के आयत्तिकरण की कला से तत्काल परिचित हो जायेंगे। इसमें भी सन्देह नहीं। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि एक मात्र मनुष्य में ही प्रज्ञा है अन्य किसी प्राणी में नहीं। प्रज्ञा ही ज्ञान को जन्म देती है और कर्म करने की कला भी सिखाती है उसी ज्ञान के अनुसार। इस कारण भी मानव शरीर का है मूल्य और महत्व।

जरा सोचिए। स्वयं परब्रह्म परमात्मा भी मानव शरीर को प्राप्त करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करता है। और अवसर प्राप्त होते ही मानव शरीर का आश्रय लेकर भगवान राम, भगवान श्रीकृष्ण और भगवान बुद्ध के रूप में अवतरित होता है। इसी से समझा जाता है कि मानव देह का कितना मूल्य और महत्व है विश्व ब्रह्माण्ड में।

मानव शरीर का महत्व समझिये :– आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना मूल्यवान, इतना महत्वपूर्ण और इतना दुर्लभ मानव शरीर को समझने में आज तक पूरी मानवता ने बराबर भूल की है। गल्तियाँ

मन और तन के संघर्ष में तन को जीतने दें। तन को मन पर हावी होने दें। तन बहुत अनुभवी है। उसकी प्रज्ञा लाखों वर्ष पुरानी है। तन सीधे प्रकृति से जुड़ा हुआ है। इस विश्व को चलाने वाला जो नियम है, उसी को धाराएं शरीर के भीतर भी स्पन्दित होती रहती है। इतना भर जान ले कि जहाँ शरीर है वहाँ जीवन है और कहीं नही। और कहीं है भी तो भोग जीवन है।

की है और की है उपेक्षा। केवल शरीर ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के अत्यन्त समीप है और है सबसे प्रामाणिक मित्र भी है। उससे मनुष्य इतनी शत्रुता क्यों रखता है। भारतीय भाषाओं में शरीर के लिए जो

भी शब्द है वे सब उसकी नश्वरता और क्षुद्रता के प्रतीक है। शरीर का अर्थ है जो बराबर पुराना होता जा रहा है। देह का अर्थ है जिसका दहन किया जाता है। तनु (तन) याने जो छोटी सी है।

काया वह है जिसे काल दबोच लेता है। शरीर को घट भी कहा जाता है। घट जो कभी न कभी फूटने के लिए ही बना है। समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थ और सन्त महात्मा बार–बार मनुष्य को सतर्क करते रहे हैं कि देह मिट्टी से बनी हैं और एक दिन मिट्टी में ही मिल जायेगी उस पर ध्यान मत देना।

हमारा तो कहना है कि मिट्टी में जब मिलेगी तब मिल जायेगी, लेकिन जब तक उसमें जी रहे हैं तब तक क्या? इस प्राणवान अद्भुत यंत्र की महिमा का वर्णन करने वाला कोई शास्त्र इस संसार में नहीं है एक तंत्र को छोड़कर। क्या इसका कारण यह हो सकता है कि जब जिस समय ये शास्त्र निर्मित हुए उस समय मनुष्य अपने शरीर के प्रति अत्यन्त आशक्त रहा हो? उसका जीवन शरीर ही शरीर रहा हो। भोग में लिप्त मनुष्य की आँखे इन्द्रियों के ऊपर उठती ही न हो और उसे सावधान करने के लिए ज्ञानियों ने शरीर की निन्दा की हो। फिर ईसाइयत का विस्तार हुआ और नैतिकता की ऐसी पकड़ हुई कि मानव जीवन की सभी अंगों को उसने ग्रस लिया। नैतिकता, जो भी नैसर्गिक हो उसके विपरीत अथवा विपक्ष है। स्वभावतः शरीर ही सबसे अधिक नैसर्गिक वस्तु हैं जो मनुष्य के अत्यन्त निकट है, इसीलिए उसका दमन सबसे अधिक हुआ।

शरीर को मानने वाला और महत्व देने वाला एक वर्ग अवश्य है जो गलत कारणों से शरीर पर ध्यान देता है और देता है महत्व। एक सूत्र भारत में बहुत प्रचलित है – 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्:' शरीर धर्म को साधने का सबसे पहला साधन हैं। यह सूत्र अपने आपमें अतिमहत्वपूर्ण है, लेकिन इस परम वचन को बिना उसका मर्म समझे

उन लोगों ने अपना लिया है जो केवल शरीर को ही महत्व देते हैं। शरीर को स्वस्थ और मजबूत बनाने के प्रयास में रहते हैं। जो कसरत करते हैं व्यायाम करते हैं और करते हैं पहलवानी। धर्म साधना के प्रथम चरण की तरह नहीं।

ध्यान और योग के प्रचलित रूप भी शरीर की उपेक्षा करना सिखाते है। अष्टांग योग केवल आसन और प्राणायाम की कुछ क्रियाओं में ही सिमट कर रह गया है। योगासनों का उपयोग लोग स्वास्थ्य लाभ के लिए ही करते हैं देह के रहस्य को जानने समझने के लिए नहीं। वे शरीर को 'मन' का गुलाम बनाकर अति प्रसन्न होते है। उनके लिए योग का अर्थ हैं इन्द्रियों का दमन कर शरीर को अपने वश में करना। योग का लोकप्रिय रूप त्याग पर आधारित है, योग पर नहीं।

एकमात्र तंत्र ही एक ऐसा शास्त्र है जो शरीर को अन्तर्विज्ञान की दृष्टि से देखता है। उसने शरीर को बहुत सम्मान दिया है। शरीर की निसर्गदत्त प्रज्ञा, अद्‌भुत कार्य प्रणाली, उसके भीतर के रहस्यों की पर्त, इन सबकी ओर तंत्रशास्त्र ने बार–बार हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

तंत्रशास्त्र इस अनूठी दृष्टि के विज्ञान का बहुत बड़ा आधार है। वैज्ञानिक जब पदार्थ की खोज करने लगे तब अणु की गहरायी में उतरने पर उन्होंने पाया कि वहाँ तो ऊर्जा ही है पदार्थ तो है ही नहीं। वह ऊर्जा इतनी तीव्र गति से गतिमान है कि पदार्थ जैसी दिखाई देती है। इस अनुभव के साथ वैज्ञानिक रहस्य वादी हो गये और उन्होंने रहस्य दर्शियों के लिए और आध्यात्मिक जगत के लिये मार्ग बना दिया। बीसवीं सदी की सर्वाधिक अनहोनी घटना थी यह। जैसे ही पदार्थ में छिपी ऊर्जा से पर्दा हटा, पदार्थ के साथ पूरा भौतिक विश्व समाहित हो गया। एक अर्थ में ध्यानियों के अनुभव को ही विज्ञान

ने समर्थन दे दिया। सर्वत्र चेतना ही चेतना है, पदार्थ है ही नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं इसी के साथ शरीर को अपना खोया हुआ सम्मान वापस मिल गया।

लोगों की दृष्टि में अब शरीर भी ऊर्जा का स्रोत बन गया। अब तक शरीर के प्रति जो भय था वह वस्तुतः दबी हुई काम वासना का भय था। शरीर को स्पर्श करते ही रोम–रोम में बसी हुई काम वासना अपने विभिन्न रूपों में बाहर निकलने के लिए व्याकुल हो उठती थी। जैसे–जैसे काम वासना के विषय में खुलापन आया और वह अनावृत्त हुई शरीर भी उसके अभिशाप से मुक्त हुआ। शरीर का सौन्दर्य, कमनीयता, सुख और आनन्द देने लेने की क्षमता, उसके भीतर कूट–कूट कर भरा हुआ ऊर्जा का भण्डार सभी हजार पंखुड़ियों वाले कमल की तरह खिलते चले गये।

आधुनिक मनुष्य को शरीर की देखभाल करने में उसे सजाने संवारने में कोई अपराध भाव उत्पन्न नहीं होता और न तो किसी भी प्रकार का संकोच अथवा शर्म होती है। एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हुआ जो शरीर को स्वस्थ और सुन्दरता का ध्यान रखता है।

शरीर के संबंध में एक कहावत है कि वह कभी झूठ नहीं बोलता। ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि शरीर किसी स्कूल या कॉलेज में भरती नहीं होता और मन की चालाकियाँ और उसकी धूर्तता नहीं सीखता। वह प्रकृति के साथ एक रस है। शरीर की अपनी भाषा है। उसे किसी भाषा को सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शरीर जो निरन्तर बिना शब्दों को बोलता रहता है उसे सीखने के लिए हमे अपने आपको अत्यन्त संवेदनशील और समादरपूर्ण बनाना होगा। तंत्र मार्ग के साधक सर्वप्रथम शरीर की मूक भाषा को समझने का प्रयास करते हैं और उसके लिए अपने आपको अधिक से अधिक संवेदनशील बनाते है। तंत्र साधक के लिए साधना की दृष्टि से शरीर सबसे महत्वपूर्ण

है। अपनी संवेदनशीलता के द्वारा शरीर की मूक भाषा को समझकर उसके अनुसार साधना में उसका उपयोग करते हैं अपनी भाषा में शरीर अपनी जिस आवश्यकता को प्रकट करता है, उसकी पूर्ति करना साधक का पहला कर्तव्य होता है और तभी शरीर भी साधना मार्ग में साधक की सहायता करने को तैयार होता है।

समझिए यह बिल्कुल नयी दृष्टि है और नया अन्दाज है। जिसे मनुष्य आज तक जानवर समझता आया है, घृणित और त्याज्य समझता आया है। उसके भीतर परम प्रज्ञा का अनुभव करना मन के लिए बहुत बड़ी छलांग है। वह पहली बार शरीर की ओर मैत्री का हाथ बढ़ा रहा है। शरीर के निःशब्द संकेतों को समझने का प्रयास कर रहा है। यह प्रयास ही मन को नई संवेदनाओं से भर देगी।

शरीर के साथ मैत्री भाव रखने का एक परोक्ष परिणाम है। शरीर के साथ मन की एक दूरी बनेगी। मनुष्य की कई बीमारियों का मूल है–शरीर के साथ तादात्म्य होना। लोग शरीर के साथ बुरी तरह चिपक जाते हैं कि उन्हें होश ही नहीं रहता कि वे शरीर से अलग हैं। जब मन और शरीर के बीच का अन्तराल समाप्त हो जाता है तब मन की बीमारियाँ शरीर में प्रकट होने लगती हैं। इन्हें डॉक्टर लोग सायको सोमैटिक मनः शारीरिक बीमारी कहते हैं। ऐसी न जाने कितनी बीमारियाँ हम शरीर में पालते है अकारण। यहाँ यह बतला देना अनावश्यक न होगा कि तंत्र साधक अपने मन को अपने शरीर से सदैव अलग रखने का प्रयास करते हैं। मन और शरीर के बीच में प्राण का स्पन्द काम करता है। उस स्पन्द पर अधिकार होने पर स्वयं अपने आप मन और शरीर का संबंध टूट जाता है। क्योंकि प्राण स्पन्द ही दोनों को एक दूसरे से मिलाता है। तंत्र साधक तभी अस्वस्थ होता है – जब उसका प्राणस्पन्द पर से अधिकार हट जाता है। वह तभी स्वस्थ होता है जब वह अधिकार उसे पुनः अपने प्रयास से प्राप्त होता

है। तंत्र साधक का मन और तन दोनों अपने–अपने स्थान पर कार्य करते हैं। दोनों के कार्य का प्रभाव एक दूसरे पर कभी नहीं पड़ता। इसीलिए एक परम साधक मानसिक और शारीरिक रूप से प्रायः स्वस्थ और सुखी रहता है।

एक बात सदैव स्मरण रखें कि शरीर को प्रकृति ने बनाया है और मन को बनाया है संस्कृति ने जिसे हम संस्कृति कहते है, उसमें तमाम विकृतियाँ है और उन्ही विकृतियों का मिश्रण हैं मन।

इसलिए मन और तन के संघर्ष में तन को विजयी बनने दे। तन को मन पर हावी हो जाने दें। तन बहुत अनुभवी है। उसकी प्रज्ञा लाखों साल पुरानी है। तन सीधे प्रकृति से जुड़ा हुआ है। इस विश्व को चलाने वाला जो नियम है उसी की धाराएँ शरीर के भीतर स्पन्दित होती रहती है। इतना भर जान ले कि जहाँ शरीर है वही जीवन है। और कहीं नहीं। मनुष्य की चेतना का चरम विकास है आत्मा की दिव्यावस्था। यदि उस अवस्था को प्राप्त करना है तो शरीर को महत्व दीजिये, मन को नहीं। यह एक जीवन्त और प्राणवान घटना है। इसमें सन्देह नहीं।

चतुर्थ पात्र

शरीर की संरचना

मानव शरीर का संबंध प्रकृति से है। प्रकृति ने जिस प्रकार मानव शरीर की संरचना की है वह अपने आपमें अत्यन्त आश्चर्यजनक और विस्मयकारी है। शरीर शास्त्र के अनुसार शरीर की रचना का जितना ही अधिक विचार–विश्लेषण किया जाय उतना ही अधिक यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इसकी संरचना अद्‌भुत है। २०६ हड्डियों, और ६०० से भी अधिक मांस पेशियों के ऊपर चमड़ी का चोला तना है। हड्डियों मांसपेशियों और चमड़ी तीनों की ही संरचना का कौशल आश्चर्यजनक हैं। हड्डियों जैसी मजबूत और हल्की वस्तु की कल्पना करना भी कठिन है। शरीर का जितना वजन होता है हड्डियाँ उसके पाँचवे हिस्से से भी कम होती हैं। अपने शरीर का ही भार भी इन पर कम नहीं होता। जब हम खाली हाथ डुलाते चलते होते है उस समय हमारी जांघ की हड्डी के एक–एक वर्ग इंच क्षेत्र पर पाँच पाँच सौ किलो का दबाव पड़ रहा होता है। शरीर का भार धरती का गुरुत्वाकर्षण और हवा का तेज भार ये तीन दबाव हड्डियाँ झेल रही होती है। इस दबाव को जो उस समय मानव शरीर की हल्की हड्डियाँ झेल रही होती हैं इस्पात की धड़ ही बर्दाश्त कर सकती हैं। सीमेन्ट

और इस्पात को भी मात करने वाली ये मानव अस्थियाँ कितनी मजबूत और फिर भी कितनी हल्की होती है।

मानव अस्थियाँ :– इन हड्डियों की बनावट का कौशल और सूझ–बूझ विचित्र और आश्चर्यजनक है। आधुनिक इमारतों में गोलाईदार पतली छत बनाई जाती हैं क्योंकि अण्डाकार खोल पतला होने पर भी मजबूत रहता है। मानव मस्तिष्क की रक्षक खोपड़ी की हड्डियाँ इसी ही गोलाकार मजबूत प्लेटों की शक्ल में होती है। जांघ की हड्डियों पर अधिक जोर पड़ता है तो उन्हें भी एक खोखले बेलन की आकृति दी गयी है। जांघ, कूल्हे, या बांह और कन्धे की हड्डियों का जोड़ ऐसा है – जैसे किसी गोल छल्ले में गेंद फंसा दिया जाय ताकि आसानी से घूम भी सकें और फंसी भी रहे। खोपड़े कूल्हे जैसे स्थानों में हड्डी का हिलना डुलना घातक और हानिकारक भी हो सकता है अतः वहाँ के जोड़ अत्यधिक मजबूत बने रहते हैं। नारी के कूल्हों की हड्डियाँ पुरुषों से भिन्न होती है। उनमें यह व्यवस्था रहती है कि प्रसवकाल समीप आते ही जोड़ कुछ खुल जाय। ताकि शिशु बाहर सुगमता से आ सके। पसलियों का जोड़ सामने सीने की हड्डी के साथ उनके जोड़ को घूम और फिसलकर फैलने सिकुड़ने में आसानी हो। हड्डियों के इन जोड़ों की सुव्यवस्था का ही परिणाम है कि हम शरीर को तरह–तरह से घुमा सकते हैं।

वस्तुतः मनुष्य का शरीर ही नहीं, मन, बुद्धि अन्तःकरण सभी इतने समर्थ होते है कि छोटी–छोटी भूलो को सुधार लेना या हल्के फुल्के आघातों को झेल लेना उनके लिए सरल बात होती है। अनाचार और अपव्यय की अति ही उन्हें जर्जर और रुग्ण बनाती है। इसी प्रकार दुराग्रह मनुष्य को रुग्ण और संकीर्ण बनाते हैं। अन्यथा उनमें स्वाभाविक रूप से सरसता भरी लोच रहती है। जिससे वह हर परिस्थितियों में तालमेल बिठा सकता है। और प्रतिकूलताओं के बीच प्रसन्न रहते हुए

उन्हें क्रमशः अनुकूलता में बदल सकता है। शरीर की मांसपेशियों तक में यह लोच और शक्ति पाई जाती है। इसी से सिकुड़ती–फैलती रहकर वे देह–व्यापार साधे रहती हैं। ये अपने से हजार गुना वजन सम्भालती रहती है। इनकी क्षमताएँ विस्मयकारक हैं। पेट की मांसपेशी भोजन ग्रहण करने के लिए स्वतः फैलती चली जाती है। हृदय की मांसपेशी गर्भस्थ शिशु में तीसवे दिन से काम शुरू कर देती है और 'अहर्निशं सेवा न हे' का साकार उदाहरण बनी आजीवन निरन्तर क्रियाशील रही आती है। साधारण काम करते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपनी मांसपेशियों पर इतना जोर डालता है जितना कि जोर टनों माल उठाते समय किसी क्रेन को लगातार पड़ता है। अपनी हड्डी और मांसपेशी तो आदमी साधारणतः देख नहीं पाता, पर चमड़ी पर उसकी नजर नित्य ही पड़ती है। इस चमड़ी को रंगने–पोतने में हजारो रुपये खर्च करते हैं, पर चमड़ी के वास्तविक चमत्कार को कम ही लोग जान पाते हैं और जानने पर भी स्मरण तो और भी कम लोग रख पाते हैं।

१. बाहरी ताप शक्ति को झेलने, २. शरीर के भीतर ताप को सामान्य बनाये रखने, ३. स्पर्श बोध के द्वारा आसपास की जानकारी निरन्तर देते रहने और ४. भीतरी अंगों–अवयवों को चोट–चपेट, कीटाणु–विषाणु से बचाये रखने की चतुर्विध चमड़ी निरन्तर करती रहती है। जबकि शरीर के किसी भी हिस्से में यह एक इंच के पंचमांश से भी अधिक ही पतली होती है। इतनी नाजुक पतली इस चमड़ी के भी हिस्से होते हैं। चमड़ी का बाहरी हिस्सा जो एपीडर्मिस कहलाता है, एक चतुर चौकीदार है। अपनी चौकीदारी के कर्तव्य की पूर्ति के लिए जहाँ जैसी व्यवस्था आवश्यक है, वैसी ही व्यूह रचना उसने कर रखी है। आँख जैसे कोमल स्थान की रक्षा के लिए वह इतनी पतली व मृदु हो गयी है कि एक इंच के दो हजारवें भाग के बराबर ही

उसकी तह है। अंगुलियों के नाजुक पोरों की रक्षा के लिए तो उसने नाखून का ही निर्माण कर डाला है। तलुओं में वह मोटे–तगड़े चौकीदार के रूप में बैठी है। हड्डियों के उन जोड़ों पर जहाँ मोड़ने की जरूरत पड़ती है, यह चमड़ी ढीली–ढाली होती है।

बाहरी चमड़ी के नीचे की तह किसी विशाल एवं व्यवस्थित दल के निष्ठावान स्वयं सेवकों की तरह चुपचाप काम करती रहती है। वह नित नये कोष रूपी कार्यकर्त्ता तैयार कर उन्हें व्यवस्थित रीति से आगे बढ़ाती है। ताकि समय आने पर वे बाहर मंच की व्यवस्था सम्भाल सके। दुनिया को गोरे–काले, भूरे–पीले के भेदों में फंसाने वाला 'मेलेनिन' नामक पदार्थ इसी तह में होता है। 'मेलेनिन' की अधिकता से रंग काला हो जाता है। तेज धूप और गर्मी से शरीर की रक्षा के लिए अधिक 'मेलेनिन' की आवश्यकता होती है। इसलिए गर्म देशों के लोग श्यामवर्णो होते है। मोर भी अधिक समय यहाँ रहें, तो ताम्बुई–भूरे होने लगते हैं। भीतरी चमड़ी का कारोबार और भी जटिल है उनमें लाखों बारीक तार यानी स्नायु–तंतु फैले रहते हैं। जो प्रत्येक स्पर्श की संवेदना मस्तिष्क तक ले जाते और वहाँ से आवश्यक सूचना निर्देश लाते हैं। सर्दी–गर्मी, पीड़ा–रोमांच आदि की अनुभूतियों के सन्देश वाहक में बारीक तार कुल मिलाकर अपने आपमें किसी विशाल दूरभाष केन्द्र की छवि पैदा करते हैं। मस्तिष्क के 'हाइपोथैलेमस' केन्द्र से जैसे ही दूरभाष पर खबर मिली की शरीर का तापमान बढ़ गया है, वैसे ही रक्त प्रवाह की और चमड़ी में स्थिर स्वेद ग्रन्थियों की गति तेज हो जाती है और खून की बढ़ी हुई गर्मी बाहरी चमड़ी के रास्ते पसीने के रूप में निकलने लगती है। तापमान गिरने की इस टेलीफोन से खबर मिलने पर रक्त प्रवाह कम हो जाता है, स्वेदग्रन्थियाँ भी धीमी चाल से काम करने लगती है। और चमड़ी तथा चर्बी की तहें शरीर की गर्मी को बाहर नहीं जाने देती। इस प्रकार

किसी वायरलेस–सज्जित, अनुशासित एवं ईमानदार पुलिस दल की तरह चौकस और सक्रिय–समर्पित–स्वयंसेवकों की तरह निस्काय भाव से सेवारत तथा परिपक्व बुद्धि संचालकों–निर्देशकों की तरह सूझबूझ से काम लेने वाली यह शरीर की व्यवस्था जितनी विशाल है, उतनी ही जटिल भी।

इसकी क्रियाशीलता, संतुलन–क्षमता, लचीलापन, दृढ़ता सभी कुछ आश्चर्यजनक है। योग–व्यायाम, जिम्नास्टिक, सर्कस और ओलम्पिक खेलों में शरीर के इस संतुलन के करतब देखकर लोग मुग्ध होते हैं। हाथ की अंगुलियों से उसी हाथ की कुहनी को छू सकता या कि गर्दन को मोड़कर चेहरा पीठ की तरफ ले जाना जैसे मोड़ भी असम्भव है। अन्यथा मानव–शरीर में इतनी अधिक मुड़ सकने, लचक–झुक सकने की संतुलन सामर्थ्य है कि जो बेमिसाल है। क्रियाशीलता ऐसी ही अथाह है। बहुत अधिक श्रम करने पर मांसपेशियों में जो थकान होती है वह भी आराम करने के बाद पूरी तरह दूर हो जाती है, यदि मनुष्य स्वयं ही व्यर्थ की चिन्ताओं से मानसिक तनाव न लाद ले। सामान्यतः मनुष्य अपने शरीर की इन आश्चर्यजनक क्षमता के प्रति जागरूक नहीं रहते। दूसरों की असामान्यताएं ही उन्हें आकर्षित करती हैं पर वे असामान्य करतब वस्तुतः प्रत्येक शरीर में अन्तर्निहित सामर्थ्य के किसी अंग विशेष का ही प्रयत्नपूर्वक किया गया विकास होते हैं। बिना कभी सोये दिन रात लगातार वर्षो काम करने वाले अपवाद व्यक्ति की क्रियाशीलता का स्मरण कराते है। चलती रेल, मोटर रोक देने वाले राममूर्ति जैसे व्यायाम–विशारदों के करतब हमें शक्ति का मान कराते हैं। कीलें, पिन और रेत खा–पचा लेने वालों को देखकर पाचन शक्ति का ध्यान आता है। पिछले दिनों जब बंगलादेश का स्वातंत्र्य–संघर्ष चलाया, तो उसकी सहायता हेतु बीकानेर में श्री आशुगिरी ने लम्बे समय तक एक समय बालू–रेत खायी और

बचा अन्न बंगलादेश के लिए अर्पित किया था।

किन्तु यदि अपने ही प्रति जागरूकता हो तो ऐसी असामान्य घटनाओं को बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं पड़े। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्रतिक्षण चल रहा भव्यक्रिया–व्यापार स्वयं ही इतना विस्मयविभोर कर देने वाला है कि उसे खोज के लिए बाहर दौड़ने की मेहनत जरूरी नहीं है। अपने भीतर ही एक जादूगर मौजूद है। आवश्यकता अपनी इन विलक्षणताओं को समझने और उनका मूल्य आंकने और उनसे मार्गदर्शन पाने की है। माँ के स्तन से जो दूध प्राप्त होता है, वह किसी भी 'रेफ्रिजरेटर' से संरक्षित दूध को ताजगी में मात करता है। कान जैसा 'साउन्द्रफिलर' यन्त्र मनुष्य द्वारा बनाया जाना अभी स्वप्न ही है। आँख जैसे कैमरों का बन पाना भी अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। फिल्में बनाते समय भी फोटो दृश्य और कैमरे की दूरी का सन्तुलन साधते हुए फोकस मिलाना पड़ता है। फोकस लेन्थ को इच्छानुसार नहीं बदला जा सकता। पर पास से पास और दूर से दूर का दृश्य देखने के विभिन्न क्रम हम अपनी आँखों को आगे पीछे हटाये बिना मजे में देखते रह सकते हैं। फिर वे एक ही बार में सही फोटो उतार लेती है, जब कि कैमरे के उलटे फोटो दुबारा प्रिण्ट कर सीधे किये जाते हैं। सुरक्षा और सफाई के स्वतः प्रबन्ध और रंगों के वर्गीकरण की अतिरिक्त विशेषताओं का तो कैमरे में हो सकने का प्रश्न ही नहीं।

यही बात चारों तरफ की और भिन्न–भिन्न फ्रीक्वेंसी की ध्वनियाँ स्पष्ट सुन सकने की क्षमताओं वाले कानों के बारे में है। हृदय, फेफड़े, गुर्दे सभी की सामर्थ्य गतिविधियाँ विस्मयकारी हैं। इनकी निरन्तर श्रमशीलता और कर्तव्य परायणता इनके अद्वितीय समर्पण के प्रतिपादक तथ्य है। भोजन पकाने की अमाशय की क्रिया का तो कहना ही क्या। अन्न को रक्त में बदल देने वाली इस रसायनशाला में अत्यन्त जटिल

और विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया सम्पन्न होती रहती है। इतने अधिक जटिल, बारीक, शक्तिशाली और समर्थ यन्त्रों का संचालन–निर्देश प्रधानतः शरीर में मस्तिष्क के नियन्त्रण से स्वतः होता रहता है। उसके लिए सचेत प्रयास कम ही किये जाते है। इस विराट और भव्य कारखाने को जितना ही देखा परखा, समझा–सोचा जाय, उतना ही विस्मयभाव बढ़ता है।

मस्तिष्क का आध्यात्मिक रूप

पिछले प्रकरण में हमने शरीर शास्त्र की दृष्टि से मनुष्य के शरीर की संरचना पर प्रकाश डाला था। मुख्य रूप से शरीर दो मुख्य भागों में विभक्त है। कण्ठ से ऊपर का भाग पहला भाग है, जिसमें ज्ञानेन्द्रियाँ और कपाल प्रदेश के साथ मस्तिष्क भी है। नीचे का भाग दूसरा भाग है जिसमें ह्रदय है कर्मेन्द्रियाँ है। शरीर में मस्तिष्क और ह्रदय ये दो ही महत्वपूर्ण केन्द्र है। और दोनों एक दूसरे पर हैं आश्रित। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ह्रदय से अधिक महत्वपूर्ण मस्तिष्क है इसलिए कि मृत्यु में ह्रदय की गति तो बन्द हो जाती है, लेकिन मस्तिष्क की कोशिकाएँ बहुत समय तक सक्रिय रहती है।

उपर्युक्त दोनों भागों के अतिरिक्त एक और भाग है और वह भाग है नाभि। नाभि शरीर में आत्मा के प्रवेश का मार्ग है। आत्मा के प्रवेश करते ही वह मार्ग बन्द हो जाता है। इन तीनों भागो को योग की भाषा में केन्द्र कहते है। जो तीन तत्वों का केन्द्र है सत्व तत्व, रजोतत्व और तमोतत्व इन तत्वों के अधिष्ठाता है क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव। मस्तिष्क केन्द्र के अधिष्ठाता शिव हैं। ह्रदय केन्द्र के अधिष्ठाता विष्णु है और नाभिकेन्द्र के अधिष्ठाता है ब्रह्मा। जैसा कि बतलाया जा चुका है मस्तिष्क शरीर का सबसे महत्वपूर्ण और सक्रिय केन्द्र है। इसका मूल्य और महत्व इसी में निहित है कि इस केन्द्र का अगोचर संबंध मस्तिष्कीय ऊर्जा द्वारा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड

से है। दूसरी बात यह है कि मानव मस्तिष्क के आन्तरिक अंग अथवा अवयव भगवान शिव के लिंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिसके फलस्वरूप मानव शरीर की महत्ता और बढ़ जाती है। विचार पूर्वक यदि देखा जाय तो शिव का लिंग, रूप और गुण में मानव मस्तिष्क का ही प्रतिरूप है। मानव मस्तिष्क ही ऐसा है जो हर जीव में व्याप्त चेतना का घनीभूत रूप है। और जो जगत रूप सारे शरीर को नियन्त्रित करता है। अपने सामञ्जस्य की आदर्श अवस्था में वह शान्त हो जाता है। चेतना की तुरीय अवस्था में पहुँच जाता है। शिवत्व में प्रतिष्ठित होकर पराचेतना भगवद्चेतना और ब्राह्मी चेतना का मार्ग प्रशस्त करता है। मस्तिष्क द्वारा ही विश्व की नियन्ता परम शान्त शुद्ध चेतना की अनुभूति भावातीत अवस्था में होती है। शैव़ तंत्र का जिन्होंने गहन अध्ययन किया है वे जानते है कि तंत्र ने शिवलिंग की मस्तिष्क के रूप में प्रतिष्ठा नही की बल्कि शिव के लौकिक रूप मस्तिष्क के अंग प्रत्यंग में स्थान सुनिश्चित किया गया है। शिव के हाथ में त्रिशूल है जो मानव मस्तिष्क के **'वेंट्रीकुलर सिस्टम'** से बिल्कुल मिलता है। यह सिस्टम मस्तिष्क को चलने फिरने खास कर सिर के अचानक घूमने पर नियन्त्रण करने में मस्तिष्क की सहायता करता है।

भगवान शिव के मस्तक पर स्थित द्वितीया का चाँद **'हाइपोथेलामस'** से लिया गया है। वेंट्रीकूलर सिस्टम के निकट स्थित मस्तिष्क का यह भाग चय अपचय हार्मोन के श्राव मनोभाव वृद्धि एवं विकास को संयमित करता है। शिव के गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला मस्तिष्क के **'कोरायड प्लेक्सस'** की अनुकृति है। इससे **'सेरिब्रोस्पाइनल'** द्रव श्रवित होता है। जिसमें **वेट्रीकिल** डूबे रहते है। कोरायड प्लेक्सस से सेरिब्रोस्पाइनल द्रव वेट्रीकिल में उसी प्रकार गिरता है – जिस प्रकार गंगा और उसकी शाखायें शिव की जटाओं से गिरती है अथवा बहती है। गंगा का एक नाम 'त्रिपथगा' भी है।

वह तीन मार्गों से होकर गुजरती है। वैदिक साहित्य में इस नाम का दोहरा सन्दर्भ आया है। पहला – जब स्वर्ग से गंगा गिरती है पृथ्वी पर तब वह शिव की जटाओं में उलझकर सात नदियों में विभाजित हो जाती है। इसमें से तीन नदियाँ सुचक्षु, सीता और सिन्धु के रूप में पश्चिम की ओर तथा आल्हादनी, पावनी और नलिनी के रूप में पूरब की ओर जबकि स्वयं गंगा भगीरथ के रथ के साथ–साथ पृथ्वी पर बहती चली आती है। ये तीन वर्ग पृथ्वी पर उसके तीन पथ है। गंगा के संबंध में यह भी कहा जाता है कि वह स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के तीन क्षेत्रों में भी प्रवाहित होती है। मानव शारीरिकी में **'कोरायड प्लेक्सस'** से **सेरीब्रोस्पाइनल** द्रव भी तीन दिशाओं में प्रवाहित होता है। दाहिने **वेंट्रीकिल** की ओर और बांये **वेंट्रीकिल** की ओर तथा **सेरीब्रल** द्रव तालिक के मध्य चौथे **वेंट्रीकिल** की ओर। यही नहीं गंगा की सात धाराओं के वैदिक उल्लेख के अनुसार **वेंट्रीकूलर सिस्टम** भी अन्दर से दो **एन्टीयर** दो **पोस्टीरियर** और चार अन्य **हार्न्स** से मिलकर बना है। गंगा रूपी अन्तिम धारा **ब्रेनस्टेम** और **स्पाइनल कार्ड** की दिशा में बहती है जहाँ चौथा **वेंट्रीकिल** स्थित होता है। जहाँ तक गंगा के तीन क्षेत्रों में बहने की बात हैं तो **सेरीबोस्पाइनल** द्रव स्वर्ग की पीठ रूप सम्पूर्ण मस्तिष्क में बहता है। यह पृथ्वी रूप **स्पाइनल कार्ड** (सुषुम्ना नाड़ी) को भी आप्लावित करता है और इनके अन्दर के अंगों में जाकर गंगा के पाताल जाने के वैदिक उल्लेख को प्रमाणित करता है। मस्तिष्क के मध्य में स्थित पीयूष ग्रन्थि को ही ऋषियों ने भगवान शिव के तीसरे नेत्र के रूप में निरूपित किया है। यह ग्रन्थि प्रकाश के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है। और **मेलाटोनिन** नामक एक ऐसे हारमोन का स्राव करती है जिसकी मनोभावों जागृति और चेतना की अन्य अवस्थाओं से संबंध है। **वेंट्रीकिल्स** में झिल्ली जैसी एक रचना है जिसे **स्पैक्टमपेलूसिडम** कहते है। यह भगवान शिव के

डमरू से बिल्कुल मेल खाती है।

स्मैक्टमपेलूसिडम की भावना और प्रेरणा में महत्वपूर्ण भूमिका है। **वेंट्रीकिल सिस्टम** के सिर और गले के चारों ओर **लिम्बक सिस्टम** अपने नाभिक और फारनिक्स के साथ स्थित है। ये अंग **बेसल गैगलिया** का हिस्सा है। जो सहज और सामञ्जस्य पूर्ण गति शीलता सुनिश्चित करते है। अपने बड़े सिर और लम्बी पूंछ के कारण ये बिल्कुल शिव के गले के चारो ओर लपटे नाग जैसा रूप निर्मित करते हैं। तीसरा **वेंट्रीकिल्स** भी **वेंट्रीकिल सिस्टम** का हिस्सा है। और मस्तिष्क के केन्द्र में स्थित है। आकार में भगवान शिव के कमण्डल की तरह है। भगवान शिव की पारम्परिक पूजा में उनके चारो ओर पूर्ण वृत्त बनाने के बजाय अर्धवृत्त बनाए जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि मस्तिष्क की आकृति अंग्रेजी के 'सी' अक्षर की तरह है। अंग्रेजी के 'सी' अक्षर के दोनों बिन्दुओं के बीच का जो स्थान है वह ब्रह्माण्ड का परम शून्य स्थान है।

मनुष्य के मस्तक पर मुख्य रूप से तीन रेखायें मृत्युपर्यन्त विद्यमान रहती है। वे रेखाएँ त्रिगुणात्मिका है और इनका संबंध क्रमशः मस्तिष्क हृदय और नाभि से है। ये तीनों रेखाएँ मनुष्य के जीवन के तीनों कालों को भी स्पष्ट करती है। यदि ऊपर की रेखा कहीं से कटी है तो उस व्यक्ति का जन्म से पच्चीस वर्ष तक की आयु संघर्ष और कष्ट में व्यतीत होता है। वह जीवन में अपने को स्थापित करने के प्रयत्न में ही लगा रहता है। इस रेखा का संबंध मस्तिष्क से है इसलिए वह व्यक्ति मस्तिष्क से अधिक से अधिक काम लेता है। वह काम भले ही अच्छा हो या बुरा। उसके जीवन में कर्म का अभाव रहता है और सोच विचार महत्वाकांक्षा आदि अधिक रहता है उपर्युक्त अवस्था पर्यन्त। यदि मध्य रेखा कहीं से कटी या टूटी हुई हैं तो व्यक्ति भावुक, मन से कमजोर, आलसी होता है और एक प्रकार

से पच्चीस वर्ष की अवस्था से पचास वर्ष तक की अवस्था पर्यन्त अकर्मण्य जीवन व्यतीत करता हैं। इस रेखा का संबंध हृदय से होने के फलस्वरूप वह व्यक्ति हृदय से अधिक काम लेता है। प्रेम, स्नेह, ममत्व, करुणा, दया आदि को अधिक महत्व देता है और उसी के फलस्वरूप पच्चीस से पचास वर्ष के जीवन में प्रायः असफलता का ही उसे सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार अन्तिम तीसरी रेखा कहीं से कटी या टूटी हुई है तो व्यक्ति के पचास से पचहत्तर वर्ष तक का जीवन काल अति कष्टमय व्यतीत होता है। पारिवारिक सुख शान्ति से वंचित वह एकाकी तथा आश्रयहीन जीवन व्यतीत करता है। ऐसा व्यक्ति सदैव सन्यास लेने या आत्महत्या करने के लिए बराबर सोचा करता है। लेकिन कोई–कोई ही ऐसा करता है सभी नहीं। यदि तीनों रेखायें अपने–अपने स्थान पर सुरक्षित है और गहरी है तो व्यक्ति के जन्म से मृत्यु पर्यन्त का जीवन सुख आनन्द वैभव आदि में व्यतीत होता है। वह हर स्थिति अथवा परिस्थिति में आनन्दमग्न रहता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से मस्तिष्क की तीनों रेखाएँ भगवान शिव के मस्तक अथवा लिंग पर लगे त्रिपुण्ड का प्रतीक है। यदि पहली रेखा कटी हो तो शिवलिंग का पूजन आदि प्रातःकाल दूसरी रेखा कटी हो तो मध्यान्ह काल और अन्तिम तीसरी रेखा कटी हो तो सायंकाल के समय करना चाहिए। जिससे बहुत भारी लाभ होता है प्रत्येक दृष्टि से जीवन की उस विपरीत अवस्था में।

रहस्यमय मस्तिष्क

अब तक हमने मानव शरीर के महत्व उसके मूल्य और उसकी गरिमा के विषय में चर्चा की। आध्यात्मिक दृष्टि से मस्तिष्क से संबंधित उसके आन्तरिक अवयवों पर प्रकाश डाला और अब इसी श्रृंखला में भौतिक विज्ञान के आधार पर मस्तिष्क और उससे संबंधित अंगों का उल्लेख करेंगे। वास्तव में अत्यन्त रहस्यमय है मानव मस्तिष्क। शरीर

की तरह उसकी भी संरचना सूक्ष्म जटिल और अद्‌भुत है। प्रायः मस्तिष्क का चार प्रतिशत भाग क्रियाशील रहता है और शेष ९६ प्रतिशत भाग मूर्च्छित अवस्था में रहता है। इस मूर्च्छित अथवा प्रसुप्त भाग में से जो जितना अंश जागृत कर लेता है वह उतना अधिक बुद्धिमान, प्रज्ञावान, विवेकवान और ज्ञानवान बन जाता है।

न्यूरोलाजी – मस्तिष्क विज्ञान के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क आयतन १४०० घन से०मी० है। मस्तिष्क के बाहरी भाग में एक प्रकार का धूसर पदार्थ (ग्रे मैटर) विद्यमान है, जिसमें तंत्रिका कोशिकाओं यानी न्यूरान्स की संख्या लगभग १७ अरब है। अनु मस्तिष्क (सेरीबेलम) में १२० अरब और मेरुदण्ड में १ करोड़ ३५ लाख तंत्रिकायें इसके अतिरिक्त है। इनके साथ रहस्यमय स्तर की लगभग एक खरब लघु कोशिकायें इन न्यूरान्स की सहयोगिनी के रूप में रहती है इनके मिलन केन्द्र को तंत्रिकाबन्ध (न्यूरोग्लाया) कहते है। इन सबके सम्मिश्रण से मस्तिष्कीय चेतना उत्पन्न होती है। इसी चेतना का दूसरा नाम मन है और उसी चेतना का घनी रूप मनोमय शरीर है।

मस्तिष्क के भीतरी भाग के चारो ओर दो काले रंग की पट्टियाँ लिपटी हुई है। जिनको टेम्पोरल कोरटैक्स कहते हैं। इनका क्षेत्रफल २५ वर्ग इंच मोटाई १ इंच का दसवां भाग है। इनका स्थान कनपटियों के ठीक नीचे है। टेम्पोरल कोरटैक्स में वर्तमान जन्म की स्मृतियाँ संगृहीत तो रहती ही हैं। इसके अतिरिक्त पिछले पाँच जन्मों की भी स्मृतियों का भण्डार भरा हुआ रहता है। योग तंत्र की विशेष क्रियाओं द्वारा उन स्मृतियों को जगाया जा सकता है। इतना ही नहीं वर्तमान जीवन के भविष्य में घटने वाली घटनाओं की भी रूपरेखा उसमें विद्यमान रहती हैं।

सिद्धयोगी लाल बाबा :– लगभग चार दशक पूर्व कलकत्ता में एक सिद्ध योगी रहते थे, जिनको लोग लाल बाबा के नाम से जानते

थे। थोड़े नाटे कद के थे लाल बाबा। शरीर का रंग गोरा था। जटाजूट धारी थे। पैर में खड़ाऊँ और शरीर पर लाल रेशमी वस्त्र। सदैव मुस्कराते रहते थे लाल बाबा। उनकी आयु कितनी थी यह तो कोई नहीं बतला सकता था लेकिन देखने में पचास साठ के करीब के लगते थे महाशय। कलकत्ता के भूतनाथ श्मशान में सायंकाल के समय कभी–कभी बैठे हुए मिल जाते थे वह मुझे। फिर तरह–तरह की बातें होती कभी राजनीति की, कभी परिवार समाज की तो कभी अध्यात्म की। सभी विषयों में थोड़ी बहुत रूचि रखते थे बाबा। लेकिन यह बात अपने आपमें सत्य थी कि बाबा एक सिद्ध सन्त महात्मा थे इसमें सन्देह नहीं। एक बार एक व्यक्ति आया, उस व्यक्ति का नाम था अजित कानोडिया। मारवाड़ी था और उसका कपड़े का लम्बा चौड़ा व्यापार था। काफी धनी था वह। दो दिन पूर्व उसके यहाँ बहुत बड़ी चोरी हो गयी। पाँच लाख रूपये नगद और चार पाँच लाख रूपये के जेवर। कुल मिलाकर लगभग दस लाख की चोरी थी वह। हैरान, परेशान सा पहुँचा था अजित कानोडिया बाबा के शरण में। अत्यधिक दुखी और चिन्तित था वह। तीन–तीन शादियाँ की थी उसने, लेकिन सन्तान का मुँह देख पाया था पचास वर्ष की आयु हो जाने तक। सांझ का समय था। भूतनाथ के श्मशान में कई चिताएँ जल रही थी। थोड़ी दूर पर एक पत्थर का चबूतरा था और उसी चबूतरे पर बाबा के साथ मैं भी बैठा था उस समय। आते ही बाबा के दोनों पैर थाम कर बैठ गया अजित कानोडिया और बच्चों की तरह लगा रोने सिसक–सिसक कर।

लाल बाबा ने अजित कानोडिया की सारी व्यथा भरी कथा सुनी और उसकी पीड़ा को भी समझा। फिर कुछ देर तक सामने जलती हुई चिता की ओर देखते रहे वह। शायद सोच रहे थे कुछ। उसके बाद अपने दोनों हाथों के अगूंठों से अजित कानोडिया की दोनों

कनपटियों को दबाते हुए गम्भीर स्वर में बोले—कानोडिया तू चोर को जानना चाहता है?

हाँ ! बाबा, सिर हिलाया कानोडिया ने।

चोर को देखना भी चाहेगा तू?

हाँ ! बाबा ! इससे अच्छी बात क्या होगी? पहले की तरह सिर हिलाते हुए कानोडिया ने कहा।

अच्छा ठीक है। तू अपनी दोनों आँखे बन्द कर चुपचाप अपनी जगह पर बैठा रह – बाबा ने आदेश दिया।

कानोडिया अपनी आँखे बन्द कर बैठ गया जमीन पर। कुछ देर बाद लगा जैसे गहरी नींद में सो रहा है वह। उसका सिर एक ओर लटक गया था उस समय। बाबा के दोनों अंगूठे अभी तक कानोडिया की कनपटी पर धंसे हुए थे।

लगभग एक घंटे बाद चैतन्य हुआ अजित कानोडिया बाबा ने अपना हाथ हटा लिया था अब। कानोडिया का चेहरा स्याह हो रहा था उस समय। आश्चर्य के भाव से बाबा की ओर देखने लगा था वह। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कुछ। मुँह बाये कभी बाबा की ओर देखता तो कभी देखता अजित कानोडिया की ओर। लाल बाबा ने अजित कानोडिया के टेम्पोरल कोरटैक्स को अपने अंगूठे से दबाकर योग की आत्म सम्मोहन क्रिया द्वारा उसकी आत्मा को पिछले जन्म में ले गये थे। जहाँ उसने जीवन के एक खण्ड में जो कुछ देखा उस सत्य ने झकझोर दिया था एक बारगी अजित कानोडिया को।

बाद में सारा रहस्य अनावृत्त हो गया मेरे सामने। लाल बाबा ने ही बतलाया मुझे। अजित कानोडिया भी था उस समय। उसका एक मुंशी था जिसका नाम था राघोराम। बड़ा ही खूसट और धूर्त था राघोराम। अजित कानोडिया के व्यापार का सारा रहस्य जानता था वह धूर्त। लेन देन के संबंध में जितनी जानकारी उसे थी उतनी

मालिक को भी नहीं थी और उसी ने चोरी की थी।

लगभग अस्सी, नब्बे वर्ष पूर्व राजस्थान के एक धनी परिवार का सदस्य था अजित कानोडिया। मारवाड़ी परिवार था वह। माता–पिता नहीं थे। पिछले जन्म में उसका नाम था राधेश्याम जसपुरिया। एक छोटा भाई था जिसका नाम था घनश्याम जसपुरिया। राधेश्याम जसपुरिया की पत्नी थी और दो पुत्र थे। घनश्याम जसपुरिया की भी पत्नी थी और एक पुत्र था। सोने–चाँदी का काफी लम्बा चौड़ा व्यापार था। लाखों का लेन–देन था। दोनों भाईयों में एकता थी और था प्रेम। दोनों मिलकर व्यापार देखते थे। दुर्भाग्य वश एक कार दुर्घटना में घनश्याम और उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। संयोग से उसका पुत्र लक्ष्मण बच गया। उस समय उसकी आयु सत्रह–अट्ठारह वर्ष की थी। मनुष्य का मन कब बदल जायेगा? भला इसे कौन जान सकता है। भाई और उसकी पत्नी के मरते ही राधेश्याम के मन में खोट आ गया। पूरी जायदाद और पूरे व्यापार का अकेला मालिक बनने का देखने लगा सपना वह। लेकिन उसके सपने को साकार होने में सबसे बड़ा विघ्न था लक्ष्मण। लक्ष्मण अब तक काफी होशियार हो चुका था। अपने बड़े चाचा को पिता तुल्य मानता था। उनके साथ व्यापार में हाथ बटाता था और उनके हर आदेश का पालन भी करता था। राधेश्याम भी पुत्रवत् स्नेह करता था अपने भतीजे से। लेकिन अब वह कांटा बन कर चुभने लगा था हर समय उसके हृदय में। अन्त में उस कांटे को हमेशा के लिए निकालने का निश्चय कर ही लिया राधेश्याम ने एक दिन। व्यापार के सिलसिले में कार से सीकर जाते समय रास्ते में ही कार दुर्घटना में माता–पिता की तरह लक्ष्मण की भी हो गयी मृत्यु। लक्ष्मण के विवाह के लिए घनश्याम ने अलग से तिजोरी में पाँच–छः लाख रूपये और जेवर रखा था। अब वह रकम भी राधेश्याम के अधिकार में आ गयी थी।

मरने के बाद लक्ष्मण की आत्मा ने राघोराम के रूप में जन्म लिया। और अपने पूर्व जन्म के चाचा अजित कानोडिया के यहाँ करने लगा नौकरी। चोरी करने के बाद वह कहाँ गया और उसका क्या हुआ? आज तक इसका पता किसी को नही है। लोगों की नजर में चोर अवश्य था राधोराम, लेकिन ईश्वर की दृष्टि में नहीं। क्योंकि नियति ने न्याय किया था उसके साथ। कहने की आवश्यकता नहीं उसके बाद कई अविश्वसनीय चमत्कार देखा मैंने लाल बाबा का। एक बार तो मुझे ही आत्म सम्मोहित कर मेरे जीवन का भविष्य खण्ड–खण्ड में दिखला दिया था उन्होंने। जिसमें से कुछ भविष्य घट चुका है और कुछ घटने वाला है अभी। इस आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय किन्तु सत्य कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व जन्मों में किये गये अपने कर्मो के कारण ही वर्तमान में जन्म में हम एक दूसरे के निकट आते हैं। यह आकर्षण और निकटता वास्तव में पूर्व जन्मों का परिणाम ही है। इसमें से कुछ के हम ऋणी होते है और कुछ हमारे ऋणी होते हैं।

कर्म और हम :– कर्म के सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण बात तो यही है कि हम सभी पूर्व जन्मों में किए गये अपने कर्मो के फलस्वरूप ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। सन् १९६० ई०, उन दिनों हावड़ा के शिवपुर इलाके में रहता था मैं। जिस मकान में मैं रहता था उससे कुछ ही दूरी पर सहस्त्र भुजा काली का अति प्राचीन मन्दिर था। मन्दिर की देखभाल करते थे सोमेश्वर भट्टाचार्य। सोमेश्वर भट्टाचार्य वृद्ध व्यक्ति थे और उनसे मेरा अच्छा परिचय था। उनकी एक भांजी थी श्यामला। श्यामला, सचमुच श्यामला थी। रंग गहरा सांवला था, काला नही कहेंगे उसे। कद लम्बा था, इकहरी देह थी। देखने सुनने में आकर्षक थी। आयु यही थी लगभग पच्चीस तीस के बीच। किसी स्कूल में अध्यापिका थी वह। माँ काली की सायंकालीन

पूजा आरती वही करती थी। उस समय उसकी भाव विह्लता और तन्मयता देखते ही बनती थी। बड़े भाई के समान मुझे मानती थी वह और मैं भी उससे बहुत स्नेह करता था। प्रायः मुझसे वह काशी ले चलने के लिए आग्रह करती रहती थी। कब मुझे ले चलेंगे भाई साहब काशी? कैसी है काशी? सुनती हूँ कि गंगा के ऊपर घाटों की लम्बी कतार है वहाँ। मन्दिर भी बहुत हैं। इस प्रकार की बातें बराबर करती रहती थी श्यामला। और मैं टालता रहता था। सोचता था कभी ले चलूंगा अपने साथ श्यामला को और बनारस घुमा लाऊँगा उसे। लेकिन दुर्भाग्यवश इसका अवसर ही नही मिला। एक बार किसी कारणवश पूरे दो महीने के बाद जाना हुआ मेरा कलकत्ता। और जब गया तो पता चला कि श्यामला अब इस संसार में नहीं है। दो दिन की बीमारी में चल बसी थी वह। अचानक कौन से रोग ने ग्रस लिया था उसे इसका पता डॉक्टर भी न लगा पाये थे।

श्यामला की मृत्यु के समाचार ने मर्माहत कर दिया था मुझे। सबसे बड़ा कष्ट मुझे इस बात का था कि उसकी काशी देखने की लालसा को पूरा न कर सका था मैं। एक दिन लाल बाबा से चर्चा की मैंने श्यामला की। वे सहजभाव से बोले — काशी के प्रति श्यामला की इच्छा यदि दृढ़ होगी तो अवश्य उसकी आत्मा कभी न कभी जन्म लेगी काशी में। और तुमको मिलेगी भी वह। यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ था मुझे। धीरे–धीरे समय व्यतीत होता चला गया और उसी के साथ एक प्रकार से भूल भी गया मैं लाल बाबा की भविष्यवाणी को भी।

लगभग तीस पैतीस वर्ष बाद। प्रायः बनारस में ही रहने लगा था मैं तब। कलकत्ता जाना आना कम हो गया था मेरा। एक दिन, दोपहर के समय एक सांवली सी दुबली पतली लड़की अपने किसी काम से मुझसे मिलने आयी। मेरे किसी परिचित ने उसे भेजा था

मेरे यहाँ। नन्दिता नाम था उस लड़की का। बीस बाईस वर्ष से अधिक आयु नहीं थी नन्दिता की। पहले तो कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। लेकिन बाद में जब उस लड़की का चेहरा देखा तो कुछ–कुछ परिचित सा लगा वह। अचानक कुछ कौंध सा गया मेरे मस्तिष्क में। नन्दिता का चेहरा बिल्कुल मिलजुल रहा था श्यामला के चेहरे से। दोनों की मुखाकृति में कहीं कोई वैषम्य नहीं था। वहीं आँखे, वहीं नाक, वही मस्तक, वैसे ही होंठ, बाल भी उसी तरह काले घने और लम्बे। यहाँ तक कि उठने बैठने चलने आदि के अतिरिक्त बातचीत करने का ढंग भी श्यामला की ही तरह। हे भगवान ! लगा मुझे जैसे श्यामला ही बैठी हो मेरे सामने नन्दिता के रूप में। अगले महीने अचानक एक आवश्यक कार्य से कलकत्ता जाना पड़ गया। लगभग दस–बारह साल बाद जाना हुआ था कलकत्ता। लाल बाबा का पता लगाया मैंने। संयोग ही समझिये, अभी भी वह महान योगी अपने पार्थिव शरीर में था। देखते ही पहचान गये मुझे लाल बाबा। उनसे चर्चा की मैंने नन्दिता की और यह भी बतलाया कि श्यामला से बिल्कुल मिलती जुलती है वह। कहीं कोई वैषम्य नहीं है। थोड़ा रूककर आगे बोला – बाबा ! क्या आपकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई?

बाबा मुस्कराये। बड़ी ही रहस्यमयी मुस्कराहट थी वह। कुछ क्षण तक मेरी ओर देखते रहे वह फिर बोले – 'हाँ ! मैंने जो कुछ कहा था वह सत्य है। जब तुमने मुझसे श्यामला की चर्चा की थी तभी सब कुछ समझ गया था मैं। निश्चय ही श्यामला की आत्मा शुद्ध पवित्र और आध्यात्मिक संस्कार सम्पन्न थी। तभी तो आकर्षित हुई थी तुम जैसे आध्यात्मिक प्राण की ओर। काशी आने के लिए क्यों अनुरोध करती थी तुमसे वह? यदि इस पर तुम ध्यान देते तो एक बहुत बड़ा रहस्य अनावृत्त हो जाता तुम्हारे सामने।

यह सुनकर हतप्रभ सा हो गया मैं। जिज्ञासा और कौतूहल भरी

दृष्टि से देखने लगा मैं बाबा की ओर। बाबा काफी देर तक मौन साधे रहे, फिर गम्भीर स्वर में बोले – श्यामला को अपनी मृत्यु का आभास लग चुका था। और वह काशी में शरीर त्याग करना चाहती थी। और इसीलिए आना चाहती थी वह काशी तुम्हारे साथ। ऐं ! क्या कहा आपने ? चौक पड़ा मैं एक बारगी हाँ। मैं ठीक कह रहा हूँ। अपने योग बल से उसी समय सब कुछ समझ लिया था – बाबा ने कहा। नन्दिता के रूप में श्यामला की आत्मा ने ही जन्म लिया है इसमें सन्देह नहीं। और श्यामला के सभी आध्यात्मिक संस्कार उसमें विद्यमान है इसमें भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

यह सत्य है कि यदि किसी कार्य के प्रति इच्छा शक्ति दृढ़ है तो भले ही वर्तमान जन्म में उसे साकार होने का अवसर उपलब्ध न हो, लेकिन अगले किसी न किसी जन्म में साकार अवश्य हो जाती हैं वह।

इसी प्रसंग में बाबा ने आगे कहा – अजित कानोडिया को ही लो। धन के लोभ के प्रति वशीभूत होकर जघन्य अपराध किया था उसने। पहले अपने छोटे भाई और उसकी पत्नी की हत्या की और कुछ साल बाद अवसर देख कर हत्या की उसके पुत्र लक्ष्मण की। इतनी चालाकी और सूझबूझ से तीनों की हत्या की थी कि लोगों को जरा सा भी सन्देह नहीं हुआ पुलिस को भी नहीं। लेकिन मुझे सब पता है। अजित कानोडिया ने कार के ब्रेक को फेल कर दिया था पहले ही। यह सुनकर एक बारगी दंग रह गया मैं। वह दुर्घटना रही होगी – यहीं समझा था मैं। उसके कारण पर ध्यान नहीं दिया था मैंने।

देखा न ! राघोराम के रूप में जन्म लेकर कैसे अपना हक ले लिया लक्ष्मण ने। बाबा ने कहा – छोटे भाई के इकलौते बेटे की हत्या करने का ही परिणाम है कि तीन–तीन विवाह करने पर भी

सन्तान का मुँह देख न सका अभी तक अजित कानोडिया। इसे क्या कहोगे। कर्म फल ही न। कुछ सोचने के बाद लाल बाबा आगे बोले—जीव अपने जीवन की लम्बी यात्रा अकेले नही करता है। पूर्व जन्मों से चले आ रहे परस्पर सम्पर्क के कारण मनुष्य संसार के विभिन्न प्रदेशों में जन्मे हुए व्यक्तियों तथा विभिन्न परिस्थितियों के सम्पर्क में आता है। आत्मा के विकास क्रम में यदि अपने से अधिक उन्नति प्राप्त किसी और मनुष्य से हमारा परिचय हुआ हो और संयोगवश यदि कभी किसी भी जन्म में हमने उसकी सहायता भी की हो, तब वर्तमान जन्म में हम उसकी ओर अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं और उससे हमारा घनिष्ट संबंध स्थापित हो जाता है। इसी संबंध के कारण वर्तमान जन्म में भी हम उन सन्त महात्मा योगी सिद्ध साधक जैसे व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं और इस अनुपम तथा अलौकिक संयोग के कारण ही हमारे अन्दर नवीन शक्तियाँ एवं सामर्थ्य उत्पन्न होते हैं। यही सामर्थ्य प्रत्येक जन्म में हमारी आत्मिक उन्नति का चिन्ह है और है पहचान।

बार-बार जन्म क्यों :— पूर्व जन्मों में की गयी सेवा तथा सद्व्यवहार के फलस्वरूप उससे भी श्रेष्ठ तथा दीर्घ कालीन परोपकार करने का अधिकार मिलता है। ऐसी दशा में महापुरुषों के दर्शन में हमको लाभ पहुँचता है अनुपम ज्ञान प्राप्त होता है तथा उसके फलस्वरूप हमारे पवित्र संबंध जन्मों तक बने रहते हैं तथा हमारी आत्मा परस्पर सहयोग व ज्ञान के कारण उन्नति की ओर अग्रसर होती है। प्रत्येक व्यक्तिगत संबंध भले ही वह प्रेम का हो अथवा द्वेष का हमे एक दूसरे से जोड़ता है। वर्तमान जन्म की क्रिया—प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हम भावी जन्मों में प्रस्तुत होने वाले व्यक्तिगत संबंधों को सुदृढ़ बनाते है। इस जन्म के प्रेम भाव और उस प्रेम भाव से प्रेरित कामों के कारण भविष्य में उन व्यक्तियों के साथ जिनके प्रति हमने

सद्भावनाओं को प्रदर्शित किया है, पुनर्जन्म लेना निश्चित होता है। इस प्रकार वंशागत संबंधों के बाहर एक सच्चा परिवार स्थापित करने तथा अपनी प्राचीन कड़ियों को सुदृढ़ बनाने के लिए मनुष्य बार–बार जन्म लेता है।

यह कहना अप्रांसगिक न होगा कि पश्चिम के परामनोवैज्ञानिक पुनर्जन्म के अन्वेषण तथा शोध कार्य में रत हैं। जिनके आश्चर्यजनक परिणाम सामने हैं और वे परिणाम योग तंत्र की रहस्यमयी विद्याओं और सिद्धियों को प्रामाणित करते हैं। मस्तिष्क में सवा करोड़ ऐसी कोशिकायें हैं जिनमें मनुष्य के पिछले सैकड़ों जन्मों की स्मृतियाँ भरी पड़ी हुई होती है। इसी प्रकार लगभग दो करोड़ ऐसी कोशिकायें भी है जिनमें मनुष्य के आगामी सैकड़ों जन्मों का इतिहास संगृहीत है। जिनको योगबल अथवा विशेष सम्मोहन विद्या द्वारा प्रकाश में लाया जा सकता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि सम्मोहन विद्या योग परक तंत्र की एक परम रहस्यमयी विद्या है। पश्चिम के परामनोवैज्ञानिकों ने इस विद्या का आश्रय लेकर मनुष्य के पिछले जन्मों की स्मृतियों को जागृत तो करने में सफलता प्राप्त ही कर ली हैं। इसके अतिरिक्त प्रोग्रेशन द्वारा भविष्य दर्शन से आने वाले समय में घटित होने वाली घटनाओं तथा समय वातावरण परिस्थितियों आदि को भी जानने समझने लग गये है वे। एक परामनोवैज्ञानिक हैं अलवर्ट डी. रोशा। रोशा ने सर्वप्रथम सम्मोहन विद्या के क्षेत्र में प्रोग्रेशन यानी प्रतीयगमन की प्रक्रिया पर प्रयोग किया और सफलता प्राप्त की। वे अपने विषयों को सम्मोहित करने के पश्चात् उन्हें अपनी आयु से भी पहले के समय में ले जाते और फिर अपने पूर्व जन्म के वातावरण में घटित घटनाओं को पुनः जीने लगता। इसी प्रकार अपने विषयों को भविष्य के समय में भी ले जाने पर प्रयोग किये जिसमे उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। और उसी सफलता ने मनुष्य को उसके अगले

जन्म के जीवनकाल में ले जाने के लिए द्वार खोल दिया। उसमें भी रोशा को सफलता प्राप्त हुई।

यह निश्चित है कि अवचेतन मन शरीर और चेतन मन से मुक्त हो जाता है तो वह समय के किसी भी खण्ड में यात्रा कर सकता हैं वह अतीत और भविष्य दोनों को देख सकता है। वह बीते हुए जन्मों को और आगे आने वाले जन्मों को चलचित्र की भांति स्पष्ट देख सकता है और अनुभव भी कर सकता है। **(विशेष अध्ययन के लिए पढ़े लेखक की दो महत्वपूर्ण पुस्तकें - मरणोत्तर जीवन का रहस्य और परलोक विज्ञान)।**

मस्तिष्क के तीन भाग और ज्ञान तन्तु समूह

मस्तिष्क से संबंधित अब तक के विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि मानव शरीर का महत्वपूर्ण अंग है मस्तिष्क। वह एक से पाँच किलोग्राम तक होता है। उसका निर्माण भूरे तथा सफेद रंग के मांस तन्तुओं से होता है। लगभग ३० अरब इसक़ी स्नायु कोशिकायें एक दूसरे से गुथी हुई रहती है और उसके चारो तरफ हड्डी की मजबूत खोपड़ी होती है जिसमें संचित तरल द्रव्य में मस्तिष्क डूबा रहता है। वह तरल पदार्थ क्या है अभी तक इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिकों को प्राप्त नहीं हुआ है। मस्तिष्क की स्नायु कोशिकाएँ प्राण के कम्पन से आपसे बराबर टकराती रहती है। उस टकराहट से एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगे उस रहस्यमय तरल पदार्थ में उत्पन्न होती है उन्हीं तरंगों को मस्तिष्क तरंग कहते है। सोच विचार और चिन्तन–मनन आदि के समय वे ऊर्जा तरंगें अधिक मात्रा में उत्पन्न होती हैं और विसर्जित भी होती हैं। कामवासना उत्तेजना और क्रोध की अवस्था में उनकी उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती हैं – जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क गरम हो उठता है और पूरा शरीर भी। ऊर्जा तरंगों का विसर्जन शरीर के बाहर भी होता है और शरीर के भीतर भी।

काम वासना के जागरण, सम्भोग किसी प्रकार को उत्तेजना, क्रोध, झगड़ा, लडाई, मार पीट गाली गलौज आदि के समय उन ऊर्जा तरंगों का विसर्जन शरीर के बाहर होता है और बाद में वे ऊर्जा तरंगे स्थानीय वायुमण्डल में घुल मिलकर एक ऐसा वातावरण निर्मित कर देती हैं कि उस वातावरण में शुभ भावनाओं और शुभ विचारों का व्यक्ति भी प्रवेश कर जायेगा तो एक बार उसकी बुद्धि भी तमोगुणी हो जायेगी और उसके मस्तिष्क में वे सब बाते उत्पन्न होने लग जायेगी। जिनकी वे ऊर्जा तरंगे है।

ध्यान, समाधि अथवा चित्त की एकाग्रता के समय अथवा बौद्धिक चिन्तन मनन अध्ययन लेखन आदि की अवस्था में वे ऊर्जा तरंगे शरीर के भीतर समाहित होने लगती हैं। ध्यान अैर समाधि की स्थिति में वे ऊर्जा तरंगे क्रम से षटचक्रो को प्रभावित करती है। बौद्धिक चिन्तन मनन अध्ययन, लेखन आदि का संबंध चित्त की एकाग्रता से है। अतः एकाग्रता की अवस्था में वे ऊर्जा तरंगे मस्तिष्क को ही प्रभावित करने लग जाती है। और यही एकमात्र कारण है कि बौद्धिक औंर ज्ञान का विकास जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो मस्तिष्क असन्तुलित होने लगता है। यदि असन्तुलन बराबर बना रहा और बढ़ता रहा तो व्यक्ति के पागल, विक्षिप्त, चिड़िचिड़ा, क्रोधी, अकर्मण्य, अव्यवहारिक होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार असंगत होता है। वह मूर्खतापूर्ण कार्य करने लग जाता है। उसकी वाणी में रस नही रह जाता। वैज्ञानिकों का कहना हैं कि बिगड़े हुए सन्तुलन को ठीक करने के लिए प्राकृतिक वातावरण में अधिक से अधिक रहना चाहिए। पहाड़ो और जंगलों की ओर निकल जाना चाहिए। खेलकूद में रुचि रखना चाहिए। संगीत, कला, नृत्य आदि में भी रूचि रखना चाहिए। अधिक से अधिक एकान्त में रहना चाहिए। अपने विषय से विपरीत विषयों की पुस्तकें पढ़नी चाहिए। मस्तिष्क

का अपना जो विषय है वह तो है ही इसके अतिरिक्त वह सम्पूर्ण शरीर का भी संचालन करता है। जागृत, स्वप्न सुषुप्ति की अवस्था में हम रहे या रहे गहरी मूर्च्छा अथवा कोमा की अवस्था में हमारा मस्तिष्क प्रत्येक अवस्था में क्रियाशील रहता है। यहाँ तक कि मरणोपरान्त भी कुछ समय तक रहता है क्रियाशील और चैतन्य। अचेतन मस्तिष्क से संबंधित अनेकानेक न्यूरोनल फाइवर्स शरीर के हर अंग में स्थित प्रत्येक घटना तक पहुँच कर सदैव मस्तिष्क से उसका सम्पर्क बनाए रखते हैं।

मस्तिष्क में परिवर्तन :- इसके अतिरिक्त मनुष्य भिन्न–भिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मन और बुद्धि से जो निर्णय करता है, उसकी योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने का दायित्व मस्तिष्क का होता है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मस्तिष्क स्वेच्छाचारी अथवा स्वतंत्र नहीं है। मस्तिष्क के न्यूरान्स की सिनेप्टिक हलचलों में परिवर्तन कर पशु–पक्षियों के प्राकृतिक स्वभाव को परिवर्तित किया जा सकता है। बाघ–बकरी में मैत्री करायी जा सकती है, चूहा बिल्ली को एक साथ रखा जा सकता है और यहाँ तक कि चोर को साधु भी बनाया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं, सिनेप्टिक के हलचलों में इच्छानुसार परिवर्तन करने की क्रिया योग में भी है। यहाँ एक बात बतला देना आवश्यक है और वह यह कि विज्ञान हो या हो योग वह विचार बदल सकता है, स्वभाव भी बदल सकता है, मन भी बदल सकता है, लेकिन किसी का संस्कार नहीं बदल सकता। योग का एक अंग है संप्रज्ञात समाधि। इस अवस्था में जो विचार उत्पन्न होते हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और उनकी तरंगे भी अति सूक्ष्म होती है वे तरंगे एक सेकेण्ड में हजारों मील की यात्रा कर सकती है। वे इतना प्रभावशाली और शक्तिशाली होती है कि किसी भी प्राणी के सिनेप्टिक पर अपना प्रभाव डालकर उसके हलचलों को अपने

अनुकूल परिवर्तित कर सकती हैं।

लगभग चार दशक पूर्व काशी में एक उच्चावस्था प्राप्त योगी रहते थे। नाम था पूर्णानन्द। काशी के केदारघाट के ऊपर रहते थे पूर्णानन्द। एकाकी जीवन था उनका। एक शिष्य था राम आसरे, वही सेवा टहल करता था पूर्णानन्द का। प्रायः सायंकाल के समय उनके यहाँ जाया करता था मैं और फिर योग के विषय पर बातें होती। कई प्रकार की समाधियाँ उन्हें सिद्ध थी विशेष कर सविकल्प समाधि। सविकल्प समाधि की अवस्था में अपने से संबंधित व्यक्तियों अथवा शिष्यों के मस्तिष्क में अपने विचारों को कभी–कभी आवश्यकता पड़ने पर संप्रेषित करते थे पूर्णानन्द। भले ही वह व्यक्ति कितनी ही दूर पर क्यों न हो। पूर्णानन्द की इस परम योग सिद्धि का पता मुझे तब चला जब उन्होंने स्वयं मुझ पर प्रयोग किया उसका। बड़ा ही विचित्र और आश्चर्यजनक अनुभव था वह। उन दिनों कलकत्ता में रहता था मैं। सायंकाल का समय था। वैलूर में गंगा के तट पर मौन साधे चुपचाप नित्य की भांति अपने चिन्तन मनन में डूबा हुआ था मैं। अचानक मेरा मस्तिष्क सन–सन करने लगा और सोचने समझने की शक्ति भी समाप्त हो गयी। शून्यवत् हो गया जैसे मेरा मस्तिष्क। उस अवस्था में केवल मैं का बोध बना रहा अन्य किसी बात का बोध नहीं रह गया था मुझमें। ऐसी स्थिति १५–२० मिनट तक बनी रही लगभग। और उसी रहस्यमयी स्थिति में एकाएक मेरे मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न हुआ – पूर्णानन्द के लिये एक रेशमी चादर रुद्राक्ष की माला और एक ऊनी आसन कलकत्ता से ले जाना चाहिए। इन सबके अलावा कलकत्ता का रसगुल्ला भी।

मैं कलकत्ता से शीघ्र लौटने वाला नहीं था, लेकिन यह विचार होते ही दूसरे दिन सारा सामान लेकर वाराणसी आ गया मैं। और उसी दिन सायकाल के समय एक बड़े से झोले में सभी वस्तुएँ भर

कर ले गया मैं पूर्णानन्द के यहाँ। लगा जैसे वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हों। मुझे देखते ही दोनो हाथ ऊपर उठाकर बोले आओ आओ शर्मा बाबू। तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था मैं। मुझे पक्का विश्वास था कि जरूर–जरूर आओगे आज तुम। मेरा सब सामान लाये हो न? चादर, माला, आसन, रसगुल्ला की हड़िया ... ...।

यह सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा मैं एकबारगी कुछ क्षण तक मुँह बाये पूर्णानन्द को देखता रहा और फिर झोला उनके सामने रखते हुए बोला बाबा। आप कैसे जान गये कि वे सारी वस्तुएँ ले आया हूँ कलकत्ते से?

हो–हो कर खूब हंसे पहले पूर्णानन्द फिर कहने लगे – 'मुझे उन सब वस्तुओं की आवश्यकता थी। जब तुम कलकत्ता चले गये तो उनकी याद आयी मुझे। उमर अधिक हो गयी है न, इसलिए स्मृति का कमजोर हो जाना स्वाभाविक ही है। सोचा तुमको एक चिट्ठी लिख दूँ, सामानों के लिए। फिर मन बदल गया। कौन चिट्ठी लिखने का झंझट करें। आँख बन्द कर देखा, तुम उस समय गंगा तट पर मौन साधे बैठे हुए थे। फिर क्या था? मैंने समाधि लगायी और अपनी आवश्यक वस्तुओं से संबंधित विचार को संप्रेषित कर दिया तुम्हारे मस्तिष्क में तुरन्त उसी समय।

यह सुनकर दंग रह गया मैं एक बारगी। पूर्णानन्द की इस चमत्कारी योगी सिद्धि के विषय में अभी तक सुना ही था मैं लेकिन अब तो प्रत्यक्ष अनुभव भी हो गया था मुझे उस दुर्लभ सिद्धि का। किसी ने मुझे बतलाया था कि बाबा का शिष्य राम आसरे पहले पक्का चोर था। पाकिट मारी भी करता था। रोज झगड़ा और मारपीट करना उसका एक प्रकार से नियम बन गया था। इसके अलावा शराब भी पीता था और जुआ भी खेलता था वह। पुलिस की कई बार मार भी पड़ी थी उस पर। तीन चार–बार जेल का भी आनन्द लिया था

उसने। प्रायः बाबा को प्रणाम करने आ जाया करता था वह नराधम। नही, नहीं प्रणाम करने नहीं आता था। ऐसी श्रद्धा कहाँ थी उस पापी के ह्रदय में। वह तो बाबा के यहाँ आता था चोरी करने के लिए। बाबा के गुरु की मूंर्ति थी चाँदी की। कम से कम आधा सेर चाँदी की तो रही ही होगी वह मूर्ति। अपने गुरु की उस रजत मूर्ति की नित्य पूजा करते थे बाबा। पूजा करने के बाद ही कोई काम करते थे वह। एक दिन गुरु की मूर्ति गायब मिली। बड़ा कष्ट हुआ बाबा को। दारुण पीड़ा से व्यथित हो उठे वह। आँख बन्द करते ही समझ गये सब कुछ। राम आसरे आ गया उनके मानस पटल पर। उसने ही मूर्ति की चोरी की है यह समझते देर न लगी उस योगी को। सायंकाल का समय था। अपने आसन पर मौन साधे गम्भीर मुद्रा में बैठे थे पूर्णानन्द महाशय। उसी समय उनके सामने आकर खड़ा हो गया राम आसरे। उसका सिर मुड़ा हुआ था। शरीर पर गेरुआ वस्त्र था। साधु हो गया था राम आसरे। उसके सारे अवगुण और सारे दुर्गुण समाप्त हो चुके थे और उनका स्थान ले लिया था अब सद्गुणों ने। पहले जैसा राम आसरे नहीं था। उसमे घोर परिवर्तन हो चुका था। त्याग और वैराग्य से भर चुका था उसका अब ह्रदय जिसका भाव स्पष्ट झलक रहा था उसके चेहरे पर उस समय। सिर उठाकर देखा पूर्णानन्द ने। हाथों में गुरु की मूर्ति लिये खड़ा था राम आसरे। उसकी आँखों से झर–झर कर आँसू गिर रहे थे गालो पर। निश्चय ही वे आँसू पश्चाताप के और ग्लानि के थे इसमें सन्देह नहीं। निश्चय ही उस महान योगी ने अपने विचार संप्रेषण की सिद्धि के बल पर आमूल चूल परिवर्तन कर दिया था और जिसके फलस्वरूप एक सिद्ध हस्त चोर से साधु बन गया था राम आसरे। पूर्णानन्द तो नही रहे संसार में लेकिन उनका शिष्य राम आसरे आज भी जीवित है। अस्सी वर्ष की आयु हो चुकी है उसकी। एक परम सन्यासी के रूप में हाथ

में झोला और कमण्डल लिये कभी कदा काशी की गलियों में या फिर किसी घाट की सीढ़ियों पर बैठा हुआ दिखलायी पड़ जाता है मुझे वह। फिर हम दोनों एक दूसरे को देखकर मुस्करा देते हैं एक साथ।

ज्ञान तन्तु समूह

यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अनोखे तिलस्म से भरे हुए और अत्यन्त रहस्यमय मस्तिष्क पर शोध एवं अन्वेषण कार्य वैज्ञानिक कर रहे है और उनको अब तक जो तथ्य उपलब्ध हुए है और भविष्य में होंगे हजारो वर्ष पहले उनसे भारतीय योगी पूर्ण रूप से परिचित थे इसमें सन्देह नहीं। मस्तिष्क का स्बसे रहस्य भाग सरेब्रेल–कारटेक्स है। उसी के द्वारा जीवन के सारे क्रिया कलापों का नियन्त्रण होता है। मनुष्य के ज्ञान, बुद्धि, विवेक, तर्क तथा सोचने समझने की क्षमता न्यूरान्स पर आधारित है। न्यूरान्स जितने सूक्ष्म सक्रिय और सक्षम होंगे उतनी ही उन सबकी मात्रा अधिक होगी मस्तिष्क द्वारा विचार संप्रेषण की गति कोशिकाओ में उत्पन्न होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगो पर आधारित है। जिसका संबंध रेबरेटिंग सर्किट से होता है। उसी में स्मृतियों का भण्डार भी है।

मनुष्य के शरीर में ज्ञान तन्तु समूह के दो भाग है। १. मस्तिष्क और मेरुदण्ड के अन्दर खाली स्थान। २. छाती, पेडू और पेट। इन दोनों स्थानों में ज्ञान तन्तु समूह का माया जाल फैला हुआ है। प्रथम ज्ञान तन्तु समूह को सरीब्रे स्पाइनल सिस्टम कहते है। और दूसरे विभाग को कहते है सिम्पैथिटिक सिस्टम।

शरीर में इच्छानुसार क्रियाओं और भावनाओं का व्यापार प्रथम प्रकार के ज्ञान तन्तु समूह करते हैं और बुद्धि, पुष्टि, पाचन क्रिया आदि अनैच्छिक स्वाभाविक व्यापार दूसरे तरह के ज्ञान तन्तु समूह करते है। शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गंध आदि की क्रिया और व्यापार मस्तिष्क

और मेरुदण्ड के ज्ञान तन्तुओं के समूह करते है। इनके अतिरिक्त विचार करने की क्रिया भी इन्ही के द्वारा होती है मस्तिष्क को समझे मुख्य तार घर। मेरुदण्ड के ज्ञान तन्तु बाल से भी पतले और सूक्ष्म होते हैं। बुद्धि जैसे समस्त मानस व्यापार मुख्य मस्तिष्क में होते हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है – १.. मुख्य मस्तिष्क, २. गौण मस्तिष्क, ३. अधः मिश्रित मस्तिष्क जिसे सेरीब्रम कहते हैं। इसकी सीमा में मस्तक की खोपड़ी, कपाल प्रदेश के आगे मध्य और पीछे का हिस्सा होता है। गौण मस्तिष्क को सेरीवेलम कहते हैं। इसकी सीमा में मस्तक की खोपड़ी के नीचे का तथा पिछले भाग का समावेश हैं। अधः स्थित मस्तिष्क को मेडुला आण्लोन्गटा कहते हैं। वह मुर्गी के अण्डे के आकार का है। जिसके अन्दर पीले रंग का द्रव भरा है एक रहस्य की बात यह है कि उस अज्ञात और रहस्यमय द्रव में अत्यन्त सूक्ष्म एक हजार की संख्या में ज्ञान तन्तुओं का समूह तैरता रहता है। जिसे योग की भाषा में सहस्त्रार कहते हैं। जिसमे हल्का–सा भी आघात लगने पर व्यक्ति मूर्च्छित हो सकता है, पागल हो सकता है और उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

उन ज्ञान तन्तुओं का एक सिरा ब्रह्मरन्ध्र से जुड़ा हुआ है और दूसरा सिरा मेरी दण्ड के ज्ञान तन्तु समूहों से। वह अण्डाकार मेडुला 'आण्लोन्गटा' मेरुदण्ड के शिखर पर स्थित है। उसके ज्ञानतन्तुओं का जो सिरा मेरुदण्ड से जुड़ा हुआ है वह ईडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी के रूप में मेरुदण्ड के पोल के भीतर से नीचे मूलाधार चक्र तक आयी है। वे तीनों नाड़ियों में इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी को मनोवहा नाड़ी और प्राण वहा नाड़ी भी कहते हैं क्योंकि इड़ा नाड़ी में मन का प्रवाह है और पिंगला में है प्राण का प्रवाह। सुषुम्ना शून्य नाड़ी है उसमें आत्म ऊर्जा का प्रवाह होता है। लेकिन तब जबकि

कुण्डलिनी का जागरण होता है। (कुण्डलिनी के विषय में विशेष अध्ययन के लिए पढ़े 'कुण्डलिनी शक्ति' ले. अरुण कुमार शर्मा)

शरीर में शक्ति के नौ केन्द्र :- ऊपर से लेकर नीचे तक मेरुदण्ड में ज्ञान तन्तुओं का एक लम्बा समूह है और जिससे संबंधित असंख्य ज्ञान तन्तु का जाल सारे शरीर में फैला हुआ है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि शरीर में जितने और जितने प्रकार के ज्ञान तन्तु हैं वे मनोविकार से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। यदि अधिक समय तक मस्तिष्क मनोविकार से ग्रस्त है तो नाना प्रकार के मानसिक रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना बन जाती हैं। भूत प्रेतादि अशरीरी आत्माएँ भी विकार ग्रस्त मस्तिष्क से प्रभावित होकर अनेक प्रकार का कष्ट पहुँचाती हैं। इसलिए मस्तिष्क को स्वच्छ रखना आवश्यक है और यह तभी सम्भव हैं जबकि हम सदैव निर्भय रहे, प्रसन्न रहे, उत्साह से भरे रहे हमारे विचार रचनात्मक हो, और आत्म विश्वास बना रहे। इन सबसे ज्ञान तन्तुओं का पोषण होता हैं और वे बराबर सक्रिय भी रहते हैं।

मेरुदण्ड में जो ज्ञान तन्तुएँ हैं उनकी कुल नौ ग्रन्थियाँ हैं। वे ग्रन्थियाँ नौ प्रकार के भिन्न–भिन्न शक्तियों के केन्द्र हैं। जिनको योग की भाषा में चक्र कहते हैं। नौ में छः चक्रों को क्रमशः १. आधार चक्र, २. स्वाधिष्ठान चक्र, ३. मणिपूरक चक्र, ४. अनाहत चक्र, ५. विशुद्ध चक्र, ६. आज्ञाचक्र।

साधना की दृष्टि से मानव शरीर को दो भागों में विभक्त किया गया है – जिनको ज्ञान खण्ड और कर्म खण्ड कहते हैं। कण्ठ से ऊपर का भाग ज्ञान खण्ड हैं। इस खण्ड में सभी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। कण्ठ से नीचे का भाग कर्म खण्ड है। इस खण्ड में सभी कर्मेन्द्रियाँ हैं। आज्ञाचक्र के छोड़कर शेष पाँच चक्र कर्म खण्ड के अन्तर्गत हैं। आज्ञाचक्र ज्ञान खण्ड में हैं। आज्ञाचक्र समस्त प्रकार के ज्ञान विज्ञान

का केन्द्र समझा जाता है।

उपर्युक्त ज्ञान तन्तु समूहों के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार का भी ज्ञान तन्तुओं का समूह हैं। जिनकी तीन ग्रन्थियाँ अथवा चक्र हैं और जिनको योग में कहते हैं सहस्त्रार चक्र, सोमचक्र, पियूष चक्र। ये तीनो चक्र भी ज्ञान खण्ड में हैं। ये तीनों चक्र क्रमशः अद्यः स्थित मस्तिष्क (मेडुला आण्लोन्गाटा) मुख्य मस्तिष्क और गौण मस्तिष्क (सेरीवेलम) स्थित है। इनमें अद्यः स्थिति मस्तिष्क स्थित सहास्त्रार चक्र का संबंध ब्रह्मरन्ध्र द्वारा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड और उसमें स्थित समस्त लोक लोकान्तरों से समझना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों चक्रों की भी अपनी–अपनी शक्तियाँ है। जिनको तांत्रिक साधना भूमि में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती कहते हैं। दूसरी दृष्टि से नौ चक्रों की शक्तियों को साधना भूमि में नौ दुर्गा भी कहते हैं। सोमचक्र का संबंध सूक्ष्म शरीर से है जिसकी अभिव्यक्ति नेत्रों द्वारा होती है। नेत्र ज्योति अथवा नेत्र का प्रकाश सोमचक्र का परिणाम हैं। इसके बाद पियूष चक्र का महत्व है। इस चक्र से ब्राह्म मुहुर्त में तीन बूंद अमृत का क्षरण नित्य होता है। अमृत के उन तीनों बूंदो का पर्याय सत्यं शिवम् और सुन्दरम है। सत्यं शिवं सुन्दरम् अमृत के तीन बूंद है। पहला बूंद जीभ को प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरूप मुख सूखता नहीं, हमेशा उसमें पानी का अस्तित्व बना रहता है मृत्यु के एक दिन पूर्व मुख को वह एक बूंद प्राप्त होना बन्द हो जाता हैं, जिसके फलस्वरूप मृत्यु पूर्व मनुष्य का मुख सूखने लगता है। दूसरा बूंद हृदय को प्राप्त होता हैं, जिससे हृदय को हर क्षण नैसर्गिक गति प्राप्त होती रहती हैं। तीसरी बूंद नाभि को होता हैं प्राप्त। जिसके फलस्वरूप परावाणी की उत्पत्ति होती हैं जो क्रमशः पश्यन्ति, मध्यमा, के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में बैखरी वाणी द्वारा मुख से प्रकट होती हैं। किन्तु मरणासन्न अवस्था में वह बूंद नाभि को प्राप्त नहीं

होता है और यही कारण हैं मृत्यु के पूर्व वाणी बन्द हो जाती है। ऐसी ही स्थिति ह्रदय को प्राप्त होने वाली बूंद की भी है। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व ह्रदय को भी बूंद प्राप्त होना समाप्त हो जाता है, जिससे ह्रदय काम करना बन्द कर देता है।

विशेष ज्ञान तन्तुओं का कार्य :- विशेष ज्ञान तन्तुओं का प्रभाव के अन्तर्गत स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र है। इस तंत्र के द्वारा विशेष ज्ञान तन्तुएँ शरीर में स्वाभाविक कार्य करती हैं। श्वास लेना, पलकों का अपने आप उठना गिरना, ह्रदय का अपने आप धड़कना, अपने आप अंतड़ियों का काम करना स्वाभाविक क्रिया के अन्तर्गत है। इसके लिए किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता स्वयं होते हैं। उन पर प्रकृति का अधिकार है। प्रकृति द्वारा ही वे संचालित होते है। उन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं। योग तांत्रिक साधना भूमि में तीन भाव सात आचार है। पशुभाव, वीर भाव और दिव्य भाव—ये तीन भाव है। वामाचार कौलाचार समयाचार आदि सात आचार हैं।

एक योग तंत्र साधक के लिए सर्वप्रथम तीसरे प्रकार के भाव को उपलब्ध होना हैं। जब तक मनुष्य के शरीर पर प्रकृति का अधिकार हैं – तब तक वह पशु है। जैसे पशु पराधीन होता है उसी प्रकार मनुष्य भी प्रकृति के पराधीन है। इसी को कहते हैं 'पशुभाव'! इसके बाद है 'वीर भाव'! इन्द्रियों विशेषकर प्रकृति द्वारा संचालित शरीर के मुख्य अंगों पर अपना अधिकार प्राप्त कर लेना वीरभाव है। वीरभाव सम्पन्न साधक के आधीन होती हैं इन्द्रियाँ और आधीन होते हैं। प्रकृति द्वारा क्रियाशील अथवा संचालित शरीर के अंग भी। ह्रदय उसके आदेश पर धड़कता है, और आदेश पर वह धड़कन बन्द भी हो सकती हैं और पुनः धड़क सकता है। इसी प्रकार पलकों और अतड़ियों पर भी होता है उसका अधिकार। श्वास—प्रश्वास तो होता ही हैं उसके वश में।

लगभग बीस पच्चीस वर्ष पूर्व काशी में एक ऐसे ही वीर भाव सम्पन्न योगी निवास करते थे। नाम था कीर्तिनाथ। नाथ सम्प्रदाय से संबंधित थे वे। लगातार कई दिनों तक उनकी आँखें बन्द नहीं होती थी। पलके खुली रहती थी, झपकती ही नहीं थी। यहाँ तक कि सोते समय भी। इसी प्रकार महीनों अन्न जल भी ग्रहण नहीं करते थे कीर्तिनाथ। लेकिन इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर किंचित मात्र भी नहीं पड़ता था। सदैव प्रसन्न मुद्रा में मुस्कराते रहते थे कीर्तिनाथ। एक बार नहीं कई बार उन्होंने अपने हृदय की धड़कन को घंटो बन्द रखा था मैंने स्वयं उनकी इस यौगिक क्रिया को देखा था। काशी के लब्ध प्रतिष्ठित डॉक्टरों ने उस अवस्था में जांच की थी अपनी अपनी दृष्टि से उनकी। सभी आश्चर्यचकित थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि हृदय की धड़कन रूक जाने पर वह साधु जीवित हैं पूरे चार घण्टे।

कीर्तिनाथ की मुझ पर अहैतुकी कृपा थी। जब तक वह योगी काशी में था तब तक योग परक विषयों पर प्रायः नित्य ही सत्संग मेरा होता था उस दिव्यात्मा के साथ। उस अवधि में कई दुर्लभ यौगिक चमत्कार देखा मैंने उनका। जिसे यहाँ लिपिबद्ध करना अप्रासंगिक होगा। एक बार सत्संग के समय कीर्तिनाथ ने कहा–प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। उसका सत्वगुण आकाश तत्व है। रजोगुण वायु और जल है। तमोगुण अग्नितत्व और भूतत्व है। इस प्रकार प्रकृति का पंचतत्वों पर पूरा अधिकार है। निर्माण नाश और रक्षा – उसका नैसर्गिक कार्य है। जिस प्रकार पंच भूत तत्वों से मानव शरीर की रचना हुई है उसी प्रकार पंच भूत तत्वों से जगत का भी हुआ है निर्माण। इसीलिए कहा गया है कि जगत में जो कुछ भी है वह सब मानव शरीर में भी विद्यमान हैं। एक सफल और सिद्ध योगी पंच तत्वों का आश्रय लेकर प्रकृति को पराजित करता हैं और अपने शरीर पर

अधिकार प्राप्त कर लेता हैं इस प्रकार का वीर भावापन्न योगी सम्पूर्ण जगत को भी अपने अधिकार में कर लेता है। प्रकृति उसकी अनुगामिनी हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में प्रकृति से अपने इच्छानुसार कार्य सम्पादित करा सकने में समर्थ हो जाता है वह इसमें सन्देह नहीं। वीर भाव के बाद है दिव्य भाव। दिव्य भावापन्न योगी की सहचरी होती है प्रकृति। इस अवस्था में प्रकृति की सहायता से किसी भी भौतिक वस्तु की सृष्टि कर सकने में समर्थ होता है दिव्य भावापन्न योगी।

उपर्युक्त अवस्थाओं के बाद आता है प्रकृति सम्भोग। यह साधक की अवर्णनीय विशेष अवस्था है। साधक का जो पुरुष है वह प्रकृति से युक्त होता है। उससे तादात्म्य स्थापित करता है। दोनों एकाकार होकर अद्वैतानुभूति को उपलब्ध होते हैं। इसी अवस्था को बौद्ध तंत्र महासुख और शाक्त तंत्र कहता है सामरस्य महामिलन। (पढ़े— 'योगतांत्रिक साधना प्रसंग ले. अरुण कुमार शर्मा)।

अब हम आते हैं मुख्य विषय पर। जैसा कि कहा जा चुका है — दूसरे प्रकार का ज्ञान तन्तु समूह का संबंध स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र से संबंधित है। दोनों प्रकार के ज्ञान तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क जिस शक्ति तत्व को सम्पूर्ण शरीर में समान रूप से वितरित करता है — वह है प्राण तत्व की गति शक्ति। जिसके कारण सभी अंग संचालित और क्रियाशील होते है शरीर के। शरीर विज्ञान उसी को कहता है नर्वफोर्स (NERVE FORCE)। योग के अनुसार प्राणतत्व की उस शक्ति की गति विद्युत गति से भी अधिक है। पाँच प्रकार के प्राण है — उन पाँचों प्राण के मिश्रण से तीन प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं गति शक्ति (फोर्स) बल शक्ति (पावर) और स्थिर शक्ति (एनर्जी)। इन तीनों शक्तियों के भिन्न—भिन्न तीन रूप है। इस प्रकार नौ रूप हैं और जिनका स्थान शरीरस्थ नौ केन्द्र अथवा नौ चक्र हैं। यदि मस्तिष्क

द्वारा ज्ञान तन्तु समूहों में गति शक्ति का प्रवाह न हो तो शरीर में रक्त का प्रवाह न हो, हृदय की क्रिया न हो, फेफड़े का काम न हो, श्वास–प्रश्वास की क्रिया भी न हो। कहने की आवश्यकता नहीं शरीर की आन्तर बाह्य सभी क्रियायें प्राण की उसी गतिशक्ति (फोर्स) द्वारा होती है। प्रवाह बन्द होने का अर्थ है मृत्यु। प्रवाह बन्द होते ही ज्ञान खण्ड और कर्म खण्ड एक दूसरे से तुरन्त अलग हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भीतर से सिर और धड़ एक दूसरे से अलग हो जाता है। दोनों का भार यानी वजन भी अलग–अलग हो जाता है। किसी मृत व्यक्ति का सिर हाथों में लीजिये। उसका भार या वजन कितना है? इसका अनुभव हो जायेगा। जीवित व्यक्ति के सिर के भार अथवा वजन का अलग से अनुभव नहीं होगा, इसलिए कि वह धड़ से जुड़ा हुआ होता हैं। लेकिन एक आश्चर्य की बात अवश्य है और वह यह कि प्राण की गति शक्ति का प्रवाह रूक जाने पर भी उससे उत्पन्न होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगे मस्तिष्कीय कोशिकाओं से काफी समय तक निकलती रहती है। जिसके फलस्वरूप सिर गर्म रहता हैं मृत्यु के बाद भी कुछ अवधि तक। यह एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था है कि जिसमें मृतक अपने अन्तःकरण में अपने आस–पास घटने वाली घटनाओं का अनुभव करता है। लेकिन उसका विरोध या प्रतिरोध करने में असमर्थ होता है। (इस विषय पर विशेष अध्ययन के लिए पढ़े मरणोत्तर जीवन का रहस्य ले. अरुण कुमार शर्मा)

मणिपूरक चक्र :- योग का यह विशिष्ट और अतिमहत्वपूर्ण चक्र है। इसके नीचे के दो चक्र मूलाधार और स्वाधिष्ठान सदैव क्रियाशील रहते है। उनका संबंध जागृत और सुषुप्ति अवस्था से है। जब तक हम जागते रहते हैं तब तक स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय रहता हैं। इसी प्रकार हमारी सुषुप्ति अवस्था में क्रियाशील हो जाता है मूलाधार चक्र।

तीसरा चक्र मणिपूरक चक्र है। विशेष ज्ञान तन्तुओं का समूह है इस चक्र में। जिसका स्थान नाभि है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो शरीर के सभी अंगो से यह अंग अतिमहत्वपूर्ण है। इसे उपांग कहते हैं इसलिए कि अन्य सभी अंगों की श्रेणी में इसकी गणना नहीं होती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नाभिकेन्द्र यानी मणिपूरक चक्र में मन का स्थान है। स्वप्न का संबंध मन से है। जागृत और सुषुप्ति के बीच स्वप्नावस्था है। उस अवस्था में मणिपूरक चक्र सक्रिय होता है। मणिपूरक चक्र का संबंध तीनों काल से है। इसलिए स्वप्नावस्था में हमे किसी न किसी रूप में भविष्य की झांकी मिल जाती है तो कभी अतीत की भी। वास्तव में स्वप्न की अवस्था अन्य दोनों अवस्थाओं से अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण है इसलिए कि वह यथार्थ के निकट होता है। और यही कारण है कि स्वप्न काल से हमे भौतिक जगत और अपने भौतिक शरीर का ज्ञान नहीं रहता है। वह पराभूत हो जाता है। लेकिन जागने पर स्वप्न में होने वाले ज्ञान और अनुभवों का स्मरण बना रहता है। इसीलिए जागृत से स्वप्न का मूल्य अधिक है।

अधिकांश मानसिक व्यापार तो मस्तिष्क में ही होते हैं इसलिए एक प्रकार से मन का स्थान तो मस्तिष्क ही होना चाहिए, किन्तु शरीर के आभ्यन्तर मुख्य अवयवों का नियामक और संचालक नाभि स्थित मन ही है। मणिपूरक को योग के अनुसार शरीर में एक अत्यन्त आवश्यक चक्र माना गया है। मस्तिष्क जिस प्रकार श्वेत और भूरे रंग के पदार्थ से बना हुआ है। उसी प्रकार इस चक्र में भी वही द्रव्य विद्यमान है। एक बात यह भी है कि जीवन तत्व का संचय इसी चक्र में होता है। मन और जीवन तत्व का केन्द्र मणिपूरक चक्र को होने के कारण योगीगण इसी चक्र पर ध्यान लगाते हैं। और सहज ही उन्हें ध्यान योग में सफलता प्राप्त हो जाती है और तीनों काल को करतलवत देखने क्षमता भी उसे शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

पंचम पात्र

जीवन की गुप्त और रहस्यमयी शारीरिक किरणें

मानव शरीर के महत्व और उसकी गरिमा के विषय में अब तक जो कुछ हमने लिखा, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव शरीर का सार्वभौमिक मूल्य क्या है? अब हम इस अध्याय में वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर के आन्तरिक स्वरूप पर विचार करेंगे जो अपने आपमे ज्ञानवर्धक है।

शरीर में अपने ढंग के परमाणु परिवर्तक एटामिक रियेक्टर भी संख्यातीत हैं। मानव शरीर में असंख्य नन्हें–नन्हें बिजली घर हैं और है नन्हें–नन्हें एटामिक रियेक्टर। जो आपस में मिल जुल कर किस प्रकार जीवन की प्रक्रिया को चलाते है–उसको समझना साधारण बात नहीं है। उनकी प्रक्रियाओं द्वारा जीवन, उसके स्पन्दनों तथा शैशव किशोर, तारुण्य और वार्धक्य का आरोपण और नियन्त्रण भी विचित्र ढंग से होता हैं।

'शारीरिक विद्युत' का अध्ययन विज्ञान के क्षेत्र में कई सीढ़ियाँ चढ़ चुका है। परन्तु शरीर से भी किरणें निकलती है, उस विकीरण द्वारा शरीर के अंग–प्रत्यंग में उसकी यात्रा लीलाओं में तथा उसकी

तरुणाई के आकर्षण और रूप निर्धारण में बड़ी आश्चर्यजनक बातें होती हैं। इन सब बातों का अध्ययन अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। फिर भी वैज्ञानिक बड़े मनोयोग कौतूहलपूर्वक जीवन की परिभाषा, प्रक्रिया और यौवन के रहस्य तथा उनसे सम्बद्ध विकिरणों को समझने और उद्‌घाटित करने में लगे हुए हैं।

शारीरिक किरणों की विस्मयकारी लीला

जीवन और यौवन का रहस्य नये बनने वाले कोशिका यूथों, मज्जा, मस्तिष्क, मांस तन्तु और स्नायु तन्तुओं में विशेष निहित रहता है। इन सभी कोशिकाओं तथा समस्त सजीव प्रोटिनों में लौह चुम्बकत्व गुण धर्मवती धातुओं की विशेषताएं होती हैं। परन्तु इन सभी सजीव प्रोटिनों में लौह चुम्बकत्व गुण धर्मवती धातुओं की विशेषताएँ होती हैं परन्तु इन सभी सजीव प्रोटीनों में उक्त विशेषताएँ तभी तक वर्तमान रहती हैं। जब तक वे न्यूक्लिक एसिड युक्त होती हैं, इनमें विद्युत संचालकता तथा चुम्बकीय ध्रुवीय भवन का गुण होता है। इन सभी प्रकार के कोशिका यूथों की विविध कार्यशीलता और क्षमता में शरीर में जीवन की प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली आन्तरिक पराकासनी किरणों का सबसे बड़ा हाथ होता है। वे किरणें कोशिकाओ के विभाजन या विखण्डन को उत्तेजित एवं सन्दीप्त करती है। रक्त के प्रकिण्व (ऐन्जाइन्स) तथा विद्रव (सिरम) इन पराकासनी किरणों के सबसे बड़े उद्‌भव स्त्रोत होते हैं। जैसे–जैसे मनुष्य की अवस्था बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे रक्त के विद्रव के प्रकाशात्मक (आप्टिकल) गुण धर्म शिथिल होते जाते हैं। रक्त विद्रव के प्रकाशात्मक गुण धर्म का घटना ही वृद्धावस्था का अग्रदूत होता है। योगीगण उक्त गुण धर्म को घटने नहीं देते। अपनी प्राण शक्ति से उसे रोक देते हैं और इसीलिए वे दीर्घकाल तक यौवन सम्पन्न बने रहते हैं। अपनी हिमालय यात्रा में हमने ऐसे कई योगियों को देखा जो सौ सवा सौ वर्षो से चिर यौवन

सम्पन्न थे। उनके बाल काले और घने थे। दाँत भी युवकों जैसे थे। शरीर में स्फूर्ति और यौवन की ताजगी भी थी। योग की जिस क्रिया से यह कार्य सिद्ध होता है उसे प्राण संकोचिनी क्रिया कहते है। वह क्रिया कैसे की जाती है यह हमे एक योगी ने बतलाया था और हमने वह क्रिया स्वयं की भी थी, जिसके फलस्वरूप उसका प्रभाव शरीर के आन्तरिक और बाह्य अंगों पर पूरे तीस वर्ष तक रहा। फिर दुबारा हमने नहीं की वह क्रिया किसी कारणवश।

पराकासनी किरणें

अवस्था बढ़ने पर या अन्य कारणों से वार्धक्य तभी आता है जब ये पराकासनी किरणें उत्तरोत्तर दुर्बल होती जाती है। शरीर के भीतर की ये पराकासनी किरणे किटाणुनाशक होती है। तथा बिमारियों को उत्पन्न नहीं होने देती।

चार हजार वर्ष पूर्व योग विज्ञान ने जिस प्रयोग को सिद्ध कर दिया था उसी प्रयोग को अब जाकर विज्ञान ने मान्यता दी है। योग विज्ञान के अनुसार सूर्य से भी प्रचुर मात्रा में पराकासनी किरणें मनुष्य को प्राप्त होती हैं। यदि हम उचित ढंग से पराकासनी किरणों को सूर्य से ग्रहण करें तो पहला लाभ तो यह होगा कि हम दीर्घायु को उपलब्ध होंगे। शीघ्र रोग ग्रस्त नहीं होंगे। दूसरा लाभ यह कि हमारे शरीर विशेष कर मुख का आकर्षण बढ़ेगा उसकी कान्ति बढ़ेगी और तीसरा लाभ यह कि हमारे नेत्र की ज्योति में वृद्धि होगी और चौथा लाभ हमे यह होगा कि हमारे यौवन के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा। ये सन्तानों में भी जननाणुओं को भी प्रभावित कर गुणों को उत्पन्न करते हैं।

सूर्य से पराकासिनी किरणें कब और कैसे प्राप्त करें?

सूर्योदय की अवस्था में चार काल होते हैं – १. उषा काल २. अरुणोदय काल, ३. सूर्योदय काल और ४. प्रातः काल। पूरब का

आकाश जब तक सफेद रहता हैं और पश्चिम दिशा में जब तक तारे झिलमिलाते रहते हैं तब तक के समय को ऊषा कहते हैं। और उसके बाद पूरब का आकाश पटल सिन्दूरी रंग हो जाता है और जब तक उसका अस्तित्व रहता है तब तक के समय को अरुणोदय काल कहते है। इन दोनों कालों में पराकासिनी किरणें अत्यधिक मात्रा में विकीर्ण होती है। उस समय पद्मासन की मुद्रा में प्राकृतिक वातावरणमय स्थान पर बैठकर नेत्रों को खोलकर स्थिर भाव से एकाग्र चित्त होकर बिना पलक झपकायें दोनों काल के वर्णो को देखना चाहिए। ऐसी अवस्था में नेत्रों के माध्यम से पराकासिनी किरणें प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती हैं। इसका लक्षण यह है कि सारे शरीर में कम्पन जैसा होने लगता है। और होने लगता भीतर शान्ति का अनुभव भी।

उसके बाद आता है सूर्योदय काल सूर्य अपने पूरे स्वरूप में क्षितिज पटल पर उदय तो हो जाता है, लेकिन कुछ समय तक उस पर अपने नेत्रों को स्थिर रखा जा सकता है। यदि पूर्ववत् सूर्य बिम्ब को भी हम स्थिर भाव से बिना पलक झपकायें देखे तो सूर्य द्वारा हमें ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की उपलब्धि होगी। क्योंकि उस अल्प काल में सूर्य रश्मियों द्वारा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का विकीरीकरण होता है। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा हमारे शरीर के रक्त प्रवाह में सहयोगी सिद्ध होती है। मस्तिष्क के विकारों को भी नष्ट करती है। हृदय को भी शुद्ध रखती है।

अन्त में आता है प्रातःकाल। इस काल में सूर्य चमकने लगता है और उस पर नेत्र स्थिर नहीं हो पाता। उस अवस्था में ताम्रपात्र में जल लाल पुष्प और लाल चन्दन डाल कर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए। आदित्य हृदय स्तोत्र सूर्य सहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्त्र नाम का खड़े होकर पाठ करना चाहिए। इन कार्यो के फलस्वरूप दारिद्रय नाश, रोग नाश, गृह कलह, आपसी द्वेष आदि समाप्त हो जाते हैं और

अन्य लाभ भी होते हैं।

शरीर से विकीर्ण होने वाली दो प्रकार की किरणें

इस प्रकार बाहर से प्राप्त होने वाली पराकासनी किरणें शरीर में 'डी.–खाद्योज' उत्पन्न करता है। रक्त चाप घटती है। स्नायुमण्डल में स्फूर्ति भरती है। तथा रक्त कणों की संख्या में वृद्धि करती हैं। ऊपर के कथनानुसार रक्त विद्रव के आधुनिक प्रकाशात्मक गुण धर्म के संबंध में बड़ी रोचक बात तो यह है कि प्राचीन भारतीय दर्शन, योग, तथा तंत्र ग्रन्थों में जीवन, प्राण, तारुण्य को प्रकाश रूप माना गया है। योग परम्परा का विश्वास है कि शरीरान्त होने पर योगी के कपाल प्रदेश से और सांसारी व्यक्ति के मुख से अंगूठा के आकार का एक अदृश्य प्रकाश की लौ निकलकर अनन्त अन्तराल में विलीन हो जाती है।

काशी में एक महान योग पुरुष निवास करते थे। किसी कारणवश उनका नाम यहाँ स्पष्ट नहीं किया जायेगा। उन योग पुरुष के अन्तिम काल में वहाँ उपस्थित था मैं। उनका सिर मेरी गोद में था और वे लम्बे लेटे हुए थे। हृदय की धड़कन तेज होती जा रही थी धीरे–धीरे। लेकिन कुछ क्षण बाद एकाएक धड़कन बन्द हो गयी और उसी के साथ उस महापुरुष के ब्रह्माण्ड का मध्य भाग 'फिस्' की आवाज करते हुए लगभग आधा इंच फट गया। और उसी फटे हुए स्थान से एक नीले रंग की ज्योति धीरे–धीरे निकली, जिसका आकार दीपक की 'लौ' की तरह था। वह ज्योति अत्यन्त स्निग्ध आकर्षक और तेजोमयी थी और उसमें से रूपहले रंग की रश्मियाँ प्रस्फुटित हो रही थी।

वह रहस्यमयी ज्योति पहले पूरे कमरे का चक्कर लगायी और तीव्रगति से गंगा की ओर खुलने वाली खिड़की के बाहर निकलकर लुप्त हो गयी। और इधर उक्त महापुरुष का पूरा पार्थिव शरीर बर्फ की तरह शीतल हो चुका था। निश्चय ही वह नील ज्योति 'आत्म

ज्योति' रही होगी उस महापुरुष की।

शरीर से निकलने वाली किरणों में दो प्रकार की किरणें अत्यधिक महत्वपूर्ण होती हैं —**१. इनफ्रारेड विकिरण २. अन्य चुम्बकीय विकिरण** यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इनफ्रारेड तथा पराकासनी किरणें भी विद्युत चुम्बकीय तरंगे ही हैं।

सभी ठोस वस्तुओं का यह साधारण धर्म है कि निरपेक्ष (–२७३ अंश सेन्टीग्रेड या शतांश) तापक्रम के ऊपर उनसे सदैव इन्फ्रारेड विकिरण हुआ करता हैं। हमारे शरीर से प्रत्येक अवस्था में किसी न किसी मात्रा में यह विकिरण हुआ करता है। साधारण जन भाषा में इन्हें उष्णता की किरणें कहा जाता हैं। वैसे इन किरणों की प्राकृतिक विशेषता यह होती हैं वे पक्षाघात मोच, चोट, नसों में चल विचल पड़ जाने में विविध दर्दों में तथा अस्थि भंग में बड़ी हितकारी होती है। इनसे रक्त संचार में काफी सहायता मिलती है। इनकी दुर्बलता या इनके अभाव के कारण शरीर के अंग ठण्डे पड़ने लगते है।

शरीर का कोई ऐसा भाग नहीं हैं–जिसमे विद्युत विद्यमान न हो। यह आप समझ ही चुके हैं कि शरीर की प्रोटिने लौह चुम्बकीय धातुओं के समान होती है। अतः शरीर के सभी अंगों से चौबिसों घण्टे विद्युत चुम्बकीय विकिरण हुआ करता है। मस्तिष्क मेरुदण्ड तथा हृदय से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय किरणें सबसे महत्वपूर्ण होती हैं। वे किरणें नाभि से भी निकलती हैं लेकिन उस अवस्था में जब योगी नाभि केन्द्र पर मन को एकाग्र करता है। जैसे–जैसे मन एकाग्र होकर ध्यान की गहरायी में उतरता जाता है वैसे ही वैसे वे किरणें भी प्रगाढ़ होती जाती हैं और उनकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। योगी जिस स्थान पर रहता हैं वहाँ का वातावरण विद्युत चुम्बकीय तरंगों से भर जाता है। यदि कोई साधारण व्यक्ति उस वातावरण की सीमा में प्रवेश करता है तो उसके मन को अद्भुत शान्ति प्राप्त होती है। वहाँ से हटने की

भी उसकी इच्छा नहीं होती। यदि हम भूमध्य में चित्त को एकाग्र करें तो हमारे मस्तिष्क की विद्युत चुम्बकीय किरणें उन्नति करने लगती है। उनकी मात्रा बढ़ने लगती है और उनका घनत्व भी बढ़ने लगता है। लेकिन यह अभ्यास पर निर्भर है। अभ्यास जैसे–जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे उन किरणों की सीमा भी बढ़ने लग जाती है। ऐसी अवस्था में हम सामने बैठे व्यक्ति के या सुदूर बैठे व्यक्ति के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचारों को भी तत्काल उन किरणों द्वारा जान समझ लेने में समर्थ हो जाते हैं।

जैसा कि हमने ऊपर बतलाया कि हृदय से भी विद्युत चुम्बकीय किरणें निकलती है। योग तंत्र की साधना में उन किरणों का भारी महत्व है। वास्तव में उनके द्वारा ही हमे योग और तंत्र की साधना में सफलता प्राप्त होती है। हृदय से संबंधित प्राण है। प्राण द्वारा ही हृदय का संचालन होता है। हम यदि मन को हृदय केन्द्र पर एकाग्र करेंगे तो उस अवस्था में सारे शरीर में प्राण की गति समान हो जायेगी। इस स्थिति में सारा शरीर अपने आपमें हल्का अनुभव करने लगेगा। योग ने इसे प्राणायाम और उससे संबंधित कुम्भक, रेचक और पूरक के लिए उत्तम अवस्था बतलाया है। और इस उत्तम अवस्था में यदि हम योग साधना करते हैं, किसी मंत्र का जप करते है, किसी देवी–देवता का ध्यान करते हैं और कोई तांत्रिक साधना करते हैं तो उनमें भारी सफलता उपलब्ध होगी हमें। इतना ही नहीं किसी दैवी शक्ति से हमारा तारतम्य भी स्थापित हो जायेगा अनायास, जो जीवन में लाभप्रद सिद्ध होगी।

अब रही मेरुदण्ड से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय किरणों की बात। यदि हम गर्भासन ध्यान का अभ्यास बराबर करें तो शीघ्र ही समाधि की अवस्था को उपलब्ध हो जायेंगे। जितनी प्रकार की समाधियाँ हैं उनमें गर्भासन ध्यान द्वारा उपलब्ध समाधि सर्वोपरि और

सर्वोत्तम है। इस समाधि में योगीगण अपने अन्तकरण में आत्म साक्षात्कार करते है।

तीनों स्थानों से विकीर्ण होने वाली विद्युत चुम्बकीय किरणें जीवन, स्फूर्ति तथा यौवन का अत्युत्कृष्ट माध्यम भी है। बाह्य विद्युत चुम्बकीय विकिरण से आन्तरिक विकिरण को पर्याप्त परिवर्धित तथा संशोधित किया जा सकता है। संशोधन की क्रिया केवल योगीगण ही जानते हैं वैज्ञानिक नहीं। विज्ञान इस दिशा में एक सीमा तक जाकर असफल हो चुका है।

शरीर के विविध अवयव, कोशिकाओं रक्त, मांस, मज्जा, कारटेक्स (मस्तिष्क का आन्तरिक भाग) तथा स्नायु सूत्रों में भी वह विशेषता होती है कि वे भी प्रकृति की अन्य सामान्य वस्तुओं की भांति नाना प्रकार के विकिरणों का ग्रहण प्रतिवर्तन, शोषण, संप्रेषण तथा पुनः विकिरण करते हैं।

इनफ्रारेड विकिरण शरीर में पर्याप्त मात्रा में प्रवेश कर जाता है और उसकी उष्मा भीतर ही भीतर बिखर जाती है। मानव त्वचा एक मिली मीटर गहरायी तक पराकासनी किरणों को संप्रेषित करती है। विद्युत चुम्बकीय तरंगे, स्नायु सूत्रों तथा विद्युत चालक प्रोटिनों के माध्यम से शरीर के सभी हिस्सों में पहुँच जाती हैं। इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि स्वस्थ शरीर के इन्फ्रारेड पराकासनी (अल्ट्रा वॉयलेट) तथा विद्युत चुम्बकीय विकिरण अतिशय सान्निध्य में रहने वाले दूसरे व्यक्तियों पर अनुभवगम्य कुछ न कुछ प्रभाव डालते हैं। स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन आदि इन तीनों विकिरणों के प्रभाव को बहुत संवर्धित तथा सम्पुजित कर दे सकते हैं। कदाचित इन्हीं अनुभूत वैज्ञानिक कारणों से भी युगों की सभी जातियों में पति को वर्धमती जीवन्तता तथा दीर्घ तारुण्य के लिए अपनी आयु से कुछ न कुछ छोटी जीवन संगिनी का सुनिश्चित विधान किया गया है।

भारतीय धर्म विज्ञान भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है इस विषय में। उसके अनुसर २५ वर्ष के पति के लिए १६ वर्ष की जीवन संगिनी का होना सभी दृष्टि से अनुकूल और योग्य है। इस आयु के संयोग से उत्पन्न होने वाली सन्तान प्रतिभावान और स्वस्थ होती हैं। पति का भी तारुण्य और यौवन, दीर्घकाल तक सुरक्षित रहता है। ४० वर्ष का पति और १६ वर्ष की पत्नी, पति के लिए दीर्घ रोग कारिणी सिद्ध होती है। ५० वर्ष का पति और १८ वर्ष की पत्नी, पति के लिए प्राण घातक सिद्ध होती है। (विशेष अध्ययन के लिए पढ़े 'धर्म कल्पद्रुम')

ब्रह्माण्डीय विकिरण के उद्भव तथा प्रकृति पर अभी बहुत अनुसंधान हो रहा है। परन्तु इतना तो सत्य है कि ब्रह्माण्डीय विकिरण के पर्याप्त अंश को शरीर सोख लेता है। प्रतिवर्तन और संप्रेषण की प्रक्रिया भी होती ही है। ऐसा लगता है कि आयोमाइजिंग (विद्युदावेशक) विकिरण होने के कारण वे भी शरीर के भीतर से पुनः विकिरण का कारण बनते हो। साथ ही इतना तो प्रायः निश्चित है कि वे भीतर और बाहर दोनों स्त्रोंतो से जननायुओं, जीवन्तता तरुणाई तथा दीर्घायुता में कुछ न कुछ अवश्य अपना प्रभाव रखते हैं। इनके निर्माण करने वाले फोटोन (प्रकाशाणु) का अंश अवश्य रहता है। अतएव हो सकता है ये रक्त विद्रव की प्रकाशात्मक क्रिया–प्रक्रियाओं से संबंध रखते हों और प्रणोदन (इण्डूस्ड) के ढंग से सूक्ष्म रूप से जीवधारियों से भी किसी संवर्धित और परिवर्धित रूप में निकलते हो।

थोराएड ग्रन्थि

शरीर के अंगों में या रक्त में कृत्रिम अथवा प्रणोदन (इण्डयूस्डु) ढंग से विकिरण शीतलता आ जाती है। इण्डयूस्ड विकिरण में रेडियम, यूरोनियम, थोरियम, स्ट्राशियम ढंग की किरणें निकलंती है।

शरीर में यह इण्डयूस्ड या कृत्रिम विकिरण शीलता पहले केवल रेडियम द्वारा उत्पन्न की जाती थी। परन्तु वह अतिशय व्यय साध्य

और जोखिम भरी होती थी। अब रेडियोधर्मी समस्यानिकों के कारण वह सर्व सुलभ एवं सर्वथा निरापद तथा भय रहित हो गयी है।

जिस समय कोई रेडियों सक्रिय धातुएँ या औषधियाँ जैसे रेडियों फासफोरस, रेडियो आयोडिन, नमक आदि हैं। उस समय उसके विभिन्न अंगों से विविध प्रकार की किरणें निकलने लगती हैं। वे किरणें नाना प्रकार के रोग निदान उपचार चिकित्सा आदि में बड़ी तेजी से प्रयुक्त हो रहे हैं। रेडियोधर्मी फासफोरस या रेडियो फासफोरस औषधियों के खाने से उससे जो किरणें निकलती हैं वे रक्त को शुद्ध करती हैं।

शरीर में सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थि है 'थोरायड ग्रंथि' जिसे योग की भाषा में कहते है ब्रह्म ग्रन्थि। जिसका स्थान हैं मणिपूरक चक्र। जो नाभि प्रदेश के अन्तर्गत है। योग की दृष्टि में नाभि बहुत ऊँचा स्थान रखती है। क्योंकि योग साधना का प्रारम्भ नाभि से ही होता है। योगीगण नाभि का विशेष ध्यान रखते हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो योग साधना का प्रथम सोपान प्राणायाम है। योग के अनुसार नाभि प्राणों का संचयन स्थल है। यह मानव शरीर का संचालन बिन्दु है। उसी बिन्दु से प्राण ऊर्जा हृदय के माध्यम से मस्तिष्क को प्रेषित होती है। और मस्तिष्क, प्राण ऊर्जा को वायु वहानाड़ियों के माध्यम से सारे शरीर में प्रवाहित करता है। इससे स्पष्ट है कि नाभि मनुष्य की सारी गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु है। वह गति शारीरिक हो, मानसिक हो या हो आध्यात्मिक। यदि नाभि ऊर्जस्वित नहीं होगी और वह ऊर्जा का सम्यक प्रसारण नहीं रखती तो शारीरिक अवयवों में ऊर्जा शक्ति का ह्रास हो जायेगा और शरीर अस्वस्थ हो जायेगा। शरीर अस्वस्थ हुआ तो मन और आत्मा भी अस्वस्थ हो जायेंगे। यही कारण है कि आरोग्य की परिभाषा करते समय हमारे आचार्यो ने इस बात पर विशेष बल दिया है –

समदोषाः समाग्निश्च सम धातु मल क्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभि धीयते।।

शरीर विज्ञान का कहना है कि थोरायड ग्रन्थि की क्रियाशीलता में गड़बड़ी आ जाने से पुरुष या स्त्री में निस्तेजता, सुस्ती, निर्लज्जता उत्साहहीनता, समझने की शक्ति में कमी महात्वाकांक्षा हीनता तथा दाम्पत्य जीवन में असामंजस्य या खटपट अत्यधिक बढ़कर भयावह रोग का रूप धारण कर लेती है तो ऐसे व्यक्तियों को रेडियो आयोडिन खिला दिया जाता है तब उसकी थोरायड ग्रन्थि से रेडियों किरणें निकलने लगती है इन सूक्ष्म किरणों को ग्रहण कर थोरायड ग्रन्थि का फिर उपचार किया जाता है। और सरलतापूर्वक आरोग्य लाभ हो जाता है। एक सबसे बड़ी बात यह है कि मानव शरीर में पोटैशियम नामक एक ऐसा तत्व पाया जाता है जो शारीरिक विद्युत उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। शरीर के जीवन कार्यो में हृदय, फुस्फुस पेट मस्तिष्क, स्नायु सूत्र—सभी अंग प्रत्यंगों में जितनी बिजली खर्च होती है – सब इसी के माध्यम से बनती है। इस तत्व में सबसे बड़ी विशेषता यह होती हैं कि उसमें से दुर्बल रेडियों किरणें स्वयं निकला करती हैं।

रेडियम, थोरियम, आदि सभी रेडियोधर्मी तत्वों के सभी यौगिकों तथा मिश्रणों से भी रेडियों किरणें निकला करती हैं। इस प्रकार पोटैशियम के यौगिकों से भी विकिरण की सम्भावना पायी जाती है। हो सकता है कि वह अत्यल्प मात्रा में ही हो। फिर जिस रूप में पोटैशियम शरीर कोशिकाओं में मिलता है उस रूप से तो रेडियों किरणों के निकलने की और अधिक सम्भावना प्रतीत होती है। शरीरस्थ पोटैशियम के विकिरण के विशद अध्ययन से शरीर के अंग—प्रत्यंग के गुप्त विकिरण के संबंध में शनैः—शनैः जीवन प्रक्रिया संबंधी बहुत

से रहस्यों का उद्घाटन सम्भव है।

स्वस्थ शरीर आरोग्य का लक्षण नहीं

जिस प्रसंग की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में की जा रही हैं उसे लिपिबद्ध करते समय एक महाशय से मेरी भेंट हुई थी। उनका नाम था महेश भट्ट। महेश भट्ट ने सभी शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था विशेष कर अध्यात्म का। अपनी आध्यात्मिक खोज की दिशा में मुझे बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं।

महेश भट्ट का कहना था कि केवल शरीर के स्वस्थ रहने पर ही आरोग्य नहीं हो सकता साथ में आत्मा इन्द्रियाँ और मन भी प्रसन्न हो तभी आरोग्य सम्भव है। शरीर की स्वस्थता को निरोगी ही कह सकते हैं। निरोग और आरोग्य में जमीन और आसमान का अन्तर हैं। शरीर का रोग रहित होना निरोग हो जाना है। परन्तु शरीर में रोग ही उत्पन्न न हो – ऐसा होना ही आरोग्य माना जायेगा। अतएव इन दोनों ही स्थितियों में नाभि का योगदान महत्वपूर्ण है।

योग में नाभि का महत्व

नाभि के संबंध में मैंने 'वह रहस्यमय सन्यासी' में विस्तार से प्रकाश डाला है। यहाँ प्रसंगवश उसके विषय में संक्षिप्त में ही चर्चा करूंगा।

महेश भट्ट ने आगे बतलाया कि चाहे कुण्डलिनी जागृत कर अन्य चक्रों तक पहुँचना चाहे व्यक्ति या यम से समाधि की अवस्था प्राप्त करना हो – निर्भर है स्वस्थ नाभि पर ही। इसीलिए योग में नाभि को अति महत्वपूर्ण माना गया है। शरीर की स्वस्थता और मन की आरोग्यता के बिना भोग और योग दोनों ही अकारण है। सुविज्ञ आचार्यो ने मनुष्य के स्वास्थ्य संरक्षण के लिए दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होंने स्पष्ट रूप से आहार निद्रा, तथा ब्रह्मचर्य के सम्यक पालन का विधान किया है। ज्ञात होना

चाहिए कि मनुष्य में तीन एषणायें (इच्छाएँ) होती हैं – प्रोणेषणा, घनैषणा और पारलोकैषणा। जिनका सीधा संबंध आहार निद्रा और ब्रह्मचर्य से है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक कार्य की सिद्धि की तीन अवस्थाएँ है– देखना, समझना तथा करना। ये कार्य चाहे शारीरिक हो मानसिक हो अथवा हो आध्यात्मिक। वह इन तीनों के सम्यक रूप से प्राप्त होने पर सिद्ध हो सकता है। तात्पर्य यह कि सम्यक गुणा भाव से कार्य सिद्धि कदापि सम्भव नहीं है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है–

'सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष मार्गः'।

कार्य चाहे शरीर से संबंधित हो अथवा मन से, सम्यक् दर्शन, ज्ञान व चरित्र के बिना सिद्ध नहीं किया जा सकता। यही बात मनुष्य के आराध्य के विषय में भी हैं। आराध्य को जानने के लिए भी तीन माध्यम है – देव, शास्त्र, तथा गुरु। सर्वप्रथम व्यक्ति को उसके देव (दर्शन) को स्थिर करना होगा। फिर उसे जानने वाले शास्त्रों (ज्ञान) का अध्ययन मनन करना होगा तत्पश्चात् गुरु के माध्यम से उसे प्राप्त करने को उद्दत होना होगा, यही उसका चरित्र होगा। उसके बाद ही कार्य सिद्धि होगी। यह सिद्धान्त प्रत्येक कार्य सिद्धि पर समान रूप से व्यक्त है। चाहे भौतिक सुख पाना हो अथवा पाना हो मुक्ति का मार्ग मोक्ष।

योगी पुरुष अपनी नाभि को ऊर्जास्वित कर उसके माध्यम से मन को नियन्त्रित करते हैं। इसके पश्चात नियन्त्रित मन के माध्यम से संकल्प शक्ति को दृढ़ कर उसके द्वारा मस्तिष्क केन्द्रों को स्थिर करते है। ये कार्य पंचभूतों के द्वारा सिद्ध होते हैं। पृथ्वी तत्व पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् क्रमशः जल, अग्नि (तेज) वायु और आकाश तत्व की ओर गति कर अपने इष्ट को पाने में सफलता प्राप्त करते हैं। इन तीनों केन्द्र के संबंध में योग कहता है –

'साधु तिष्ठे नाभि में उरु तिष्ठे अर्हन्त।
देह तीर्थ के शीर्ष पर तिष्ठे श्री भगवन्त'।।

साधक, योगी और सिद्ध कौन?

पहला केन्द्र है नाभि, दूसरा केन्द्र हैं हृदय और तीसरा केन्द्र है मस्तिष्क। पहले केन्द्र में स्थित होने वाले को साधक, दूसरे केन्द्र में स्थित होने वाले को योगी और तीसरे केन्द्र में स्थित होने वाले को कहते हैं सिद्ध।

भूख, प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण रखना, प्राण और अधिकार रखना, निस्पृह व निरपेक्ष भाव से जीवन व्यतीत करना और सांसारिक वस्तुओं के प्रति अनाशक्त रहना – साधक का लक्षण है। ऐसे साधक सूक्ष्म प्राणायाम के द्वारा ऊर्जस्वित करते हैं। इस अवस्था में साधक की स्थिति नाभि में होती है। नाभि का पूर्ण रूप से ऊर्जस्वित हो जाने के पश्चात् साधक हृदय केन्द्र की ओर बढ़ता है।

जो सुख प्राप्त होने पर अपने आपको सुखी नहीं समझता और इसी प्रकार दुख प्राप्त होने पर दुखी भी नही होता – जो इन दोनों के अनुभवों से दूर अपने आपमें लीन है और जो इन दोनों से अप्रभावित है– वह योगी हैं। जो पाप–पुण्य दोनों को निरर्थक समझता है। जो दोनों से अपने आपको निवृत्त कर लेता है। जो दोनों की परिभाषाओं से अपने आपको मुक्त कर लेता है – वह योगी है। जिसके लिए शरीर और संसार दोनों व्यर्थ है और दोनों के प्रति जो अनाशक्त है अप्रभावित है– वह योगी हैं। ऐसे योगी की स्थिति हृदय में होती है।

साधक की साधना 'प्राण' की साधना है। इसी प्रकार योगी की साधना 'मन' की साधना है। प्राणायाम द्वारा प्राण की और ध्यान द्वारा मन की होती है साधना। ध्यान जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर समाधि में परिवर्तित हो जाता हैं इसको परम अवस्था कहते हैं और

इस अवस्था में योगी की स्थिति मस्तिष्क में जिस स्थान पर होती है – वह है सोमचक्र। सोमचक्र में स्थिति को उपलब्ध होने वाले योगी की साधना आत्मा की साधना है। आत्म साधना की उपलब्धि है सिद्धावस्था। सिद्धगण, राग–द्वेष, पाप–पुण्य, सुख–दुख आदि सभी विकारों अथवा सभी ऐषणाओं से युक्त होकर अपनी आत्मा से लीन रहते हैं। यही मानव जीवन का सर्वोच्च पद है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त त्रियोग में ही सांसारिक सुख और आध्यात्मिक सुख निहित है। और इनमें नाभि ही एक मात्र प्रमुख केन्द्र है। यदि अचानक हृदय काम करना बन्द कर दें तब भी बीस से तीस मिनट तक नाभि केन्द्र सक्रिय रहता है। इस अवधि में किसी भी उपचार द्वारा हृदय को पुनः सक्रिय किया जा सकता है।

सिद्ध योगीगण अपनी मृत्यु के समय से अवगत रहते हैं। यदि उनकी साधना का कोई अंग पूर्ण नहीं हुआ रहता तो वे मृत्यु का आलिंगन तो कर लेते हैं क्योंकि प्रकृति के नियम अथवा उसकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहते, लेकिन नाभि के सक्रिय रहने के कारण उसकी ऊर्जा का आश्रय लेकर पुनः जीवित हो उठते हैं। लगभग चालीस वर्ष पूर्व काशी में एक ऐसे ही सिद्ध योगी थे, जिनका नाम था परमानन्द परमहंस। उन्होंने अपने शिष्यों को अपनी मृत्यु का समय बतला दिया था, लेकिन साथ में यह भी आदेश दिया था कि लगभग एक घण्टे बाद ही उनके शरीर का कोई स्पर्श करेगा और उसे भूगत समाधि भी देगा।

परमानन्द परमहंस की निस्चेष्ट काया पड़ी रही पूरे दो घंटे तक। सभी शिष्य मौन साधे और आंखों में आंसु लिए और स्थिर भाव से बैठे रहे अपने गुरु की निष्प्राण काया के चारों ओर।

एकाएक परमानन्द परमहंस देव के निर्जीव शरीर में कम्पन होने लगा और कुछ ही देर बाद उन्होंने धीरे–धीरे अपनी आंखें खोली

और फिर उठ कर बैठ गये। मृत्यु आयी और चली गयी, लेकिन अपना थोड़ा अनुभव अवश्य छोड़ गयी। परमहंस देव ने बतलाया कि निश्चित समय पर उनका शरीर उनसे अलग हो गया और वे अपने अस्तित्व का स्वतंत्र रूप से अनुभव करने लगे और उस विचित्र अवस्था में केवल 'मैं' का बोध बना रहा अस्तित्व में। वे काफी देर तक इधर–उधर टहलते रहे। कहीं दूर जाने का साहस नहीं हो रहा था उनमें। अपने पार्थिव शरीर के प्रति मोह तो नहीं था, लेकिन एक विचित्र आकर्षण अवश्य था और उसी आकर्षण के वशीभूत होकर मुंख मार्ग से अपने पार्थिव शरीर में प्रवेश कर गये वे।

शरीर का सर्वोत्तम अंग पीनियल ग्लैण्ड

योग के अनुसार शरीर में तीन ग्रन्थियाँ है—नाभि केन्द्र को जैसे योग की भाषा में कहते हैं ब्रह्म ग्रन्थि उसी प्रकार हृदय केन्द्र को कहते हैं—विष्णु ग्रन्थि। और उसी प्रकार मस्तिष्क में स्थित ग्रन्थि को कहते हैं रुद्र ग्रन्थि। इस ग्रन्थि का नाम है आज्ञाचक्र। यह चक्र दोनों भौहों के बीच में ऊपर ललाट पटल पर स्थित है। इस चक्र में मेरुदण्ड के भीतर से आने वाली इडा और पिंगला नाड़ी एक दूसरे से मिलकर मस्तिष्क प्रदेश से होती हुई सुषुम्ना नाड़ी से मिलती है। योगी का इन तीनों नाड़ियों का मिलन ही प्रयाग का त्रिवेणी संगम हैं।

आज्ञाचक्र की पहली विशेषता तो यही है कि उसमें से पराकासनी किरणों की ऊर्जायें विद्युत चुम्बकीय शक्ति के रूप में विकीर्ण होती है। विज्ञान की भाषा में रुद्र ग्रन्थि को कहते हैं पीनियल ग्लैण्ड। पराकासनी के विषय में पिछले प्रकरण में विस्तार से बतलाया जा चुका है। पराकासनी वास्तव में ब्रह्माण्डव्यापी एक शक्तिशाली चेतना है। जो व्यष्टि रूप में आज्ञाचक्र से विकीर्ण होती है। पिनियल ग्लैण्ड में 'जौ' के दाने के आकार का एक छिद्र है। जिसे तीसरा नेत्र की संज्ञा दी गयी है। लेकिन वह अद्‌भुत और विलक्षण नेत्र प्राकृतिक

रूप से बन्द है, योग के विशेष साधना से खुलता है वह। और जब खुलता है तो भीतर की ओर बाहर की ओर नहीं। और खुलते ही ब्रह्माण्डीय चेतना से उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है जिसके फलस्वरूप योगी को 'दूर बोध' दिव्य दृष्टि की अपूर्व सिद्धि प्राप्त होती है और उस विलक्षण सिद्धि द्वारा एक ही स्थान पर बैठे ही बैठे लौकिक पारलौकिक जगत के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड के किसी भी स्थान अथवा किसी भी क्षेत्र का बोध अथवा ज्ञान प्राप्त कर सकता है वह।

दूर बोध के अतिरिक्त उसे एक ऐसी भी दृष्टि तीसरे नेत्र द्वारा प्राप्त होती है – जिसे योग की भाषा में 'दिव्य दृष्टि' कहते हैं। उस दिव्य दृष्टि द्वारा योगी हजारों मिल दूर के दृश्यों को अथवा घटने वाली घटनाओं को स्पष्ट रूप से देख सकता है।

महाभारत के संजय को दिव्य दृष्टि उपलब्ध थी। उसी के द्वारा वह धृतराष्ट्र को कुरूक्षेत्र में युद्ध संबंधी घटनाओं का आँखों देखे हाल का वर्णन करके स्थितियों से अवगत करा रहा था। वास्तव में ब्रह्माण्डीय चेतना एक अत्यन्त शक्तिशाली परम चेतना है।

अपनी तिब्बत यात्रा काल में मेरी एक ऐसे लामा योगी से भेंट हुई – जिसे दूर बोध और दिव्य दृष्टि प्राप्त थी।

एक दिव्य दृष्टि प्राप्त लामा योगी

निश्चय ही वह एक महा सिद्धयोगी लामा था। उसकी आयु बहुत अधिक थी। कम से कम एक सौ वर्ष से ऊपर का ही रहा होगा वह। लेकिन पूर्ण स्वस्थ था वह। युवकों जैसा उत्साह और स्फूर्ति थी उसमें। मेरे आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित था वह लामा। दूर बोध द्वारा तीनों काल का ज्ञान रखता था वह। यहाँ तक कि पिछले जन्म का भी। उसका कहना था कि जो भी घटनाएँ घटती हैं उसकी छाया काल के पटल पर बहुत समय तक अंकित रहती हैं। दूर बोध द्वारा योगी उसी छाया को देखता है और उसी के अनुसार वर्णन भी करता है

घटनाओं का।

मेरे अनुरोध पर उस लामा योगी ने पहले तो मेरे जन्म से लेकर तब तक की कथा बतलायी और फिर बतलाया मेरे पिछले जन्म का वृत्तान्त।

क्या मैं अपने पिछले जन्म को देख सकता हूँ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस लामायोगी ने कुछ सोचते हुए कहा – अवश्य। लेकिन पूरा जीवन देखने से कोई लाभ नहीं तुमको तुम्हारे पिछले जन्म की अन्तिम अवस्था ही दिखलाऊँगा उसी से तुम सब कुछ समझ जाओगे। इतना कह कर मुझे उसने अपने करीब बैठने को कहा। और जब मैं बैठ गया तो मेरे भ्रूमध्य स्थान पर अपनी तर्जनी उंगली धंसा दी उसने। अत्यधिक पीड़ा होने लगी मुझे प्रारम्भ में और फिर थोड़ी देर बात शान्त हो गयी वह। फिर न जाने कब और कैसे अपने आपमें शून्य का अनुभव करने लगा मैं।

और उसी रहस्यमयी अवस्था में मैंने सर्वप्रथम देखा—गंगा का काफी लम्बा चौड़ा तट। प्रातःकाल का समय था। तट पर बहुत भीड़ थी स्त्री—पुरुषों की। कुछ लोग गंगा में स्नान कर रहे थे। कुछ लोग पूजा—अर्चना आदि में संलग्न थे। तट की बुर्जियों पर बैठे स्मार्त ब्राह्मणों की एक मण्डली उच्च स्वर में शास्त्रार्थ कम, वाक् युद्ध अधिक कर रही थी। गंगा तट की सकरी सीढ़ियों पर बैठे कुछ तीर्थ यात्री – जो दक्षिण भारतीय लग रहे थे – मुण्डन करवा रहे थे। मैंने देखा थोड़ा आगे एक विशाल मन्दिर था तट के ऊपर। जिसके सामने एक काफी लम्बा—चौड़ा प्रांगण था और उस प्रांगण में जाने के लिए गंगा तट की ओर से सीढ़ियाँ थी। प्रांगण में पन्द्रह—बीस लोग इधर—उधर टहल रहे थे। वे सभी लोग संभ्रान्त कुल के प्रतीत हो रहे थे।

उस अवर्णनीय अवस्था में बार—बार मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उन स्थानों से वहाँ के घाटों से वहाँ के मन्दिरों से और साथ

ही वहाँ के वातावरण से भली–भाँति परिचित हूँ मैं। ऐसा लगा मानों वहाँ मैं रहा हूँ और जिया हूँ कभी। जीवन का लम्बा समय जैसे वहाँ के शान्त और आध्यात्मिक वातावरण में ही बीता है कभी। किसी काल में और तभी श्मशान घाट का दृश्य आ गया मेरे सामने। उस समय एक चिता धूं धूं कर जल रही थी और जिसमें से उठने वाली लाल–पीली लपटे हवा में लहरा रही थी। चिता के आस–पास कुछ संभ्रान्त व्यक्ति खड़े आपस में बातें कर रहे थे। और उन्हीं लोगों में एक युवती भी दिखलायी दी मुझे। कभी–कभी उस युवती का शरीर हिल उठता था। शायद रो रही थी भीतर ही भीतर। घूंघट से छिपा हुआ था उस चेहरा। समझते देर न लगी मुझे – निश्चय ही वह जलने वाली चिता और किसी की नहीं उसी युवती के पति की थी। तभी तो यमघंट की हंडिया लटक रही थी उसके हाथ में।

और फिर वह दृश्य एकाएक गायब हो गया और उसके स्थान पर उभर आया लम्बा चौड़ा वह प्रांगण मेरे सामने। प्रांगण में एक ओर था एक छोटा सा तख्त जिस पर एक नाई बैठा पत्थर पर अपना उस्तरा तेज कर रहा था रगड़–रगड़ कर। शायद किसी की प्रतीक्षा कर रहा था वह नाई। कुछ ही समय के बाद चार–पाँच संभ्रान्त कुल के व्यक्ति एक नवयुवती को थामे हुए वहाँ आये। एक वृद्धा भी थी उस युवती के साथ जो युवती को सहारा दे रही थी। मैंने देखा–वह युवती अत्यधिक सुन्दर थी। इसमें सन्देह नहीं, बीस वर्ष से अधिक आयु न रही होगी उस लावण्यमयी सुन्दरी की। कच्चे दूध में दो तीन बूंद आलता डाल देने पर दूध का जैसा रंग हो जाता है–वैसा ही रंग था उस रूपसी के देह का। मझोला कद, बड़ी–बड़ी कजरारी आँखे, नुकीली नांक, अनार के फूल की तरह रक्ताभ होंठ, लम्बी घनी केश राशि जो कमर के नीचे तक झूल रही थी।

लेकिन यह क्या? उस युवती की वेष भूषा देखकर चौक पड़ा

मैं एक बारगी। उसकी मांग सूनी थी, कलाईयों में सुहाग की चूड़ियाँ भी नही थी और न तो गले में मंगलसूत्र ही। यदि कुछ था तो उसके गौरांग और यौवन से भरपूर सुगठित शरीर पर सफेद साड़ी। लगता था जैसे उस साड़ी को जबर्दस्ती लपेटा गया हो उसकी कंचन काया पर। मैंने युवती के चेहरे की ओर देखा जहाँ उस समय गहरे विषाद, गहरे दुख के अलावा, असीम वेदना और असीम पीड़ा के मिले जुले भाव स्पष्ट झलक रहे थे। कौन थी वह दुखियारी? कौन सा दुख और कष्ट था उस अबला को? कौन सी वेदना और पीड़ा से जल रही थी उस समय उसकी आत्मा? मेरी समझ में नहीं आ रहा था। उस समय कुछ। लेकिन हाँ! उस युवती का चेहरा मेरा जाना पहचाना सा लग रहा था। मुझे अवश्य। कौन थी वह। और तभी एक व्यक्ति आकर खड़ा हो गया मेरे बगल में। पलट कर देंखा—बुर्जी पर बैठे शास्त्रार्थ करने वाले एक धर्माचार्य थे वह। घुटा हुआ सिर पीठ तक लटकती हुई लम्बी चुटिया, मस्तक पर त्रिपुण्ड की रेखायें। नंगे शरीर पर लटकता हुआ जनेऊ, कमर में बंधी हुई राम रामी और पैरो में खड़ाऊँ। धर्माचार्य महाशय ने मेरी ओर निहारते हुए धीरे से कहा—'क्या देख रहे हैं आप उधर? इस प्रकार सद्यः विधवा को देखना महा पाप है। क्या वह युवती विधवा है? इतनी सुन्दर तरुणी विधवा कैसे हो गयी?

शायद मेरे मन के भाव को समझ गये धर्माचार्य महाशय। थोड़ा मुस्करा कर कहने लगे — मैं शाक्य दीप ब्राह्मण हूँ। सभी शास्त्रों का अध्ययन किया है मैंने। पाप—पुण्य की परिभाषा से भली—भाँति परिचित हूँ मैं, समझे न, उन दोनों के परिणामों को भी अच्छी तरह जानता समझता हूँ मैं। पिछले जन्म का पाप—पुण्य ही वर्तमान जन्म में दुर्भाग्य और सौभाग्य के रूप में मनुष्य के जीवन में सामने आता है। पिछले किसी जन्म में निश्चय ही कोई जघन्य पाप किया होगा—इस

ब्राह्मण कन्या ने और तभी तो विवाह के अल्प समय के पश्चात् पूर्ण यौवन काल में अपनी मांग का सिन्दूर धोना पड़ा उसे। आज उसका मुण्डन संस्कार है। मैंने देखा, युवती को नाई के सामने तख्त पर बिठा दिया गया था और नाई का उस्तरा चलने लगा था युवती के सिर पर। कुछ ही क्षणों के बाद युवती के घने काले बाल बिखर गये तख्त पर। और उन घने काले बिखरें बालों को सिर नीचा किये अपलक देख रही थी युवती और फूट–फूट कर रो रही थी वह अपने बालों को देखकर। यदि वह वृद्ध महिला उसे थामे न होती तो निश्चय ही गिर जाती वह तख्त पर।

आगे कुछ देखना नहीं चाहता था मैं। मेरा मन विषण्ण और उदास हो चुका था एक बारगी एक अजीब सी खिन्नता का अनुभव हो रहा था मुझे उस समय। धीरे–धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा मैं ऊपर जाने के लिए। अचानक खट्–खट् की आवाज सुनकर पीछे सिर घुमाया मैंने। देखा, पाप–पुण्य का विश्लेषण करने वाले वही धर्माचार्य महाशय सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आ रहे थे। बात करने को उत्सुक लगे वह। आगे बढ़ते हुए मैने धीरे से पूछा आपके इस स्वरूप का नाम क्या है?

आचार्य धर्मव्रत। उत्तर मिला।

क्या आप यहाँ के ही निवासी है?

हाँ! संस्कृत का प्राध्यापक हूँ—उत्तर मिला। लेकिन उस उत्तर में गर्व और अहंकार का भाव था। तब तो उस विधवा ब्राह्मण कन्या के विषय में भी बहुत कुछ जानते होंगे आप?

हाँ! हाँ! क्यों नहीं, मैं नहीं जानूँगा तो भला और कौन जानेगा?

और धर्माचार्य महोदय ने जो कुछ बतलाया उसके अनुसार विष्णुकान्त शास्त्री वेद–वेदान्त दर्शन और षट्शास्त्रों के उद्भट विद्वान थे। काफी प्रतिष्ठित और आदर्श पुरुष थे विष्णुकान्त शास्त्री। उनके

आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश दूर दिगन्त तक फैला हुआ था। पैतीस वर्ष की अवस्था में ही ज्ञान–विज्ञान के सर्वोच्च आसन को उपलब्ध कर लिया था विष्णुकान्त शास्त्री ने।

थोड़ा रूक कर धर्मदत्त महाशय ने भीतरी जेब से सुंघनी की डिबिया निकाली और उसमें से सुंघनी लेकर अपनी नाक के भीतर डाला और फिर तीन–चार बार छींके जोर–जोर से। कुछ क्षण बाद सामान्य होकर आगे बोले महाशय माता–पिता नही थे। परिवार में भी कोई नहीं था। अकेले थे शास्त्री जी। कभी–कभी चिन्तित हो उठते थे शास्त्री जी वंश परम्परा की समस्या को लेकर। उनके न रहने के पश्चात् समाप्त हो जायेगा उनका वंश। कभी वह विवाह की उपेक्षा करते थे अब उनके लिए विवाह अनिवार्य हो गया। प्रतिष्ठित व्यक्ति तो थे ही विवाह होने में देर न लगी। एक गरीब और आश्रयहीन परिवार की कन्या थी सुजाता। सुन्दर, स्वस्थ, बुद्धिमान, गृह कार्य में निपुण और धार्मिक वृत्ति की चरित्र परायणा थी वह। शास्त्री जी अति प्रसन्न और भाव–विभोर हो उठे सर्व गुण सम्पन्न पत्नी को पाकर। लेकिन परमेश्वर की इच्छा तो कुछ और ही थी। दाम्पत्य सुख नहीं था उनके भाग्य में शायद। और तभी तो विवाह के तीन–चार महीने बाद ही किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो गये वह। पकड़ ली खाट। दवा आदि से कोई लाभ नहीं हो रहा था और रोग बढ़ता ही गया।

फिर क्या हुआ?

होगा क्या? विषण्ण भाव से बोले धर्मदत्त महाशय एक दिन रोग ग्रस्त शरीर से मुक्त हो गये सदैव के लिए शास्त्री जी।

कुछ देर मौन रहे धर्मदत्त महाशय और फिर अच्छा प्रणाम, फिर दर्शन होंगे – कहकर एक मन्दिर में चले गये। जाते हुए उन्हें देखता रहा मैं। जब से मैंने सुजाता नाम सुना था तभी से न जाने कैसा हो गया था मेरा मन। कुछ विचित्र सा प्रतीत हो रहा था अपने आप

में। और उसी अन्तर्मुखी अवस्था में मैंने देखा–एक काफी लम्बा–चौड़ा कमरा जिसमें गंगा की ओर खुलने वाली कई खिड़कियाँ थी बड़ी–बड़ी। दीवारों से लगकर लम्बी–चौड़ी कई आलमारियाँ थी–जिनमें ठूस–ठूसकर पुस्तकें भरी हुई थी। एक ओर पलंग बिछा था और उस पलंग पर एक सुन्दर युवक का मृत शरीर पड़ा हुआ था। अभी नहीं पड़ी थी उसकी मृत काया पर मृत्यु की छाया। उसका शान्त–गम्भीर मुख मण्डल अभी भी चमक रहा था आत्मतेज से। लगा जैसे गहरी नींद में सो रहा है वह।

मैंने देखा उस मृत व्यक्ति के सीने पर अपना सिर रखे एक युवती जोर–जोर से विलाप कर रही थीं उस समय। उसके बाल खुलकर शव पर बिखरें हुये थे और बिखरी हुई थी उसकी कलाईयों की चूड़ियाँ। रूदन भरे स्वर में वह युवती कह रही थी – क्यों छोड़ गये मुझे इस संसार में अकेले? वियोग का दुख कैसे सहा जायेगा मुझसे? जब साथ छोड़ना ही था तो विवाह क्यों किया? क्यों सुहागिन बनाया मुझे क्यों मंगलसूत्र पहनाया मुझे? बोलो! बोलो न कुछ? कौन सा अपराध किया था मैंने? निराश्रित बेसहारा और एकाकी जीवन कैसे व्यतीत करूंगी मैं। कौन देगा मुझे आश्रय और कौन देगा सहारा इस संसार में? अपने को संभाल कर और आँसू पोछतें हुए विगलित कण्ठ से बोली–सुजाता। ठीक है। मुझे धोखा दिया है न आपने। किसी जन्म में मैं भी धोखा दूंगी आपको। पति के अभाव में जिस पीड़ा को जिस व्यथा को जिस वेदना और जिस मानसिक कष्ट को अकेले जीवन व्यतीत करते हुए मैं भोगूंगी। उसी पीड़ा को उसी व्यथा को उसी वेदना को उसी मानसिक कष्ट का पत्नी के अभाव में अगले किसी जन्म में आप भी भोगेंगे और अनुभव करेंगे शून्य से भरे एकाकी जीवन का। न कोई जानने समझने वाला होगा और न तो होगा अपना कोई। फिर तन कर खड़ी हो गयी सुजाता अपने स्थान पर। सूर्योदय

हो चुका था। खुली हुई खिड़की से छन कर सूर्य की सुनहली किरणें भीतर आ रही थी और जिसके प्रकाश में दप्–दप् चमक रहा था सुजाता का उदास मुखमण्डल। खिड़की के बाहर उदय हो रहे सूर्य की ओर अपलक निहार रही थी उस समय वह। एकाएक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध सा गया और हठात् मेरे मुंह से निकल पड़ा सुजाता............। और उसी के साथ मेरी आँखे खुल गयी। देखा मेरे सिर पर हाथ था उस लामा योगी का और स्थिर दृष्टि से देख रहा था मेरे चेहरे की ओर वह। मेरे किस जन्म की कथा का था यह उपसंहार—मैंने धीमे स्वर में पूछा उस लामा योगी से यह कहना कठिन है मेरे लिए। हाँ! अपने अनुमान ज्ञान से इतना अवश्य बतला सकता हूँ कि सम्भवतः इसी जन्म में साकार हो सुजाता का दिया हुआ शाप।

यह सुनकर चौक पड़ा मैं एक बारगी। आश्चर्य के भाव से उस लामा योगी की ओर देखते हुए बोला—क्या यह निश्चित है? सम्भव है? हो सकता है ऐसा?

मेरी बात सुनकर लामा योगी हंस पड़ा। उसी हंसी बड़ी ही रहस्यमयी लगी मुझे उस समय। मेरी ओर सिर घुमाकर गम्भीर स्वर में लामायोगी ने कहा मैं त्रिकालज्ञ हूँ, और दूर दृष्टि सम्पन्न हूँ। मुझ पर सन्देह नहीं होना चाहिए।

नहीं, नहीं, ऐसा मत कहिए। आप पर और आपकी सिद्धियों पर किञ्चित मात्र सन्देह नहीं है मुझे। थोड़ा विगलित और अस्थिर हो गया था मैं। अभी भी गम्भीर था वह लामायोगी। कुछ देर बाद पूर्ववत् गम्भीर स्वर में सामने की ओर उंगली से इशारा करते हुआ उसने कहा – वहाँ क्या दिखलायी दे रहा है तुमको?

घोर जंगल और उस घोर जंगल में पसरा हुआ घोर अन्धकार। मैंने उत्तर दिया।

वह अन्धकार नहीं तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन का पटल है और जिस

पर लिखी हुई है तुम्हारे जीवन की शुरू से लेकर अन्त तक की सारी कथा और अंकित है उस कथा से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं के दृश्य।

लामायोगी की ये बातें सुनकर स्तब्ध और अवाक् रह गया मैं। मेरी दृष्टि स्थिर सी हो गयी उस दिशा में। चाहकर भी अपना सिर घुमा न सका मैं। लगा जैसे सम्मोहित सी हो गयी हैं मेरी आत्मा। क्या योग का चमत्कार था वह? कहने की आवश्यकता नहीं अपने वर्तमान जीवन का अतीत देखा और देखा अपने मृत्यु पर्यन्त तक का भविष्य भी मैंने उस घोर अन्धकार के स्याहपटल पर। जो व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा का भविष्य जान ले अपनी मृत्यु होते हुए देख ले और साथ ही देख ले श्मशान में अपनी जलती हुई चिता को, तो उसकी मानसिक स्थिति क्या होगी? यह बतलाया नहीं जा सकता। अनुभव किया जा सकता है और वह अनुभव मैं कर रहा था उस समय। लामा योगी का अनुमान भी सत्य सिद्ध हुआ समय पर। न जाने किस जन्म का दिया हुआ सुजाता के शाप ने और विष घोल दिया मेरे जीवन में जिसके फलस्वरूप और नारकीय हो गयी मेरी मानसिक स्थिति। काश! वह लामा योगी से भेंट न हुई होती मेरी।

पीनियल ग्लैण्ड में वैज्ञानिक दृष्टि

योग का कहना है कि आज्ञाचक्र से एक निश्चित समय पर नित्य एक द्रव पदार्थ विसर्जित होता हैं जिसे योग की भाषा में 'अमृतक्षरण' कहते है। जिसके फलस्वरूप मुख में 'लार' बनता है और मध्यमा वाणी बैखरी वाणी में परिवर्तित होकर मुख से शब्दों के रूप में उच्चारित होती है। उसी अमृतत्व से हृदय धड़कता है और उसी से शरीर के स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र अपना अपना काम करते हैं। उस अमृतत्व का मूल स्त्रोत पीयूष ग्रन्थि है। यह सोमचक्र की सीमा के अन्तर्गत स्थित है। योगीगण आज्ञा चक्र की रुद्रग्रन्थि का भेदन कर नाभि ऊर्जा की सहायता से सोमचक्र में स्थिति लाभ करते हैं और तदन्तर उपलब्ध

होते हैं अमृतत्व को। जिसके फलस्वरूप उनके शरीर, मन, प्राण, मस्तिष्क आदि पर काल का प्रभाव मन्द गति से पड़ता है। वे दीर्घजीवि होते हैं और काल की सीमा का उल्लंघन कर सैकड़ों वर्ष पीछे अतीत में प्रवेश कर सकते हैं और इसी प्रकार सैकड़ों वर्ष आगे भविष्य में भी प्रवेश कर सकते हैं। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि अतीत के अन्धकार में आकण्ठ डूबे हुए ज्ञान–विज्ञान और उसके मूलभूत सिद्धान्तों को प्रकाश में आने का अवसर प्राप्त होता है। और इसी प्रकार प्राप्त होता है भविष्य में घटने वाली प्राकृतिक दैवी और आसुरी घटनाओं का सम्पूर्ण विवरण भी। वास्तव में ऐसे योगी त्रिकालज्ञ होते हैं। तीनों काल को करतलवत देखते है वे। वर्तमान समय में भी त्रिकालज्ञ योगियों का अस्तित्व हैं लेकिन उनको पहचानना, जानना और समझना अंत्यन्त कठिन हैं।

अमरीकी वैज्ञानिक अरानल ने पीनियल ग्लैण्ड पर अत्यधिक शोध एवं अन्वेषण कार्य किया है। उनका कहना है कि पिनियल ग्लैण्ड से मस्तिष्क को सिरोटोनिन मिलता है। यह सिरोटोनिन ही प्राणी को दिव्य दृष्टि प्रदान करती है। और दूर बोध भी। इसी की सहायता से प्राणी प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं को बिल्कुल साफ–साफ देखता है। जिस प्राणी की पीनियल ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में सिरोटोनिन विसर्जित होता है उसे अतीन्द्रिय और अलौकिक ज्ञान प्राप्त होता है। योग मार्ग का पथिक दोनों प्रकार के ज्ञान को उपलब्ध होने के लिए आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) पर मन को स्थिर कर ध्यान लगाते है। ध्यान जब अपने आप गहन हो जाता है तो उस अवस्था में सिरोटोनिन की मात्रा बढ़ जाती है और उसी के अनुसार उसका विसर्जन भी होने लगता है। पीनियल ग्लैण्ड, धूप, ताप, शीत, प्रकाश एवं चांदनी से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसी कारण साधक अपना योगी अपने मस्तक को प्रायः अपने धर्म और सम्प्रदाय के अनुसार काले, नीले, सफेद, रंग

के वस्त्रो से ढके रहते हैं ताकि आज्ञाचक्र वातावरण से प्रभावित न हो। और उनके ध्यान में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। यदि पूर्णिमा की रात्रि में चांद की ओर स्थिर दृष्टि से अपलक देखा जाय तो उसका भारी प्रभाव पड़ता है पीनियल ग्लैण्ड पर। और अपने आपमें एक विशेष प्रकार अलौकिक अनुभव होता है।

वास्तव में मानव शरीर का निर्माण सेलो के समूह से हुआ है। प्रत्येक सेल के भीतर सामुहिक प्रक्रिया होती है और उसी सामुहिक प्रक्रिया का नाम जीवन है और मन अथवा चेतन है। जिसमें सर्व व्यापकता, सर्वज्ञाता के लक्षण मौजूद रहते हैं। वैज्ञानिक इस बात से सहमत है कि इन्द्रियानुभूतियों की शक्तियों का स्रोत मस्तिष्क है। उनकी मान्यता है कि पिण्डली (गैगसियन) मस्तिष्क के भीतरी भाग यानी केन्द्र में होती है। इसी स्थान में सभी तन्मात्राओं (शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि के सूक्ष्म रूप) के ठहरने का स्थान है। यहाँ से ही पिनियल ग्लैण्ड को निकलता है रस तत्व। और यहाँ से ही दिव्य दृष्टि (तीसरा नेत्र), पिप्यटरी लैण्ड और मेडुला आव्लोन्गटा शरीर के सभी अवयवों को करती है नियन्त्रित। फिर भी मस्तिष्क का महत्व कम नहीं है। मस्तिष्क की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध जीव शास्त्री पण्डित डा. एम.डी. कुल, वर्जीनिया के मेडीकल कॉलेज में भाषण देते हुए कहा था कि मनुष्य के जीवन का आधार हृदय नहीं मस्तिष्क है। मस्तिष्क का अभी तक सम्पूर्ण रूप से विश्लेषण नहीं हो पाया है। वैज्ञानिको ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि मनुष्य का जीवन चेतन विज्ञान के स्थूल उपकरणों से नहीं समझा जा सकता हैं।

रहस्यमय ब्रह्माण्डीय स्पन्दन

इसी प्रसंग में वैज्ञानिकों का कहना है कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में समान रूप से एक विशेष प्रकार का स्पन्दन विद्यमान है। वास्तव

में वह रहस्यमय स्पन्दन परम चेतना का स्पन्दन है। निश्चय ही वह रहस्यमय परम चेतना परब्रह्म परमात्मा का पर्य्याय है, इसमें सन्देह नहीं। व्यष्टि रूप में वह परम चेतना, समस्त जड़–चेतन, पदार्थो, वस्तुओं और समस्त प्राणियों में कम अधिक मात्रा में विद्यमान है। मनुष्य में उसकी मात्रा सर्वाधिक होती है।

भारतीय योग तंत्र परम साधना मार्ग में स्पन्दन का अपना महत्व है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो योग तंत्र की यावत् साधना ब्रह्माण्डीय स्पन्दन पर ही आधारित है। शरीर में आठ स्थानों पर एक साथ स्पन्दन होता है। जिनको हम हृदय की धड़कन, और नाड़ी की गति कहते है, वह वास्तव में समष्टि रूप ब्रह्माण्डीय स्पन्दन का ही व्यष्टि रूप हैं। सभी स्थानों के स्पन्दनों में हृदय का स्पन्दन महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। इसलिए कि योगीगण हृदय केन्द्र पर ध्यानस्थ होकर वहाँ उत्पन्न होने वाले स्पन्दनों की सहायता से ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से संबंध स्थापित करते है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जैसे ब्रह्माण्डीय स्पन्दन, परम चेतना का स्पन्दन है, उसी प्रकार शरीरस्थ स्पन्दन है, चेतना का स्पन्दन। परम चेतना परमात्मा है और चेतना है आत्मा। आत्मा, व्यष्टि रूप है परमात्मा का।

चेतना से पराचेतना अथवा आत्मा से परमात्मा का सातत्य मिलन को ही कहते है सातत्य योग। सातत्य योग महायोग है परम योग है और है अखण्ड महायोग।

परब्रह्म परमात्मा परम शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और उसी परम शून्य में सदैव के लिए विलीन हो जाने की अवस्था का नाम है मोक्ष अथवा परम मुक्ति। परमात्मा यदि परम शून्य है तो आत्मा है महाशून्य। 'मै' यानी महाशून्य अथवा आत्मा। प्रत्येक व्यक्ति अपने को 'मैं' कहता है। 'मैं' उसका अपना नाम है, और माता–पिता द्वारा रखा गया नाम उसका दूसरा नाम है। 'मैं' का बोध हर स्थिति

में हर अवस्था में और हर समय बना रहता है बराबर। 'मैं' के प्रति किसी प्रकार का भ्रम अथवा सन्देह नहीं उत्पन्न होता व्यक्ति में। कभी भी। 'मैं' का बोध मृत्यु पर्यन्त क्या, उसके बाद भी बना रहता है। उसका नाश कभी नहीं होता।

व्यष्टि रूप शरीरस्थ स्पन्दन

व्यक्ति मर जाता है, लेकिन उसका मैं नहीं मरता। मरने के बाद सूक्ष्म शरीर में वह करता है बोध 'मै' का। इसी प्रकार कारण शरीर में भी। चेतना के स्पन्दन को सर्वप्रथम कारण शरीर ग्रहण करता है। उसमें सर्वाधिक मात्रा में स्पन्दन होता है। सूक्ष्म शरीर में स्पन्दन की मात्रा कम हो जाती है। और उससे भी कम हो जाती है स्थूल शरीर में। लेकिन स्थूल शरीर के मृत हो जाने पर सूक्ष्म शरीर का स्पन्दन दुगुना हो जाता है। यही कारण है कि मरणोपरान्त सूक्ष्म शरीर की मति–गति अत्यधिक हो जाती है। व्यक्ति की सोचने समझने की क्षमता में भी आशातीत वृद्धि हो जाती है। विचार शक्ति भी प्रबल हो उठती है। चेतना (आत्मा) से स्पन्दन द्वारा ही तीनों शरीर जुड़े हुए होते हैं एक दूसरे से। और चेतना जुड़ी हुई रहती है परम चेतना से। आत्मा और परमात्मा एक्य भाव का आधार एकमात्र स्पन्दन को ही समझना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का और अपने 'अहं' का बोध स्पन्दन के कारण ही होता है।

विश्व ब्रह्माण्ड : एक विशाल स्मृति पटल

योग विज्ञान के अनुसार सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड एक विशाल और अन्तहीन स्मृति पटल है और उस स्मृति पटल पर हजारो–लाखो वर्ष पूर्व भूतकाल की महत्वपूर्ण घटनाएँ अंकित हैं। इसी प्रकार हजारो–लाखों वर्ष आगे भविष्य काल में घटने वाली घटनाएँ भी है अंकित। वर्तमान में भी जो महत्वपूर्ण घटनाएँ घट रही है वे भी बराबर अंकित होती जा रही हैं उस विशाल स्मृति पटल पर। वे घटनाएँ केवल

पृथ्वी की ही नहीं अन्य लोक लोकान्तरों से भी संबंधित होती है। वे घटनाएँ चलचित्र की भाँति होती है। वर्तमान भौतिक विज्ञान की एक उपलब्धि है सी.डी.। विशेष धातु निर्मित उस छोटे से गोलाकार चमकीले प्लेट के गर्भ में मोटे–मोटे सात–आठ ग्रन्थों के विषय समा सकते है। सैकड़ों दृश्य, गीत–संगीत उसमें एकत्रित किये जा सकते है। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सरलता से पढ़ा जा सकता है दृश्यों को देखा जा सकता है और सुना जा सकता है दृश्यमय गीतों व संगीतों को भी। वास्तव में वह विशाल स्मृति पटल वर्तमान का सी.डी. ही हैं।

आगे के विषयों को समझने के लिए सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि आत्म चेतना से तीनों शरीर को एक सूत्र में बांधने वाला एक मात्र मन है। मन आत्म चेतना का क्रियाशील अवस्था है। पदार्थ के जैसे तीन रूप होते है–ठोस द्रव अथवा तरल और ऊर्जा। उसी प्रकार मन के भी तीन रूप है–ठोस, तरल अथवा द्रव और ऊर्जा। मन अपने ठोस रूप में स्थूल शरीर में तरल अथवा द्रव रूप में सूक्ष्म शरीर में और ऊर्जा रूप में रहता है कारण शरीर में। यहाँ यह भी इस सन्दर्भ में बतला देना आवश्यक है कि जीवन काल में भी मन के ये तीनों रूप विद्यमान रहते है। जब तक हम जागते रहते हैं तब तक मन अपने ठोस रूप में रहता है। जिसके फलस्वरूप हम भौतिक पदार्थो व वस्तुओं तथा अपने भौतिक शरीर के साथ–साथ अपने भौतिक जीवन का अनुभव करते है। स्वप्नावस्था में मन अपने तरल रूप में रहता है। और यही कारण है कि स्वप्नावस्था में प्रत्येक दृश्य और प्रत्येक वस्तु अस्थिर, अस्थायी होती है। उनमें बद्धता तथा एकरूपता नहीं होती। इसी प्रकार प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था में मन अपने ऊर्जा रूप में रहता है।

मरणोपरान्त पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर सूक्ष्म शरीर में

पहले की ही तरह कारण शरीर का भी अस्तित्व बना रहता है, इसलिए सूक्ष्म शरीर में मन का तरल रूप और ऊर्जा शरीर, अस्थिर होते हुए भी अति शक्तिशाली गतिवान और तीव्रवान होता है। कोई भी भौतिक वस्तु उसकी गति में बाधक सिद्ध नही होती। ध्वनि से भी उसकी गति अधिक तीव्र होती है। (पढ़िये परलोक विज्ञान और मरणोत्तर जीवन का रहस्य) कहने की आवश्यकता नही मन के उपर्युक्त तीनों रूप से स्पन्दन का गहरा संबंध है।

कारण शरीर में मन का ऊर्जा रूप है इसलिए कारण शरीर को ऊर्जामय शरीर भी कहते है। इस शरीर की गति शक्ति प्रबल होती है। ज्ञात होना चाहिए कि सबसे अधिक गति मन की है, उसके बाद विचार की गति है। उसके बाद प्रकाश की और विद्युत की गति है और उसके बाद गति है ध्वनि की। सूक्ष्म शरीर की गति विद्युत की गति के समान होती है। जिस सूक्ष्म शरीर में एक्स्ट्रल के कण अधिक होते है। उस सूक्ष्म शरीर की गति, ध्वनि की गति के समान होती हैं। इसी प्रकार कारण शरीर की गति मन और विचार के बीच की गति के समान होती है। ऊर्जामय होने के कारण स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर में होने वाले स्पन्दनों से सौ गुना अधिक स्पन्दन कारण शरीर में होता है।

तीनो शरीरों के स्पन्दन ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से मिलकर एक विशेष प्रकार के विद्युत चुम्बकीय तरंगों को जन्म देते है। लेकिन उन तीनों शरीरों से उत्पन्न होने वाली तरंगों के कम्पनों की बारम्बारता एक दूसरे से भिन्न होती है। सर्वाधिक बारम्बारता कारण शरीर में होती है, उससे थोड़ा कम सूक्ष्म शरीर में और उससे भी कम स्थूल शरीर में होती है। मानवेत्तर प्राणियों और जीव जन्तुओं में भी विद्युत चुम्बकीय तरंगे और उनके कम्पन होते हैं, जिसके फलस्वरूप वे अपने सजातीय की ओर आकृष्ट होते है और काम वासना की भावना उत्पन्न होती है

उनमें। अब रही मनुष्य की बात। जिस स्त्री–पुरुष के शरीर में विद्युत चुम्बकीय तरंगों के कम्पनों की बारम्बारता अधिक होती है उसके प्रति लोग सहज ही आकर्षित हो जाते है। स्त्री में यदि अधिक है तो पुरुष उसके प्रति आकर्षित होगा। इसी प्रकार यदि पुरुष में अधिक मात्रा में होगा तो सहज भाव से स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होगी। कहने का तात्पर्य यह कि सजातीय हो या हो विजातीय दोनों के बीच आकर्षण के कारण होते है तरंगो के कम्पन ही।

इस प्रसंग में यह कहना अनावश्यक न होगा कि एक मात्र उसी आकर्षण के गर्भ से देशकाल पात्र के अनुसार श्रद्धा, भक्ति, अनुराग, मोह, प्रेम आदि का जन्म होता है।

सन्त–महात्माओं और योगी साधकों के शरीर में सर्वाधिक मात्रा में स्पन्दन होते है। जो बाहरी वातावरण में विद्यमान ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से मिलकर एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न करते हैं। उन तरंगों के कम्पन इतने तीव्र और इतने प्रखर होते है कि जहाँ वे दिव्य विभूतियाँ निवास करती हैं – वहाँ के वातावरण में दूर–दूर तक उनका प्रभाव रहता है। वास्तव में वे कम्पन आध्यात्मिक स्तर के होते हैं। जो भी व्यक्ति उनके सीमा क्षेत्र में प्रवेश करता है वह अपने आपमें एक अनर्वचनीय शान्ति का अनुभव करता है। और एक विशेष प्रकार का आनन्दानुभूति होती है उसे। इसमें सन्देह नहीं। यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि ऐसे दिव्य पुरुषों के ब्रह्मलीन होने के पश्चात भी उनके स्थान और उनके समाधि स्थल के वातावरण में दीर्घ काल तक वे आध्यात्मिक कम्पन विद्यमान रहते हैं। और जिनके द्वारा दिव्य पुरुषों की आत्माएं उस स्थान से और उस समाधि स्थल से सम्पर्क बनाए रखती हैं बराबर।

एक दिव्य महात्मा से सम्पर्क

अघोर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सन्त बाबा कीनाराम का समाधि स्थल

वाराणसी के शिवाला मुहल्ले में स्थित है। आज से ४५-५० वर्ष पूर्व समाधि से लगे हुए खेत थे किसानो की झोपड़ियाँ थी, सैकड़ों ताड़ के पेड़ थे। और न जाने कितने पेड़ थे आम-जामुन, कटहल, पाकड़, पीपल, नीम आदि के। जिनकी डालों पर अपने पैर फंसाये अनगिनत संख्या में ची-चीं करते हुए झूलते रहते थे चमगादड़ों के झुण्ड के झुण्ड।

बाबा कीनाराम की समाधि के आस-पास उन सिद्ध सन्तों की भी समाधियाँ हैं-जो समय-समय पर उस महान अघोर साधक की गद्दी को उपलब्ध हुए थे। वर्तमान समय में तो वहाँ का वातावरण अत्यधिक आधुनिक हो गया है किन्तु उस समय ऐसा कुछ भी न था। वहाँ के चारो ओर का वातावरण पूर्ण रूप से आध्यात्मिक था। उस आध्यात्मिक वातावरण में उदासी भरी गहरी शान्ति सदैव पसरी रहती थी। गांजा तम्बाकू और चीलम की मीठी-मीठी सुगन्धों से भरा रहता था वहाँ का वायु मण्डल। वहाँ के वातावरण में प्रवेश करते ही विचित्र-सी अनुभूति होती थी आत्मा को। लगता था मानो किसी अनर्वचनीय दिव्य लोक में प्रवेश कर गयी आत्मा।

मेरे पितामह स्व. बेचनजी शर्मा बाबा कीनाराम की गद्दी के मुख्य पुरोहित थे। अत्यधिक सम्मान था वहाँ पितामह जी का। जन्माष्टमी, रामनवमी आदि पर्वो पर होने वाले कर्मकाण्ड का उत्तरदायित्व उन्ही पर था। भण्डारा हो या हो नये सन्त का गद्दी ग्रहण समारोह उनसे संबंधित समस्त कार्य उन्हीं की उपस्थिति और निर्देशन में होता था सम्पादित। प्रायः नित्य ही सायंकाल के समय वहाँ जाने का नियम था मेरे पितामह जी का। कभी-कभी मैं भी चला जाया करता था उनके साथ। सन् १६५६ में पितामह जी का शिव शिव हो गया। उस महान योगी के शरीर त्याग के पश्चात् मेरा मन अत्यधिक अशान्त हो गया था। और उस अशान्त मन को शान्त करने के उद्देश्य से

प्रायः नित्य ही सांझ के समय बाबा कीनाराम के स्थान पर जाने लगा मैं। आश्रम की सीमा के अन्दर कई सन्तों की समाधियाँ थी। किसी एक समाधि के चबूतरे पर बैठ जाता था मैं सिर लटकाए और फिर न जाने क्या–क्या सोचने विचारने लगती मेरी आत्मा।

सावन–भादो का महीना था। और सांझ का समय। आकाश में काले–भूरे बादल उमड़–घुमड़ रहे थे। छोटी–छोटी बूंदे गिर रही थी और पुरुवा हवा के लय पर आम–पाकड़ के पेड़ झूम रहे थे। एक अबूझ–सी उदासी भरी खिन्नता बिखरी हुई थी आश्रम के वातावरण में। नित्य की भांति बैठा हुआ था मैं एक टूटी–फूटी समाधि के धूल भरे चबूतरे पर मौन साधे चुपचाप। अपने आपमें एक अज्ञात शून्यता का विचित्र अनुभव हो रहा था मुझे उस समय। सांझ की स्याही अब धीरे–धीरे रात की कालिमा में बदलती जा रही थी और उसी के साथ गहरी होती जा रही थी वातावरण की निस्तब्धता भी। एकाएक हवा का एक तीव्र झोका आया और समाधि के चारो ओर बिखर गया और उसी के साथ चन्दन जैसी सुगन्ध भी फैल गयी वातावरण में। न जाने क्यों मेरा सारा शरीर झनझना उठा एक बारगी और रोयें खड़े हो गये। सिर घुमाकर देखने लगा मैं अपने चारो तरफ और मेरी दृष्टि फिर जहाँ और जिस वस्तु पर ठहरी, वह थी एक मानवाकृति। हे भगवान! कौन था वह पाकड़ के नीचे खड़ा व्यक्ति? एक अतिवृद्ध व्यक्ति था वह। रात के स्याह अंधेरे में भी स्पष्ट दिखलायी दे रहा था उसका आकार प्रकार और रूप रंग। मुड़ा हुआ सिर, दाढ़ी, मूंछ भी सफाचट, कमर में लिपटी हुई सफेद लुंगी उसके अलावा और कोई कपड़ा नहीं गले में बड़े–बड़े रुद्राक्ष की माला जो काफी नीचे तक झूल रही थी। एक हाथ में किसी पशु के मांस का रक्त रंजित लोथड़ा और दूसरे हाथ में नर मुण्ड। मेरी ओर घूर–घूर देख रहा था वह रहस्यमय वृद्ध व्यक्ति। आँखे लाल थी उसकी। लगा, जैसे खूब जमकर

शराब पी रखी हो उसने। अपलक निहारता मैं उसकी ओर। अपने आपको सम्मोहित–सा अनुभव करने लगा था मैं। कुछ क्षण बाद वह रहस्यमय वृद्ध व्यक्ति धीरे–धीरे चलकर मेरे करीब आया और सामने खड़ा हो गया तनकर। फिर उसकी आवाज सुनायी दी मुझे। वह धीमें किन्तु गम्भीर स्वर में कह रहा था–मैं कौन हूँ? और कहाँ से आया हूँ, यह जानने समझने की आवश्यकता नहीं। बस, मेरे प्रश्न का उत्तर दो–यहाँ क्यों और किस लिए बैठे हो?

तत्काल मुझसे कुछ बोला न गया। मुँह बाये उसकी ओर देखने लगा था मैं। फिर किसी प्रकार अपने आपको संभाला और कांपते स्वर में बोला–मेरी आत्मा अत्यन्त व्यग्र और अशान्त है बाबा। यहाँ बैठने पर थोड़ी शान्ति मिलती हैं, इसीलिए चला आता हूँ ...। इसके आगे कुछ बोला न गया मुझसे। एक अज्ञात सा भय छा गया था मेरे मन प्राणों पर उस समय। शान्ति बाहर नहीं अपने भीतर खोजो बेटा, ऐसा लगा जैसे कोई बहुत दूर किसी सुनसान घाटी से बोल रहा हो–हर आदमी अपने आपमे अकेला हैं और जो आदमी उस अकेलेपन में जीना जान जाता हैं उसी को मिलती हैं असली शान्ति ....। और दूसरे क्षण कांच की तरह छन्न से टूट गया सम्मोहन। चारो ओर सिर घुमाकर देखा अंधेरे में कोई नही था वहाँ।

कौन था वह रहस्यमय व्यक्ति। पूरी रात नींद नही आयी मुझे। निश्चय ही कोई अघोर मार्गीय सन्त था वह रहस्यमय व्यक्ति, इसमें सन्देह नहीं। भोर के समय हल्की सी झपकी लगी और उसी अवस्था में मुझे दिखलायी दिया वह। उसके व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार का आध्यात्मिक आकर्षण था और था एक विचित्र प्रकार का सम्मोहन। उसके रक्ताभ होठों पर हल्की मुस्कराहट थी और वह अपनी स्वप्निल आँखों से देख रहा था मेरी ओर।

बाबा कीनाराम की गद्दी से संबंधित एक सन्त थे, बाबा सोमारु

राम। एक परम सिद्ध महात्मा थे बाबा सोमारु राम। मुझे बहुत मानते थे वह। काशी के हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में चिता की जली–बुझी लकड़ी लेने आते थे वह कभी–कभी। उसी समय मेरी भेंट होती थी उस परम सन्त से। एक दिन अवसर पाकर मैंने सारी घटनाएँ बतलायी और अन्त में सपने की भी बातें बतलायी मैंने। सब सुनकर बाबा सोमारु राम पहले तो चुप रहे फिर बोले–जहाँ तक मैं जानता हूँ–लगभग सौ–डेढ़ सौ वर्ष पहले बाबा कीनाराम के स्थान पर गिरिनार से चलकर एक महात्मा पधारे थे। क्या नाम था उनका यह तो मैं नहीं बतला सकता लेकिन सिद्ध सन्त अवश्य थे वह। सुना था कि आकाश मार्ग से दूर–दूर तक कि यात्रा करते थे वह महाशय। कई प्रकार की दुर्लभ सिद्धियाँ भी प्राप्त थी उनको। लेकिन उनका प्रदर्शन कभी कदा आवश्यकता पड़ने पर ही करते थे वह। जीवन के अन्तिम काल में काशी में ही रहे और अन्तिम समाधि भी ली उन्होंने काशी में ही। लेकिन शिव–शिव हो जाने के बाद भी बाबा कीनाराम की साधना स्थली के प्रति उनका आकर्षण बराबर बना रहा और इसी कारण अपने सूक्ष्म शरीर से कभी–कदा आ जाया करते है वह साधना स्थली पर। तुमको उनका दर्शन प्राप्त हुआ इसे तुम अपना परम सौभाग्य समझो बेटा। ऐसे उच्च कोटि के सन्त महात्मा का दर्शन किसी अध्यात्मिक संस्कार सम्पन्न व्यक्ति को ही उपलब्ध होता है।

बाबा सोमारु राम से यह सब वृत्तान्त सुनकर अवाक् रह गया मैं एक बारगी।

वह रहस्यमय युवक

इस घटना के लगभग दस वर्ष बाद। नित्य की भाँति काशी के लालीघाट की टूटी–फूटी और धूल से भरी सीढ़ियों पर बैठा श्मशान में जलती हुई चिताओं को देख रहा था मैं। सांझ घिरने लगी थी। पूरब का आकाश सफेद हो रहा था धीरे–धीरे। चांद निकलने वाला

था शायद। अचानक सामने लाली घाट की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आते हुए एक युवक पर दृष्टि पड़ गयी। उसके शरीर पर सफेद लुंगी और लक–दक करता सफेद कुर्ता था। लेकिन उसका सिर मुड़ा हुआ था। गले में रुद्राक्ष की माला थी। उसकी बड़ी–बड़ी रहस्यमयी आँखों को तो कभी भूल ही नही सकता मैं। उफ् गजब की चमक थी उसकी भौराली आँखों में। मेरे सामने तन कर खड़ा हो गया वह रहस्यमय युवक और उसी समय कोई अच्छी सी सुगन्ध बिखर गयी चारो ओर। कुछ परिचित सी लगी वह सुगन्ध।

क्या मैं यहाँ बैठ सकता? धीमी किन्तु मधुर स्वर में बोला वह युवक?

हाँ! हाँ! क्यों नहीं आईये थोड़ा सरक गया मैं अपने स्थान से। अपने आपमें अति गम्भीर लगा मुझे वह। अपने संक्षिप्त परिचय में उसने केवल इतना ही बतलाया कि सभी शक्ति पीठों और ज्योतिर्लिगों का दर्शन करते हुए काशी आया है। आध्यात्मिक विचार और साधना भाव रखता है वह। विशेष रुचि अघोर साधना मार्गीय में है उसकी। अघोर साधना साहित्य का अध्ययन भी किया होगा आपने? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उस युवक ने क्षितिज में उगते हुए चाँद की ओर देखते हुए कहा – हाँ! जी! बिना गहन अध्ययन किये साधना मार्ग में कैसे चला जा सकता है? साधना संबंधी विषयों का गहन अध्ययन और गहन चिन्तन–मनन करना आवश्यक है।

इस दिशा में शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु अलग–अलग होते है।

हाँ! ठीक कहा आपने। मेरे शिक्षा गुरु थे स्वामी शंकर भारती जी महाराज।

यह नाम सुनते ही एकबारगी चौक पड़ा मैं। स्वामी शंकर भारती का नाम मेरे लिए जाना पहचाना था। दो सौ वर्ष पूर्व काशी के उद्भट विद्वान माने जाते थे स्वामी शंकर भारती जी महाराज। न्याय, वैषेसिक,

सांख्य दर्शन के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य का भी गहन अध्ययन था उन्हें। योग तंत्र में भी उनकी गति थी। स्वयं ही एक महा योगी पुरुष थे वह इसमें सन्देह नहीं। लेकिन इस युवक को कैसे शिक्षा उपलब्ध हुई उस प्रकाण्ड विद्वान और उच्चकोटि के साधक से? इसकी आयु तो अधिक से अधिक तीस–पैतीस साल होगी बस...। समझ में नहीं आ रहा था कुछ। क्या वह झूठ बोल रहा था? लेकिन देखने सुनने में सुसंस्कृत विद्वान और परिष्कृत लगने वाला व्यक्ति आखिर झूठ क्यों और किसलिए बोलेगा?

चाँद ऊपर चढ़ आया था आकाश में। वातावरण में सांय सांय हो रहा था। चितायें बुझ चुकी थी। उस रहस्यमय युवक ने आगे कहना शुरू किया शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात काशी में एक साधु से परिचय मेरा हो गया। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर उस साधु के साथ हिमालय की ओर चल पड़ा मैं। और अन्त में वह साधु मुझे उस स्थान पर ले गया – जहाँ चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के अलावा और कुछ नहीं था। गहन निस्तब्धता थी वहाँ के वातावरण में। ऐसा लगने लगा कि किसी अज्ञात परम शून्य अवस्था में प्रवेश कर गयी हैं मेरी आत्मा।

साधु प्रायः मौन साधे रहता था। आवश्यकता पड़ने पर ही थोड़ा बहुत बोलता था। एक रात मैंने उस सुनसान निर्जन स्थान से धुंये की एक लकीर आकाश की ओर उठती हुई देखी। अपलक उसकी ओर देख रहा था मैं। थोड़ी देर बाद वह धुयें की रहस्यमयी लकीर पर्वत शिखरों के ऊपर से होती हुई आकाश में विलीन हो गयी। लेकिन उस स्थान से उसका संबंध बना रहा। टूटा नहीं था। उस रहस्यमयी धुंये की आकाश को छूती हुई लकीर को देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था मैं। जब मैंने साधु से उसके संबंध में पूछा तो उसने बतलाया कि वह लकीर और कुछ नहीं बाबा गोरखनाथ की धुनी से निकलने

वाले धुंये की लकीर है। धुंये की वह लकीर से रुपहला प्रकाश निकल रहा था, जिससे वह नीचे से ऊपर तक बिल्कुल साफ दिखलायी दे रहा था मुझे घोर अन्धकार में भी।

बाद में साधु ने बतलाया कि वह स्थान महाश्मशान है, भौतिक नहीं, आध्यात्मिक। ऐसे महाश्मशान में परमशून्य का अनुभव होता है। सम्भव है उस परमशून्यता का अनुभव तुम्हारी आत्मा भी कर रही हो इस समय। सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति प्रकट की मैंने।

महाश्मशान में योग दीक्षा

तुमको इस हिम प्रान्त में मैं क्यों और किसलिए अपने साथ लाया हूँ सम्भवतः इससे अपरिचित हो तुम।

यह सुनकर मुझसे कुछ बोला न गया। अंधेरा इतना घना था कि हम समीप होते हुए भी एक दूसरे को देख नहीं पा रहे थे। साधु ने आगे कहना शुरू किया – जानने समझने का अर्थ नहीं, बस इतना तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि इस परम गुह्य स्थल तुमको दीक्षा देनी है मुझे।

दीक्षा ?...

हाँ दीक्षा! यह कह कर शायद अपना दाहिना हाथ मेरी ओर बढ़ाया क्योंकि दूसरे क्षण उसकी उंगलियों के स्पर्श का अनुभव अपने कपाल प्रदेश पर हुआ मुझे। पहले कुछ विचित्र सा लगा, और फिर क्या हुआ यह नहीं जानता मैं। शायद आप विश्वास नहीं करेंगे, हो सकता है कोई भी विश्वास न करे। जब मेरी चेतना वापस लौटी तो अपने आपको गिरिनार के घने जंगलों में ध्यानस्थ पाया। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। कहाँ हिमालय का वह दुर्गम हिम प्रान्त और कहाँ यह पर्वतीय अरण्य प्रदेश। इतना दूर कैसे चला आया मैं? समझ में नहीं आ रहा था कुछ। हाँ! यह अवश्य था कि अपने अन्तराल में किसी अज्ञात वस्तु का अवर्णनीय अनुभव कर रहा था मैं उस समय। वह अज्ञात वस्तु

क्या थी? बतला नहीं सकता। पूरे तीस वर्ष गिरिनार में रहा और योग साधना की मैंने। इस अवधि में उस साधु से मेरा आन्तरिक संबंध बराबर बना रहा और उसी अवस्था में उसका बराबर मार्ग दर्शन उपलब्ध हुआ मुझे साधना भूमि में। काशी के प्रति मुझे अत्यधिक मोह था। विशेष कर बाबा कीनाराम के स्थल से। साल–छः महीने में एक बार अवश्य आता था मैं काशी गिरिनार से चल कर। और कुछ दिन रहकर वापस ही लौट जाता था।

मेरी एक शंका है। क्या आप उसका निराकरण करेंगे?

क्यों नहीं, बतलाईये कौन सी शंका है?

मेरी यह समझ में नहीं आ रहा है कि लगभग दो सौ वर्ष पूर्व काशी में शंकर भारती महाशय का अस्तित्व था और उनसे आपने शिक्षा ग्रहण की थी। लेकिन आप देखने में अधिक से अधिक पैतीस वर्ष की आयु के प्रतीत होते हैं आप।

आपकी शंका निर्मूल नहीं है। जो कोई भी मेरी इस कथा को सुनेगा उसी के मन में इस प्रकार की शंका उत्पन्न होगी। स्वाभाविक भी है। सच पूछिए तो मेरी आयु इस समय दो सौ पैसठ वर्ष छः माह है।

ऐं! क्या कहा आपने दो सौ पैसठ वर्ष छः मास? ... लेकिन यह कैसे सम्भव है? इतना कह कर मुंह बाये मैं देखने लगा उस युवक की ओर आश्चर्यचकित भाव से।

सब सम्भव है। प्रकृति के राज्य में कुछ भी आश्चर्यजनक और असम्भव नहीं है। योगी का कार्य है प्रकृति पर विजय प्राप्त करना। प्रकृति एक महाशक्ति है। उस पर विजय प्राप्त हो जाने के पश्चात योगी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर कालञ्जयी भी हो सकता है। वृद्ध से युवा भी हो सकता है। अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर कुछ भी कर सकने का भी सामर्थ्य रखता है। जीवित अथवा मृत व्यक्ति

के शरीर में आवश्यकता पड़ने पर परकाया प्रवेश भी कर सकता है वह?

क्या आपने कभी परकाया प्रवेश किया है?

मेरा यह प्रश्न सुनकर एक बारगी चौक पड़ा वह। फिर संभल कर बोला – उस समय मेरी अवस्था अस्सी साल की थी। जब मैं अन्तिम बार काशी की यात्रा की थी। मेरा पार्थिव शरीर अत्यन्त निर्बल हो चुका था। काशी से लौटने के बाद चिर समाधि ले ली मैंने गिरिनार में। लेकिन इससे क्या होता है? स्थूल से सूक्ष्म शरीर में चला गया मैं। उस शरीर में जीवित रहने का अपना कुछ और ही सुख, शान्ति और आनन्द है जो पार्थिव शरीर में सम्भव नहीं। पार्थिव शरीर तो एक प्रकार का बंधन ही है। सुख भी बंधा है और दुख कष्ट आदि भी। सूक्ष्म शरीर धारण करने के बाद मुझे पहली बार ऐसा लगा कि अब तक मैं एक घुटन भरा परतंत्र जीवन व्यतीत कर रहा था।

फिर ...

फिर क्या। सूक्ष्म शरीर में आनन्दमय रहने लगा मैं। जहाँ इच्छा होती वहाँ विचरण करता। काशी भी आता। सभी देवी देवताओं का दर्शन करता और बाबा कीनाराम के स्थल पर कुछ समय विश्राम भी करता। कभी कदा वहाँ आने वाले सूक्ष्म शरीरधारी सन्त महात्माओं से सत्संग भी हो जाया करता था। एक बार ऐसे ही वातावरण में बाबा कीनाराम के स्थल में एक महापुरुष पर मेरी दृष्टि पड़ी। वे परम योगी प्रतीत हुए मुझे। उनका जो व्यक्तित्व था वैसा व्यक्तित्व किसी देव पुरुष का ही होता है, मनुष्य का नहीं। उस दिव्य महापुरुष के साथ मैंने तुमको भी देखा। तुम कौन हो? यह समझते देर न लगी मुझे। क्या तुम यह जानते हो? दो साल पूर्व सांझ के समय जब तुम स्थल के एक पुरानी समाधि पर चुपचाप मौन साधे बैठे थे उस समय कौन मिला था तुमसे?

हाँ! याद आया, मैंने कुछ सोचते हुए कहा—उस व्यक्ति के संबंध में बाबा सोमारु राम ने थोड़ा बहुत बतलाया था मुझे।

मेरी बात सुनकर वह युवक थोड़ा हंसा और फिर बोला—वह व्यक्ति मैं ही था महाशय। अरे! क्या कह रहे हैं आप? भय, संशय और कौतूहल के मिले–जुले भाव से भर गया मेरा मन। आश्चर्य का होना भी स्वाभाविक था। वह रहस्यमय युवक अब और अधिक रहस्यमय बन गया मेरे लिए। वह चाहता क्या है?

शायद मेरे मन के भाव को समझ गया वह। सामने आकाश की ओर देखते हुए युवक ने आगे कहना शुरू किया – तुमसे मिलने के बाद न जाने कैसी व्यग्रता का करने लगा अनुभव मैं अपने अन्तराल में। एक प्रकार से अस्थिर हो गयी थी मेरी आत्मा। सम्भवतः पार्थिव शरीर को उपलब्ध होने के लिए ही वह अस्थिरता और व्यग्रता उत्पन्न हुई थी मेरे अन्तराल में उस समय। सचमुच मैं व्याकुल हो उठा था पार्थिव शरीर को प्राप्त के लिए। लेकिन क्यों? इसका उत्तर मेरे पास नहीं था।

फिर क्या हुआ? व्यग्र भाव से पूछा मैंने।

होगा क्या? यह शरीर देख रहे हो न। यह एक मारवाड़ी ब्राह्मण का शरीर है। किसी गर्भ में प्रवेश करने और फिर जन्म लेने का कष्ट कौन मोल ले। एक सिद्ध योगी के लिए परकाया प्रवेश ही उत्तम और श्रेष्ठ होता है। इसलिए कि पिछले जन्म की स्मृतियाँ पिछले जन्म का ज्ञान और अनुभव बराबर बना रहता है? जिनसे जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

मारवाड़ी ब्राह्मण का यह युवा शरीर कैसे प्राप्त हुआ आपको?

बड़ी ही विलक्षण और अविश्वसनीय कथा है बन्धु। यह कह कर एक लम्बी सांस ली उस युवक ने फिर थोड़ा रूक कर सामने की ओर देखते हुए कहना शुरू किया –

योगी का परकाया प्रवेश

अध्यात्म भूमि के अन्तर्गत योग तंत्र परक जितनी भी साधनाएं और उपासनाएं हैं, वे सभी स्थूल से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और उससे भी सूक्ष्मतम होती चली गयी है। उनका प्रारम्भ होता है स्थूल शरीर से। सभी प्रकार के देवार्चन, पूजन व्रत, जप, तप, प्राणायाम, ध्यान, धारणा आदि में मनोयोग और चित्त की एकाग्रता अभाव है तो वह निष्फल और व्यर्थ है। उसका कोई परिणाम नहीं निकलता। और उनके संस्कारों से सूक्ष्म शरीर वंचित रह जाता है। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच में मन का अस्तित्व है। आध्यात्मिक साधना भूमि में मन जितना स्थिर और चित्त जितना एकाग्र रहेगा उतना ही सूक्ष्म शरीर उनके मूलभूत परिणामों को संस्कार के रूप में स्वीकार करेगा। जो मृत्यु के बाद भी सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहेगा।

स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों का विभु है मन। अपने चेतन रूप में मन स्थूल शरीर में और अपने अवचेतन रूप में सूक्ष्म शरीर में क्रियाशील रहता है। दोनों शरीरों पर अधिकार है उसका। स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर उसके पहले रूप का अस्तित्व उसके दूसरे रूप में विलीन हो जाता है तब तक के लिए जब तक जीवात्मा को पुनः स्थूल शरीर उपलब्ध नहीं हो जाता है। और उसको उपलब्ध होते ही पुनः चेतन मन स्थूल शरीर में क्रियाशील हो उठता है। और सूक्ष्म शरीर में विद्यमान पूर्व संस्कार के अनुसार उसका कर्म क्षेत्र जीवन पर्यन्त के लिए बन जाता है संसार में। और उसी के अनुसार उसकी जीवन यात्रा हो जाती है प्रारम्भ।

ऐसा ही हुआ मेरे साथ भी बन्धु। शरीर से पृथक होने पर किसी भी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नही हुआ मेरे सामने। अब मेरी यात्रा सूक्ष्म शरीर की यात्रा थी। मेरे पास अवचेतन मन की अगाध शक्ति थी और सूक्ष्म शरीर में विद्यमान था प्रबल आध्यात्मिक संस्कार। सूक्ष्म

शरीर को उपलब्ध होने जो पहला मुझे हुआ अनुभव वह था हल्कापन। और वह हल्कापन वैसा ही था जैसे कोई व्यक्ति दीर्घकाल तक किसी कारागार में रहने के पश्चात उससे मुक्त होने पर करता है। सूक्ष्म शरीर में रह कर संचित आध्यात्मिक संस्कार के आधार पर साधना मार्ग पर आगे बढ़ने लगा मैं। सूक्ष्म शरीर द्वारा साधनारत होने पर परकाया प्रवेश, आकाश गमन, दूर श्रवण आदि जैसी दुर्लभ और अलौकिक सिद्धियाँ अपने आप प्राप्त हो गयी मुझे। सूक्ष्म शरीर प्रकृति के नियमों और बन्धनों से मुक्त रहता है। सम्भवतः इसीलिए योगी को प्राप्त हो जाती है वे सिद्धियाँ। कारण कि उसका सूक्ष्म शरीर साधारण नहीं आध्यात्मिक होता है। मेरी साधना अबाध गति से आगे बढ़ती रही। सोचा था सूक्ष्म शरीर में इच्छानुसार रह कर साधना में पूर्ववत लाभ करूंगा। अपने आत्मबल से सूक्ष्म जगत में मैंने अपने लिए एक छोटी सी कुटिया का निर्माण कर लिया था। और उस कुटिया के चारो ओर एक सुन्दर तपोवन का भी। मैं साधना लीन था और था पूर्ण आनन्दमग्न।

लेकिन क्या बतलाऊँ बन्धु, ग्रहण लग गया जैसे मेरे उद्देश्य में। न जाने क्यों और कैसे भौतिक शरीर को उपलब्ध होने की कामना जागृत होती एकाएक मेरी आत्मा में। और उसी के साथ जागृत हो उठी त्र्यम्बकेश्वर महादेव के दर्शन करने की इच्छा भी। सम्भवतः इसकी पृष्ठभूमि में दीक्षा गुरु की अगोचर प्रेरणा ही रही हो। लेकिन उस समय मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

शिवरात्रि का महापर्व था उस दिन। सूक्ष्म शरीर द्वारा तत्काल पहुँच गया मैं त्र्यम्बकेश्वर दर्शन कर गोदावरी के तट पर आकर बैठ गया मैं। बड़ी भीड़–भाड़ थी वहाँ स्नानार्थियों की। पुरुषों से अधिक स्त्रियों की ही संख्या अधिक थी स्नान करने वालों में। शायद भक्ति भाव स्त्रियों में अधिक होता है पुरुषों से। संयोग ही कहिए इसे।

स्नानार्थियों की भीड़ में खड़े एक सुदर्शन युवक पर मेरी दृष्टि पड़ गयी एकाएक। अत्यन्त प्रभावोत्पादक सुन्दर और आकर्षक युवक था वह। न जाने क्यों देखने लगा मैं उसकी ओर अपलक। ब्राह्मण था। अपने वृद्ध माता–पिता और पत्नी को लेकर शिवरात्रि पर्व पर दर्शन पूजन, स्नान आदि करने के लिए आया था वह नासिक। दुर्भाग्यवश स्नान करते समय उसका पैर शायद फिसल गया और गहरे पानी में चला गया और डूबने लगा वह। भीड़ में हाहाकार मच गया। किसी प्रकार मल्लाहों ने उसे पानी के बाहर निकाला लेकिन तब तक शिव–शिव हो गया था उस युवक का। बड़ा ही हृदय विदारक और कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया था घाट पर। वह युवक अपने माता–पिता का एकमात्र पुत्र था। पत्नी का नाम था कपिला। अभी दो ही वर्ष हुए थे विवाह हुए। हाथ की मेहंदी भी अभी पूरी तरह नही छूटी थी और न जाने किस कारणवश विधाता ने कपिला की मांग सूनी कर दी असमय में ही। मैंने देखा – शव के पास बैठकर छाती पीटते हुए वृद्ध माता–पिता करुण स्वर में विलाप कर रहे थे। कपिला की स्थिति तो अत्यन्त नाजुक थी। अपने पति के शव के सीने पर अपना सिर रखे बस सिसक–सिसक कर रोये जा रही थी वह कातर स्वर में। बड़ा ही बोझिल हो गया था शोक से घाट का वातावरण। वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आंसू थे। सभी दुःखी और द्रवित थे। सभी असहाय दृष्टि से देख रहे थे उस सुन्दर युवक की निर्जीव काया को। मेरी तरह सूक्ष्म शरीरधारी सैकड़ों की संख्या में दर्शन–पूजन और स्नान के लिए उच्चकोटि के सिद्ध, सन्त, महात्मा वहाँ आये हुए थे। वे लोग भी उस करुण और हृदय विदारक दृश्य को देखकर द्रवित और विगलित हो उठे थे एक बारगी। मेरी बात छोड़िये। मुझ पर क्या गुजर रही थी उस समय यह तो मैं ही जानता था या फिर परमात्मा। और जब यह सुना कि उस मृत युवक का नाम शशिकान्त

शर्मा था तो स्तब्ध रह गया मैं। माता–पिता का दिया हुआ मेरा नाम भी शशिकान्त शर्मा था। संयोग ही कहा जायेगा इसे। दीक्षा प्रदान करने के पश्चात उसके स्थान पर गुरुदेव ने मेरा नाम रखा शशि शेखर नाथ।

... तो आपका नाम शशि शेखर नाथ है। जी हाँ।

तब तो आपका संबंध नाथ सम्प्रदाय से होना चाहिए।

ठीक समझा आपने। मेरे गुरु नाथ योगी थे। इतना कहकर शशि शेखर नाथ थोड़ा रूका और कुछ देर तक न जाने क्या सोचने के बाद आगे कहने लगा–भौतिक शरीर के प्रति मोह और आकर्षण तो था ही, लेकिन गर्भ द्वारा भौतिक शरीर को उपलब्ध होने की इच्छा नहीं थी। आपको मालूम होना चाहिए कि जितने प्रकार की शारीरिक और मानसिक यातनाएँ है – उन सबमें सबसे प्रबल गर्भ यातना है और उससे भी प्रबल है मृत्यु यातना। मृत्यु यातना का प्रभाव शरीर से अधिक मस्तिष्क पर पड़ता है – जिसका परिणाम यह होता है कि मरणासन्न व्यक्ति के जीवन की सारी स्मृतियाँ समाप्त हो जाती है। केवल बच जाता है शेष महत्वपूर्ण संस्कार जिसको लेकर सूक्ष्म शरीर बाहर निकल जाता है स्थूल शरीर के। भोगी हो या हो योगी, सभी को मरणोपरान्त कुछ समय के लिए प्रेत योनि में निवास करना पड़ता है, इससे किञ्चित मात्र सन्देह नहीं, बन्धु, यह परम सत्य है।

सच पूछिए तो इन्हीं सब कारणों से अनुकूल और योग्य गर्भ उपलब्ध होने के उपरान्त भी उसमें प्रविष्ट होकर जन्म लेना नहीं चाहता था मैं। इसका एक कारण यह भी था कि जन्म लेने के पश्चात कब और कैसी परिस्थियाँ जीवन में उत्पन्न होगी? और कब, किस अवस्था में पूर्व जन्म का साधना संस्कार उदित होगा? यदि उदित हुआ भी तो साधना मार्ग में आगे बढ़ने का सुअवसर प्राप्त होगा भी कि नहीं।

फिर ...?

फिर क्या? परकाया प्रवेश को ही उचित समझा मैंने, उसके लिए वैसा अवसर प्राप्त होता कहाँ? शशिकान्त के कपाल प्रदेश में अभी भी प्राण ऊष्मा विद्यमान थी। मैंने तुरन्त अपने आत्मतत्व को संकुचित किया और उसके खुले हुए मुंख से अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा उसकी मृत काया में प्रवेश कर गया मैं। कुछ क्षण लगा मृत काया में अपने सूक्ष्म शरीर को व्यवस्थित करने में मुझे।

जिसके फलस्वरूप शशिकान्त के स्थूल शरीर की रक्त वहा नाड़ी में रक्त का प्रवाह होने लग गया और उसी के साथ पाँचो प्रकार के प्राणों का भी होने लग गया प्रवाह।

संसार की दृष्टि में शशिकान्त शर्मा मर कर जीवित हो उठा था। घोर आश्चर्य की बात थी। शोक, करुणा, विलाप, क्रन्दन और कौतूहल मिश्रित प्रसन्नता और आनन्द की सुगन्ध बिखर गयी थी अब। वृद्ध माता–पिता जो अब तक शोक सन्तप्त थे, वे अपने एकमात्र पुत्र को सीने से लगाकर आशीर्वाद दे रहे थे। कपिला, जो कुछ क्षण पूर्व मंगलसूत्र तोड़कर अपनी मांग का सिन्दूर धोने जा रही थी वही अब भाव विह्वल होकर अपने पति को निहार रही थी सजल नेत्रों से। आश्चर्य, कौतूहल, स्नेह, प्रेम, करुणा और अपनत्व के मिले–जुले भाव थे उस समय कपिला के चेहरे पर थे उस समय। राजस्थान के एक समृद्ध शहर के प्रतिष्ठित नागरिक थे शशिकान्त के पिता, नाम था रविकान्त शर्मा। परिवार में पत्नी थी किरणबाला और एक मात्र पुत्र शशिकान्त और उसकी सुशीला पतिव्रता और धर्मनिष्ठ पत्नी थी कपिला। पूरा परिवार धर्म कर्म में आस्था रखने वाला पूर्ण आध्यात्मिक था। कभी कदा, भजन, पूजन, हवन आदि का भी आयोजन होता था। अमावस्या और पूर्णिमा को ब्राह्मणों को भोजन कराना अनिवार्य था।

एक सिद्ध योगी की आत्मा के लिए जिस प्रकार का वातावरण इस संसार में चाहिए वैसा ही वातावरण उपलब्ध हो गया था उस

ब्राह्मण परिवार में मुझे। और वातावरण और पारिवारिक रहन–सहन का प्रभाव मुझ पर पड़ना स्वाभाविक ही था और वह पड़ा। क्या बतलाऊँ बन्धु। कुछ समय तक अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया था और समझने लग गया था अपने आपको शशिकान्त शर्मा और कपिला का पति। मैं एक योगी था। कई दुर्लभ योग सिद्धियाँ प्राप्त थी मुझे। अपनी इच्छा से परकाया प्रवेश किया था मैंने। इसीलिए अपने पूर्व ज्ञान, पूर्व आध्यात्मिक स्मृति और पूर्व यौगिक अनुभवों को विस्मृत होने का प्रश्न ही नही था मेरे लिए। और इसीलिए अत्यधिक प्रयत्न करने के पश्चात भी अपने आध्यात्मिक विचार और योगजन्य स्वभाव में देश, काल, पात्र के अनुसार परिवर्तन न ला सका मैं। पग–पग पर बड़ी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता था मुझे। एक सामायिक और एक गृहस्थ परिवार में रहकर। कपिला भी पूर्ण धर्मपरायण सिद्ध हुई। वह भला क्या जानती थी उसके पति का मात्र केवल शरीर है आत्मा तो और किसी की है, जिसने उसके पति के मृत शरीर में प्रवेश किया है किसी उद्‌देश्य से। पति ही समझ कर खूब मेरी सेवा करती। खाने, पीने, सोने आदि का बराबर ध्यान रखती वह। सचमुच वह एक पतिव्रता नारी थी कपिला इसमें सन्देह नहीं। श्रद्धा, विश्वास, स्नेह, प्रेम और करुणा की साक्षात् मूर्ति थी वह इसमें भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं। कभी–कभी सोचता उस अबला के साथ अन्याय हो रहा है। अपने संस्कार के अनुसार प्रायः मौन रहता था मैं। बातें कम करता। एकान्त में अधिक रहता। परिवार में रुचि कम लेता। कपिला से भी आवश्यकता पड़ने पर बोलता मैं। मेरे स्वभाव और व्यवहार को देख कर सभी लोग परेशान और हैरान थे। सबसे अधिक चिन्तित थी कपिला। शशिकान्त के शरीर में एक किरायेदार की तरह रहते हुए पूरे दो साल हो चुके थे मुझे, लेकिन इस अवधि में कभी भी मेरा शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था उससे। इसके लिए कपिला

ने कई बार अपनी ओर से प्रयास किया, लेकिन टाल दिया करता था मैं। इससे भी चिन्तित और साथ ही चिड़चिड़ी हो गयी थी वह। भले ही उसके पति शशिकान्त का शरीर था पर आत्मा तो थी एक सिद्धयोगी की। मैं नहीं चाहता था कि उस विदुषी, और पतिव्रता नारी का सतित्व भंग हो सम्भवतः इन्ही सब कारणों के फलस्वरूप कभी–कभी खड़ी होकर स्थिर भाव से अपलक निहारा करती कपिला मुझे। शायद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इन सबका क्या हैं रहस्य? मेरी अपनी आन्तरिक स्थिति भी अत्यन्त दुविधा जनक हो गयी थी। अब क्या करूं और क्या न करूं? यही सोचता रहता था मैं बराबर। शशिकान्त का कमरा काफी लम्बा चौड़ा और हवादार था। उसमें उसका शयनकक्ष था और पुस्तकालय भी। सैकड़ों की संख्या में सभी विषयों की पुस्तकें थी वहां। योगी, सर्प और पागल कभी नहीं सोते फिर मैं क्यों सोता? अपने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लेता और पद्मासन की मुद्रा में बैठ कर समाधिस्थ हो जाता। दिन में समय मिलने पर पुस्तकें पढ़ा करता था। यह मेरी मुख्य दिनचर्या थी।

धीरे–धीरे समय आगे बढ़ रहा था और उसी के साथ भ्रम अविश्वास, शंका, कौतूहल के मिले–जुले भाव अब और अधिक स्पष्ट दिखलायी देने लगे थे मुझे कपिला के चेहरे पर अब मुझसे न जाने क्यों कतराने लगी थी। मेरे सामने भी कम आने का प्रयत्न करती वह। नारी सदा से रहस्यमयी रही है। उसके रहस्य को भला कौन जान सका हैं आज तक। मैं तो संसार समाज के अनुभवों से रिक्त एक योगी था इसीलिए तो रहस्यमय बना रहा मेरे लिए कपिला का व्यक्तित्व।

अन्त में क्या हुआ जिज्ञासु भाव से पूछा मैंने?

अन्त कौन जानता हैं बन्धु एक लम्बी सांस लेकर शशिशेखर नाथ आगे बोले– एक योगी होकर भी अपने परकाया प्रवेश के अन्त

को जान समझ नहीं पाया था मैं उस समय और जो होना था। वह एक दिन होकर के ही रहा न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर एक रात कपिला को आलिंगन बद्ध कर लिया मैंने और जिसका परिणाम हुआ शारीरिक सम्बन्ध प्रकृति पर विजय प्राप्त करने वाला एक परम सिद्ध योगी को पराजित कर दिया उस रात प्रकृति ने और पराजय का फल प्राप्त हुआ कपिला को पुत्र रत्न के रूप में।

प्रसन्न थी कपिला मातृत्व को उपलब्ध कर लेकिन मेरी आत्मा तो खण्डित हो चुकी थी बन्धु कभी–कभी गालों पर हाथ रख कर सोचता क्या इसी सबके लिए परकाया सिद्धि का उपयोग किया था मैंने? क्या संसार के मायाजाल में फंसने के लिए ही किसी अज्ञात ने प्रेरित किया था शशिकान्त के शरीर में प्रवेश करने के लिए?... कभी–कभी विह्वल हो उठता था मैं? और ऐसी ही विह्वलता के क्षण एक रात समाधि की अवस्था में अपने दीक्षा गुरू के दर्शन हुए मुझे तेजोमय प्राप्त शरीर में थे गुरुदेव। उनके पारदर्शक शरीर से शुभ्र प्रकाश विकीर्ण हो रहा था उस समय। सौम्य शान्त और निर्विकार मुख मण्डल और ज्योतिर्मय नेत्र था उनका।

शशि शेखर नाथ गुरुदेव का चिर परिचित गम्भीर स्वर सुनाई दिया मुझे, वे कह रहे थे– अब तक तुमने जो कुछ भी किया है वह सब मेरी योग शक्ति से प्रेरित होकर ही किया है। एक बार तुमने गुरू दक्षिणा की चर्चा की थी मुझसे उस समय मैं मुस्करा कर रह गया था। थोड़ा रूक कर दूसरे क्षण पूर्व गम्भीर स्वर में गुरुदेव बोले–एक सिद्ध योगी का अन्तिम लक्ष्य होता हैं कैवल्यपद की उपलब्धि किन्तु इस परम उपलब्धि के लिए पूर्ण रूप से कर्म मुक्त होना आवश्यक है। संसार में ये कुछ महत्वपूर्ण कर्म शेष हैं मेरे और उसके लिए गर्भ द्वारा पार्थिव शरीर ग्रहण करना अति आवश्यक हो गया था मेरे लिए। कपिला के पुत्र के शरीर में मेरी आत्मा है। तुम्हारे द्वारा मुझे शरीर

प्राप्त हुआ है समझ लो यही तुम्हारी गुरू दक्षिणा हैं। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। मेरा आशीर्वाद सदैव रहेगा तुम्हारे साथ?.... अब तुम्हारा कार्य समाप्त हैं। तुम्हे शशिकान्त के शरीर का त्याग कर अपने निज शरीर में स्थित हो जाना चाहिए। इसके लिए तुम्हे काशी जाना होगा और वहां सन्यास लेना होगा किसी योग्य सद्पुरूष से।.....,

सारी लीला गुरुदेव के योग माया की थी यह समझते देर न लगी मुझे। कपिला के पुत्र का नाम रखा गया था रविकान्त। ध्यान से मैंने देखा रविकान्त को। दो वर्ष का हो चुका वह इसके पहले कभी इस प्रकार से देखा नहीं था उसे मैंने। निस्सन्देह गुरुदेव से उस बालक का साम्य था वहीं ज्योतिर्मय नेत्र वैसा ही दमकता हुआ ललाट और वैसा ही चेहरे पर आध्यात्मिक भाव। वह भी स्थिर दृष्टि से अपलक देख रहा था मेरी ओर उस समय। कुछ क्षण के लिए मुझे लगा– गुरूदेव ही बैठे हैं मेरे सामने बाल्यरूप में। अब कुछ शेष नहीं रह गया था मेरे लिए। दूसरे ही दिन घर परिवार छोड़ दिया मैंने बिना किसी को कुछ बतलाए। एक सप्ताह पूर्व काशी आना हुआ और तभी से सन्यास ग्रहण करने के लिए योग्य विद्वान की खोज में भटक रहा हूं मैं काशी में। संयोग ही कहिए आप पर मेरी दृष्टि पड़ गयी तत्काल पहचान लिया मैंने आपको।

रात अधिक हो चुकी थीं चांद काफी ऊपर आ गया था आकाश में और गहरी हो गयी थी निस्तब्धता। श्मशान में भी पसर गया था सन्नाटा शशिशेखर नाथ अब मौन हो गया था और सूने पड़े श्मशान की ओर देख रहा था।

अविश्वसनीय सी लगने वाली शशिशेखर नाथ की रोचक और साथ ही रोमान्चमय कथा सुन कर कुछ विचित्र सा अनुभव करने लगा था मैं अपने आप में। तरह तरह के प्रश्न तरह तरह की जिज्ञासायें और तरह तरह की शंकाएँ उठने लगी थी मेरे मन में।

शायद मेरी मनः स्थिति को समझ गये थे शशिशेखर नाथ। गम्भीर किन्तु विगलित स्वर में बोले– मुझे सन्यास की दीक्षा देने के लिए काशी के एक सन्यासी महाशय तैयार हो गये हैं। उसकी चिन्ता मुझे नहीं है। यदि चिन्ता है तो सन्यास के पूर्व के कर्मकाण्ड की। यदि आप कृपा कर उनकी व्यवस्था कर देंगे तो आभारी होऊँगा आपका बन्धु। अविश्वास, शंका, संशय आंदि को स्थान न दे अपने मनमें। यथा समय प्रमाण प्राप्त हो जायेगा आपको मेरी कथा का। यह सुनकर सिर घुमाकर शशिशेखर नाथ की ओर देखा मगर बोला कुछ नहीं मैं। मेरे पिता श्री पं. अमरनाथ शर्मा अपने समय के काशी के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान और ख्याति प्राप्त कर्मकाण्डी थे। उनके जैसा कोई कर्मकाण्डी नहीं था, उस जमाने में। वे वैदिक भी तो थे। इसलिए उनके कर्मकाण्ड की अपनी विशेषता थी। दूसरे दिन मैंने शशिशेखर नाथ की कथा संक्षिप्त में सुनाई उन्हें और अन्त में सन्यास के पूर्व के कर्मकाण्ड को समाप्त कराने का उनसे अनुरोध भी किया मैंने।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि कोई भी व्यक्ति सन्यास ग्रहण करना चाहता हैं तो सन्यास दीक्षा के पूर्व उसे अपना श्राद्ध विधिवत् करना पड़ता हैं और उससे सम्बन्धित कर्मकाण्ड का भी करना पड़ता है सम्पादन दूसरे ही दिन पिता श्री द्वारा सम्पन्न हो गया श्राद्ध और उससे सम्बन्धित समस्त कर्मकाण्ड। उसी दिन सन्यास दीक्षा भी ले लिया शशिशेखर नाथ ने। प्रसन्न था वह। बाद में एक बहुत बड़े रहस्य का पता चला मुझे शशिकान्त के शरीर पर तो अधिकार कर लिया था उस योगी ने लेकिन उसकी आत्मा भटक रही थी प्रेत योनि में। उसका श्राद्ध होना आवश्यक था बिना श्राद्ध किये प्रेत योनि से आत्मा का मुक्त होना सम्भव नहीं था। इसी प्रकार सन्यास भी आवश्यक था, इसलिए कि आत्मा प्रेत योनि से मुक्त होने के बाद भवचक्र से भी मुक्त हो और इसीलिए श्राद्ध और सन्यास का आदेश दिया था

शशि शेखर नाथ को उसके गुरूदेव ने। इस रहस्य का पता स्वयं शशिशेखर नाथ को भी नहीं था। गुरू के आदेश पर अनजाने में उसके द्वारा बहुत बड़ा उपकार हो गया था और हो गया था बहुत बड़ा कल्याण एक भटकती हुई मृतात्मा का।

उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। काशी के सभी घाटों पर स्नानार्थियों की काफी भीड़–भाड़ थी। प्रातः काल का समय था गंगा की धवलधारा में लोगों ने एक सन्यासी के शव को बहते हुए देखा। वह बहता हुआ शव और किसी का नही, शशि शेखर नाथ का था। निश्चय ही जल समाधि लेकर शशिकान्त के मृत शरीर से अपने आपको मुक्त कर लिया था उसने।

समाप्त

प्रकीर्ण

लेख अथवा निबन्ध के रूप में पं. अरुण कुमार शर्मा के ज्योतिष, तंत्र और योग से संबंधित ऐसे कुछ विषय हैं जिनको उनके पुस्तक में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। पाठकों के ज्ञानार्थ तथा साथ ही उनके कल्याणार्थ उन लघु विषयों को पुस्तक के अन्त में प्रकीर्ण रूप में प्रस्तुत करने का आयोजन मैंने किया है। आशा है पाठकगण मेरे आयोजन को सहर्ष स्वीकार करेंगे। –व्यवस्थापक

श्री यंत्र साधना

अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में अनन्त देवी आसुरी शक्तियाँ चैतन्य और क्रियाशील हैं। इन्हीं का दूसरा नाम ब्रह्माण्ड ऊर्जाएँ भी है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में इन ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं तथा सूर्य की रश्मि तरंगों के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों का जन्म होता है—इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान जिनके द्वारा अणु, परमाणु की सृष्टि होती है।

इन तीनों प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगों के आधार पर ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं को भी तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है जिसे मनःशक्ति, प्राणशक्ति और वाक्शक्ति कहा जाता है वह वास्तव में ब्रह्माण्ड ऊर्जाओं के भी तीन भाग हैं अतः उन तीनों भागों की सम्मिलित शक्ति का नाम ही जीवनी शक्ति या चेतना शक्ति है। सृष्टि रूप में चेतना शक्ति जहाँ एक ओर समस्त ब्रह्माण्ड में चैतन्य है वहीं दूसरी ओर व्यष्टि रूप में मानव देह में ही चैतन्य व क्रियाशील है किन्तु चेतना शक्ति जहाँ ब्रह्माण्ड में असीम है वहीं देह में सीमित रूप को महामाया, माया, महाविद्या तथा परमा, परा की संज्ञा दी गयी है। वास्तव में तंत्र साधना इन्हीं दोनों रूपों की क्रमिक साधना है। विश्व ब्रह्माण्ड में समष्टि रूप चेतना शक्ति के सात केन्द्र हैं जिनको हम सात लोक के नाम से सम्बोधित करते हैं। व्यष्टि रूप चेतना शक्ति के भी देह में सात केन्द्र हैं जिनका सूक्ष्म अगोचर संबंध उन सातों लोकों से बतलाया गया है। योग शास्त्र शरीरस्य इन सातों केन्द्रों को चक्र के नाम से सम्बोधित करता है। इसी तथ्य के आधार पर पिण्ड

(मानव देह) और ब्रह्माण्ड की एकता स्थापित की गई है। इसी दृष्टि से चौरासी लाख योनियों में मानव शरीर को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। मानव देह दुर्लभ है। शुभ संस्कारों और पुण्यों का एक विशेष सीमा में एकत्रित होने पर चौरासी अंगुल का यह मानव देह प्राप्त होता है। इसे महिमा मिलने का दो प्रमुख कारण है। प्रथम यह कि पूर्ण विकसित होकर व्यष्टि रूप चेतना शक्ति, मन प्राण, वाक्, इस विद्या रूप में विभक्त होकर शरीर में क्रियाशील है। वही उसका समष्टि परमा और महाविद्या रूप कुण्डलिनी शक्ति के नाम से भी शरीर के प्रथम मूलाधार केन्द्र अथवा चक्र में प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान है। यह परमाशक्ति अपनी सर्वश्रेष्ठ लीलायें मनुष्य शरीर का आश्रय लेकर ही करती हैं। यद्यपि विष्णु के अनेक अवतार हुए तथापि जो अवतार सर्वाधिक माननीय है– राम, कृष्ण और बुद्ध उन्हीं को आश्रय करके इस काल की सारी धर्म साधना और काव्य साधना विकसित हुई है।

दूसरा यह कि परमब्रह्म परमेश्वर का यह आवास स्थल है। कुण्डलिनी रूप में यदि महाशक्ति परमेश्वरी मूलाधार केन्द्र में विराजमान है तो परमब्रह्म परमेश्वर शिव रूप में अन्तिम सातवें केन्द्र सहस्रार में समाधिस्थ है। शिव और शक्ति की नित्य लीला शरीर में हो रही है और यही लीला मानव जीवन है। यह लीला तभी समाप्त होगी जबकि शिव शक्ति एकाकार होकर सामरस्य भाव प्राप्त करेंगे। सामरस्य भाव प्राप्त होते ही जीवन लीला भी हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगी। भव चक्र से मुक्ति हो जायेगी। जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति मिल जायेगी। इसी को कहते हैं निर्वाण अथवा मोक्ष। शरीरस्थ शक्ति के सातों केन्द्र अथवा चक्र परमशून्य स्थान हैं अतः वह शक्तिपीठ है। जहाँ शून्य है वही शक्ति अपने पीठ का निर्माण करती है। शून्य में असीम शक्ति है। तांत्रिक भाषा में परमशून्य स्थान शक्तिपीठ को 'महायंत्र' कहते हैं। इस प्रकार मानव शरीर में सात महायंत्र हैं। मूलाधार शक्तिपीठ केन्द्र, परम शक्ति आदि शक्ति कुण्डलिनी का केन्द्र हैं। इस केन्द्र के मंत्र यंत्र का तांत्रिक नाम 'श्री विद्या' है। इसी को महाविद्या भी कहते हैं।

सातों केन्द्रों में तीन प्रमुख केन्द्र हैं– मूलाधार केन्द्र, अनाहत चक्र और आज्ञाचक्र। प्रथम केन्द्र वाक् शक्ति का पीठ है। दूसरा केन्द्र प्राण

शक्ति का पीठ है। तीसरा केन्द्र मनः शक्ति का पीठ है। दूसरे और तीसरे महायंत्र का नाम हादि विद्या और कादि विद्या है।

वाक् का दूसरा नाम आकाश तत्व भी है। एवमेव मूलाधार वाक् का केन्द्र है। 'वाक्' के चार रूप हैं– परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी। इस दृष्टि से वाक् शक्ति भी चार भागों या रूपों में विभक्त की जा सकती है। प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि शब्द दो प्रकार के हैं एक तो वह जो बिना किसी आघात के उत्पन्न होते हैं प्रथम को अनाहद शब्द कहते हैं किन्तु इन दोनों प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति महा बिन्दु के विस्फोट से होती है। प्रथम प्रकार का शब्द स्वयंवेद्य ज्ञान है जिसका अनुभव योगीगण सुषुम्ना में करते हैं। इसी स्वयंवेद्य ज्ञान का पर्याप्त स्वयंभू है। यह 'स्वयम्भू' परम शिव के रूप में मूलाधार में विद्यमान है।

महाबिन्दु के विस्फोट के समय जो आघात से शब्द उत्पन्न होता है उसका प्रथम सूक्ष्मतम् रूप परा है। इसी परा वाक् का नाम कुण्डलिनी है। परावाक् तो है महाचेतना शक्ति, महाविद्या शक्ति, परमा शक्ति किन्तु कुण्डलिनी उसका लाक्षणिक नाम है। मूलाधार चक्र त्रिकोणात्मक है इसलिये उसे महायोनि पीठ की संज्ञा दी गई है। इस त्रिकोणात्मक योनिपीठ के मध्य में अंगुष्ठ प्रमाण ऊँचा श्वेत वर्ण मांस पिण्ड है। परम शिव अर्थात् स्वयंवेद्य ज्ञान ही परम तत्व है। परम तत्व का ही दूसरा नाम परम शिव है। मेरुदण्ड के भीतर के ऊपर की ओर जाने वाली शून्य नाड़ी उस मांस पिण्ड के चारों ओर साढ़े तीन बार वेष्टित कर ऊपर की ओर गई है। उसी साढ़े तीन वलय में परा वाक् शक्ति विद्यमान है। सर्पिणी भांति उस कुण्डली अथवा वलय के आधार पर परावाक् शक्ति को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। परम ज्ञान रूप, परम शिव अथवा 'परम तत्व' स्वयंभू लिंग है और लिंग को सर्पिणी की भांति वेष्टित करने वाली परमा शक्ति अथवा परावाक् शक्ति कुण्डलिनी है।

इस प्रकार मानव शरीर में परम तत्व और परमा शक्ति दोनों की सत्ता है किन्तु प्रसुप्त अवस्थायें हैं। योग शास्त्र के इस गंभीर एवं रहस्यमय तत्व में श्रीविद्या निहित है। जैसाकि ऊपर संकेत किया जा चुका है श्रीविद्या ही एकमात्र महाविद्या और महामाया है। इसके केन्द्र मूलाधार चक्र का संबंध सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड से समझना चाहिये। 'श्रीविद्या' तंत्र

शास्त्र की अत्यंत गंभीर विद्या है और श्रीविद्या साधना है तंत्र शास्त्र की अत्यन्त रहस्यमयी साधना। इसके साधना मार्ग का निर्देशन योग्य गुरु ही दे सकने में समर्थ हैं। अनेक यंत्रों के साधन संस्कार उत्पन्न होने पर ही सद्गुरुं 'श्रीविद्या' की दीक्षा प्रदान करते हैं श्रीविद्या का ज्ञान गुरु मुखगम्य समझना चाहिये। तंत्र के अन्तर्गत कुल चौषठ विद्यायें हैं जिनमें महाविद्या सर्वश्रेष्ठ है। इस विद्या के श्रेष्ठ साधकगण आज भी प्रच्छन्न भाव से विद्यमान हैं। योग्य पात्र मिलने पर इस विद्या की दीक्षा भी प्रदान की जाती है। जैसाकि बतलाया गया है महाविद्या ही 'श्रीविद्या' है। इसके बारह प्रकार हैं जिसके अनुसार लक्ष्मी के भी बारह रूप हैं। प्रत्येक श्रीयंत्र की अधिष्ठात्री शक्ति एक महालक्ष्मी है। जिस प्रकार चौषठ विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ 'महाविद्या' है उसी प्रकार बारह प्रकार के श्री यंत्रों में सर्वश्रेष्ठ 'महा श्रीयंत्र' है। आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड, श्रीयंत्र चक्र अथवा महा श्रीयंत्र है। तिब्बत के गुप्त तांत्रिक मठ में मैंने 'महा श्रीयंत्र' बारह फुट लम्बे–चौड़े स्फटिक पाषाण पर उत्कीर्ण देखा था। मठ के आचार्य स्वामी दिव्यानन्द कापालिक ने बतलाया कि 'महा श्रीयंत्र' अभी तक पूर्ण रूप से जगत में प्रकाशित नहीं हुआ है। 'महा श्रीयंत्र' के रहस्य को समझना वास्तव में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के रहस्य को समझना है। उच्चकोटि के योगीगण ही उसे समझ सकते हैं।

बारह प्रकार की श्रीविद्या के अन्तर्गत एक श्रीविद्या महालक्ष्मी यंत्र भी है जिसका लौकिक दृष्टि से निम्नलिखित लौकिक कार्यो में उपयोग होता है।

1. व्यापार में लाभ व उन्नति के लिए। 2. मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए। 3. दारिद्रय नाश के लिये। 4. कठिन समस्याओं के हल के लिए। 5. आरोग्य लाभ के लिए।

अन्य शेष कार्यों के लिये यंत्र को ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण कराना चाहिए और उन सारे विधि विधानों को करना चाहिये जिनका उल्लेख ऊपर किया है। जो कामना कुत्सित नहीं है और जिसकी पूर्ति से किसी को हानि नहीं है, वह अवश्य पूंर्ण होगी। यदि पति–पत्नी में किसी को शारीरिक व्याधि नहीं है। उसे अवश्य तीन मास के अन्दर गर्भ लाभ होगा और पुत्र अथवा संतान होगा इसमें सन्देह नहीं। कठिन से कठिन से कठिन कोई भी समस्या होगी उसका निराकरण होगा। यदि मृत्यु कारक कोई भी रोग होगा उससे भी मुक्ति मिलेगी।

पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विश्वमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व।।
।। मन्त्र– ॐ श्रीं ह्रीं श्रीमहालक्ष्मै नमः।।

स्फटिक की माला द्वारा गुरुवार को या किसी शुभ नक्षत्र में 108 बार प्रतिदिन जप करें और प्रतिदिन यन्त्र के सामने शुद्ध घी का दीपक जलावें।

***

भक्त के कष्टों को दूर करते हैं हनुमान

अष्ट–सिद्धि नौ निधि के दाता वीर हनुमान की वंदना भला कौन नहीं करना चाहता। आसुरी शक्तियों और बुरी बला से बचाने वाले हनुमान की आराधना सब दुखों से मुक्ति दिलाने वाली है। जिस किसी ने भी हनुमान जी का सच्चे दिल से स्तवन कर लिया, उसने विजय प्राप्त कर ली।

राम के परम भक्त हनुमान और शंकर जी के ग्यारहवें रुद्रावतार भी हैं। उनकी पूजा रुद्र की ही पूजा है। भगवान शिव की तरह ही शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले भगवान हैं और कभी भी वे अपने भक्तों को निराश नहीं करते। विद्वानों का ऐसा मत है कि शंकर जी, भगवान नारायण के उपासक हैं। त्रेतायुग में राम के साथ रहने के लिए ही उन्होंने हनुमान जी के रूप में अवतार लिया।

अब सवाल यह कि शंकर जी ने वानर रूप ही क्यों धारण किया। इस संबंध में वेद, शास्त्र तथा रामायण आदि में कई प्रसंग आए हैं। एक वृतान्त में यह कहा गया है कि भगवान श्रीराम सदाशिव की आराधना करते हैं, वहीं भगवान शिव जी भी श्रीराम को अपना इष्ट देवता मानते हैं और उनकी आराधना करते हैं। किन्तु साक्षात् नारायण ने जब नर रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया तो शंकर जी शिव रूप में नर रूप की कैसे आराधना कर सकते थे? इसके लिए श्रीराम की उपासना के लिए वानरावतार धारण कर सकते थे? इसके लिए श्रीराम की उपासना के लिए वानरावतार धारण कर लिया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस रहस्य को दोहावली तथा विनय पत्रिका में प्रकट किया है। वे कहते हैं कि श्रीराम की उपासना से बढ़कर सरस प्रेम का और कोई भी कार्य नहीं हो सकता। इस प्रेम से वशीभूत होकर भगवान शंकर ने अपना रुद्रविग्रह परित्याग कर सामान्य वानर का रूप धारण कर लिया और प्रभु राम की सेवा में लग गए।

हनुमान जी की सबसे बड़ी–विशेषता है कि वे अपने भक्त की रक्षा तथा उसके मंगल के लिए सदा जागरूक रहते हैं इसलिए वे जाग्रत देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं। मंगल को जन्मे हनुमान जी की शायद ही कोई दिन ऐसा जातां होगा, जब उनकी पूजा नहीं होती होगी। प्रति सप्ताह मंगल और शनिवार को हनुमान जी की पूजा यही दर्शाती है कि कलियुग में वही संकटमोचन हैं।

हर ग्रह का एक दिन निश्चित है, लेकिन मंगलकर्ता हनुमान जी का हर दिन और हर पल है। श्रीहनुमान जी के स्मरण से मनुष्य में बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयता, निरोगता, विवेक और वाक्पटुता आदि गुण स्वभाव से ही आ जाते हैं और प्रभु चरणों में उनकी अखण्ड अविचल भक्ति स्थिर हो जाती है, इससे उसका कल्याण हो जाता है। यदि कोई भी संकट आए तो हनुमान चालीसा का पाठ तथा भूत–प्रेत तंग करें, तो बजरंग बाण का पाठ करने से सभी संकट दूर हो जाते हैं।

कलियुग में रुद्रावतांर अजर–अमर पवनपुत्र महाबलशाली श्री हनुमान ब्रह्मचर्य, पराक्रम, वीरता, भक्तों की पुकार सुनकर कष्ट दूर करने वाले देवता के रूप में सर्वाधिक उपास्य देव हैं। हनुमान जी का नाम संकटमोचन भी है, क्योंकि उनका नाम लेते ही सब संकट टल जाते हैं।

पवनपुत्र की साधना करने वाले को बुद्धि और बल की प्राप्ति होती है। रोगों व शत्रुओं का शमन होता है। मानसिक दुर्बलता की स्थिति में सहायता प्राप्त होती है तथा जीवन में साहस और संबल के रूप में हनुमानजी प्रतिक्षण साथ रहते हैं।

पूजा का विधान– किसी भी मंगलवार के दिन प्रातःकाल जल्दी उठकर स्नानादि कर अपने घर पूजन कक्ष में अथवा शांत एवं एकांत कमरे से लाल रंग के आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ जाएं। साधक को स्वयं भी पीत अथवा लाल रंग का वस्त्र धारण करना चाहिए।

अब अपने सामने एक चौकी पर लाल कपड़े का वस्त्र बिछाकर तांबे की प्लेट में लाल रंग के पुष्पों का आसन देकर प्राण–प्रतिष्ठत हनुमान यंत्र या तस्वीर को स्थापित करें। सिन्दूर से टीका करें तथा धूप, दीप अक्षत, पुष्प एवं नैवेद्य आदि से पूजन करें तथा शुद्ध घी का या चमेली के तेल का दीपक जलावें।

ध्यान करें–

बालार्कायित तेजसं त्रिभुवन प्रक्षोभणं सुन्दरं,
सुग्रीबादि समस्त वान गणैः संसैन्य पर्दाबुजम्।
नादेनैव समस्त राक्षसगणान् संभासयंत प्रभुं,
श्रीमद्रात पदाम्बुजस्मृति युंतध्यायामि वातात्म जम्।।

इसके पश्चात् श्री हनुमान जी के विभिन्न स्वरूपों का ध्यान करते हुए स्तुति करें।

रामभक्ताय नमः। महातेजसे नमः।
कपिराजाय नमः। महाबलाय नमः।
द्रोणाद्रिहराय नमः। दक्षिणाशाभास्करायनमः।
सीता शोकहराय नमः। सर्वविघ्न हराय् नमः।

विधि– विधान के अनुसार हनुमान जी के प्राण प्रतिष्ठित श्री हनुमान पूजा करें तथा निम्न मंत्र की 108 माला जप मूंगा या रूद्राक्ष की माला में सम्पन्न करें। अगर हनुमान यंत्र नहीं मिलता है तो हनुमान जी का दिव्य फोटो सामने रखकर पूजन कर सकते हैं।

मंत्र– **हं हं हनुमन्ताय नमः।**

साधना के आवश्यक नियम–

* साधना के दिन साधक को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए।
* हनुमान जी की साधना में केवल मूंगा और रूद्राक्ष की माला का प्रयोग करना चाहिए।
* हनुमान जी की साधना के दिन बंदरों को फल, चना आदि खिलाए।
* साधना के बाद हनुमान जी से अपनी त्रुटियों की क्षमा मांगना न भूलें।
* किसी भी गलत उद्देश्य से साधना न करें।

***

स्नान और उनके फायदे

मानव शरीर नौ छिद्रों वाला अत्यंत मलिन शरीर है, अतः शरीर की शुद्धि स्नान से ही होती है, जिसके बाद ही मनुष्य जप, पूजा–पाठ आदि समस्त कर्म करने का अधिकारी होता है।

हालांकि शुद्ध जल से प्रातःकाल स्नान करना शास्त्रों में श्रेष्ठ बताया गया है। फिर भी शास्त्रों में स्नान के कई भेद बताए गए हैं। लघु व्यास

स्मृति में बताया गया है कि सात प्रकार के स्नान होते हैं– ब्रह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वरुण, मानस और यौगिक। इनके अलग–अलग फायदे हैं और इनकी अलग–अलग विधियां है।

ब्रह्म स्नानः कुशा द्वारा मंत्रों का उच्चारण करते हुए अपने ऊपर जल से मार्जन करना ब्रह्म स्नान है।

आग्नेय स्नान : पूरे शरीर पर भस्म लगाना आग्नेय स्नान है क्योंकि भस्म अग्नि के पश्चात् उत्पन्न होती है, जिसमें सभी पदार्थ जलकर शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं।

वायव्य स्नान : गाय के खुर की धूलि को पूरे शरीर पर लगाना वायव्य स्नान है। इसमें वायु द्वारा ही खुर को उत्पन्न धूलि का योग रहता है इसलिए इसकी संज्ञा वायव्य है।

दिव्य स्नान : सूर्य किरण में वर्षा के जल से स्नान करना दिव्य स्नान है। ईश्वर की कृपा से जल में सूर्य की दिव्यमयी ज्योति के गुण भी समाहित हो जाते हैं। इसकी संज्ञा दिव्य स्नान की है।

वरुण स्नान : जल की डुबकी लगाकर स्नान करना वरुण स्नान है।

मानस स्नान : आत्मज्ञान के जरिए स्वयं को विकास और वास्तविकता की ओर उन्मुख करना मानस स्नान है।

यौगिक स्नान : विष्णु का चिन्तन करते रहना यौगिक स्नान है।

स्नान कब और कैसें ?

* स्नान किये बिना जो पुण्यकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है। उसे प्रेत ग्रहण कर लेते हैं।

* तेल लगाने के बाद, श्मशान में लौटने पर, स्त्री प्रसंग करने पर और क्षौरकर्म करने के बाद जब तक मनुष्य स्नान नहीं करता, तब तक वह चाण्डाल बना रहता है।

* यदि नदी हो, तो जिस ओर से उसकी धारा आती है, उसी ओर मुख करके तथा दूसरे जलाशयों में कूप में सूर्य की ओर मुंह करके स्नान करना चाहिए।

* कुएँ से निकाले हुए जल की अपेक्षा झरने का जल पवित्र होता है। उससे पवित्र सरोवर का जल तथा उससे भी पवित्र नदी का जल बताया जाता है। तीर्थ का जल उससे भी पवित्र होता है और गंगा का जल तो सबसे पवित्र माना गया है।

* दूसरों के बनाए हुए सरोवर में स्नान करने से सरोवर बनाने वाले का पाप स्नान करने वालों को लगता है अतः उसमें स्नान न करें। यदि दूसरे के सरोवर में स्नान करना ही पड़े, तो पांच या सात बार मिट्टी को निकालकर स्नान करें।

* भोजन के बाद, रोगी रहने पर, महानिशा (रात्रि के मध्य दो पहर) में बहुत वस्त्र पहने हुए और अज्ञात जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिए।

* रात्रि के समय भी स्नान नहीं करना चाहिए, लेकिन सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के समय रात्रि में भी स्नान कर सकते हैं।

* पुत्र जन्म, सूर्य की संक्रान्ति, स्वजन की मृत्यु, ग्रहण तथा जन्म–नक्षत्र में चन्द्रमा रहने पर रात्रि में भी स्नान किया जा सकता।

* बिना शरीर की थकावट दूर किये और बिना मुख धोये स्नान नहीं करना चाहिए।

* सूर्य की धूप से संतप्त व्यक्ति यदि तुरन्त स्नान करता है, तो उसकी दृष्टि मंद पड़ जाती है और सिर में पीड़ा होती है।

* नग्न होकर भी स्नान नहीं करना चाहिए।

* पुरुष को नित्य सिर के ऊपर से स्नान करना चाहिए। सिर के ऊपर से स्नान करके ही देवकार्य तथा पितृकार्य करने चाहिए।

***

कैसे करें प्रार्थना

देवी–देवताओं का भी अपना अधिकार क्षेत्र होता है। अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर वह अपने भक्तों की याचना स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए पुराणों में बताया गया कि जो चीजें, जिस देवी– देवता के अधिकार क्षेत्र में हो, उसी की याचना करें।

सूर्य से आरोग्य, अग्नि से ऊर्जा, शिव से ज्ञान, विष्णु से मोक्ष, दुर्गा से रक्षा, हनुमान, भैरव से कठिनाइयों से पार पाने, सरस्वती से विद्या, लक्ष्मी से ऐश्वर्य, पार्वती से सौभाग्य, कृष्ण से संतान और गणेश से सभी वस्तुओं की याचना करनी चाहिए।

भगवान शंकर का श्वेतार्क पुष्प से, चन्द्रमा और सूर्य का अर्ध से, भगवान विष्णु स्तुति मात्र से और साधुजन हाथ जोड़ने से प्रसन्न हो जाते हैं। केतकी, कुंद, नागकेसर, जवा व मालती–ये फूल भगवान शंकर को नहीं चढ़ाने चाहिए। मातुलिंग और तगर कभी सूर्य को नहीं चढ़ाना

चाहिए। दूर्वा, आक और मदार, पलाश और कास के फूलों से तथा तमाल, तुलसी, आँवला से माँ दुर्गा का पूजन नहीं करना चाहिए।

नवरात्रि में कन्या पूजन के समय एक वर्ष या इससे कम अवस्था वाली कन्या नहीं लेनी चाहिए। कुमारी वही कहलाती है, जो कम से कम दो वर्ष की हो चुकी हो।

तीन वर्ष की कन्या को त्रिमूर्ति और चार वर्ष की कन्या को कल्याणी कहते हैं, पांच वर्ष वाली को रोहिणी, छह वर्ष वाली को कालिका, सात वर्ष की कन्या को चंडिका, आठ वर्ष वाली को शांभवी, नौ वर्ष वाली को दुर्गा और दस वर्ष वाली बालिका को सुभद्रा कहा गया है। इससे ऊपर की अवस्था वाली कन्या का पूजन नहीं करना चाहिए।

* देवपूजा उत्तराभिमुख और पितृपूजा दक्षिणाभिमुख होकर करनी चाहिए।

* नीला, लाल या काला वस्त्र पहनकर, बिना धुला हुआ वस्त्र पहनकर भगवान की उपासना करने वाला दोषी माना जाता है। उसका पतन होता है।

* गीले वस्त्रों को पहनकर या दोनों हाथ घुटनों से बाहर करके जो जप, होम और दान किया जाता है, वह निष्फल हो जाते हैं।

* नारी को केश खोलकर आचमन और देवपूजन नहीं करना चाहिए।

* तांबा मंगलस्वरूप, पवित्र और भगवान को बहुत प्रिय है। तांबे के पात्र में जो वस्तु भगवान को अर्पण की जाती है, उससे भगवान प्रसन्न होते हैं। अतः भगवान को भोग आदि वस्तुएं तांबे के पात्र में रखकर अर्पण करनी चाहिए।

* हाथ के अंगूठे के परिमाप से लेकर एक बित्ता परिमाप की ही प्रतिमा होनी चाहिए। इससे बड़ी प्रतिमा घर में शुभ नहीं मानी जाती।

* शिवलिंग पर चढ़े हुए फल, फूल, नैवद्य, पत्र और जल ग्रहण करना निषिद्ध है।

***

दीर्घायु के लिए सूर्य उपासना

आँखों की रोशनी चेहरे पर तेजस्विता लाने और जीवन में दीर्घायु प्राप्त करने के लिए सूर्य मंत्र के जप का विधान शास्त्रों में प्रामाणिक माना गया है–

ॐ घृणिः सूर्याय नमः। (पौराणिक मन्त्र)

ॐ ऐं ह्रीं सूर्याय नमः। (बीज मन्त्र)

शास्त्रों में बताया गया है कि सूर्य मंत्र का जप करने से ताम्र पात्र में प्रातः अर्घ देने से जीवन भर उसके चेहरे की कान्ति बनी रहती है। ज्यों–ज्यों आयु बढ़ती है, त्यों–त्यों उसकी आँखों की चमक भी बढ़ती रहती है और चेहरे पर दिव्य तेज आलौकिक होता है।

भूत, प्रेत, पिशाच आदि इस मंत्र के उच्चारण करते ही नजदीक नहीं आते हैं। अगर कोई इस मंत्र को भोजपत्र पर अष्टगंध से अंकित कर दाहिनी भुजा पर बांधे तो वह निश्चय ही किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

सभी प्रकार के मंगल कार्य उसके घर में होते हैं और ऐसा व्यक्ति धनवान, पुत्रवान, कीर्तिवान और विद्यावान होता है।

स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये और जीवन में अपने व्यक्तित्व को विश्वव्यापी बनाने के लिए सूर्य अनुष्ठान अत्यंत ही सहायक माना गया है। सूर्य मंत्र को मंत्रराज कहा जाता है। अतः दीर्घायु, स्वास्थ्य, भौतिक सुख, कीर्ति–लाभ आदि के लिए इस मंत्र का जप हमेशा करते रहना चाहिए।

वास्तव में इस कलियुग में यह मंत्र अत्यंत ही महत्वपूर्ण और तुरन्त फलदायक माना गया है।

***

तीर्थयात्रा क्यों होती है निष्फल ?

पैदल चलने का सामर्थ्य होने पर भी वाहन, घोड़े, तांगे आदि पर जाने से तीर्थयात्रा निष्फल होती है।

* पालकी, रिक्शा आदि पर जाने से तीर्थ का आधा फल मिलता है। पैदल चलकर जाने से चौगुने फल की प्राप्ति होती है।

* जिसकी तीर्थों में आस्था नहीं है, जो पापी है, नास्तिक है, संशय करने वाला और तर्कवादी है, वह मनुष्य तीर्थफल के भागी नहीं होते।

* तीर्थक्षेत्र में जाने पर मनुष्य को सदा स्नान, दान, जप आदि करना चाहिए। अन्यथा, वह रोग, द्ररिद्रता मूकता आदि दोषों का भागी होता है।

* अन्य जगह किया हुआ पाप तीर्थों में जाने से नष्ट हो जाता है, पर तीर्थ में किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है।

* जब कोई अपने माता–पिता, भाई या गुरु को फल मिलने के उद्देश्य से तीर्थ में स्नान करता है, तब उसे स्नान के फल का 12वाँ भाग प्राप्त हो जाता है।

* जो दूसरे के धन से तीर्थयात्रा करता है, उसे पुण्य का 16वां अंश प्राप्त होता है और जो दूसरे कार्य के प्रसंग से तीर्थ में जाता है, उसे उसका आधा फल प्राप्त होता है।

***

वृक्ष और उनकी शुभ दिशा

प्रकृति प्रदत्त सभी वृक्ष और पौधे मानव के कल्याण के लिए हैं। पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए पौधों का विशिष्ट महत्व है। विभिन्न रोगों के उपचार में जड़ी–बूटी, वृक्षों की छाल, फल–फूल और पत्तों से निर्मित औषधियों का भी बहुत महत्व है। कुछ पौधों की जड़ों का तंत्र में भी प्रयोग होता है। पर क्या आप जानते हैं कि वास्तुशास्त्र में पेड़– पौधों और उनकी दिशा का महत्व है। आइए जानें कौन सा पौधा अथवा वृक्ष किस दिशा में लगाना चाहिए........।

बरगद : यह एक विराट वृक्ष है। बरगद यानी वटवृक्ष का घर की पूर्व दिशा में होना शुभ माना गया है। इससे व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति होती है। आग्नेय कोण यानी दक्षिणा–पूर्व में होने पर यह पीड़ा और मृत्यु देने वाला है। पश्चिम में राजपीड़ा, स्त्रीनाश व कुलनाश होता है। इसकी छाल, दूध, जटाओं और कोपलों का आयुर्वेद में विभिन्न रोगों लिए प्रयोग किया जाता है।

अनार : अनार एक स्वादिष्ट और पौष्टिक फल है। विटामिनों और खनिजों का भंडार यह फल हृदय रोग में लाभकारी और बलवर्धक है। घर से आग्नेय दिशा में लगाना शुभ माना गया है। बंजर जाति के अनार का वृक्ष घर में नहीं होना चाहिए।

गूलर : यह मध्यम आकार का वृक्ष है। इसका तना मोटा लंबा और कुछ टेढ़ा होता है। इसकी शाखाएँ सीधी ऊपर की ओर बढ़ती हैं। घर से दक्षिण दिशा में इसे शुभ माना गया है। उत्तर दिशा में होने से नेत्र रोग देता है।

जामुन : इसके पौधे सड़क के किनारे और बांग–बगीचों में लगाए जाते हैं घर में नहीं लगाना चाहिए।

कदंब : कदंब का वृक्ष बड़ा होता है। इसके फल नींबू के समान होते हैं। फलों के ऊपर ही छोटे–छोटे सुगंधयुक्त फल लगते हैं। घर से दक्षिण और नैऋत्य के बीच में लगाना शुभ माना गया है।

इमली : इसके वृक्ष बहुत होते हैं। इमली की लकड़ियाँ बहुत मजबूत होती है। घर से नैऋत्य दिशा में इसे शुभ माना जाता है।

पीपल : हिन्दुओं के लिए पीपल पूजनीय वृक्ष है। अग्नि पुराण के अनुसार, घर से पश्चिम में पीपल वृक्ष होना अत्यंत शुभ माना गया है। पूर्व दिशा में होने पर भय और निर्धनता देने वाला व आग्नेय में होने पर पीड़ा व मृत्यु देने वाला है पूर्व से इसकी छाया पड़ने से उस घर में रहने वालों का विकास नहीं होता है।

बेल : बेल के पत्ते शिव पूजा में काम आते हैं। शिवरात्रि को इन पत्तों से शिवलिंग की पूजा करने पर इस वृक्ष का घर के वायव्य में होना शुभ माना गया है।

पाकड़ : यह वृक्ष बड़ा होता है। इसके फल को कैथ कहते हैं। यह बिल्व पत्र के समान होता है। घर से उत्तर दिशा में इसे शुभ माना गया है।

आंवला : आंवला एक मझले आकार का वृक्ष है। अनेक रोगों के उपचार में आंवले का प्रयोग होता है। घर में ईशान में इसका होना शुभ माना गया है।

आम : आम विटामिनों से भरपूर फल है। घर से ईशान और पूर्व के मध्य होने पर शुभ माना गया है। फल देने वाले वृक्ष घर में होने से संतान नाश का भय रहता है। इन्हें घर के बाहर ही लगाना चाहिए।

कटहल : कटहल का वृक्ष बड़ा होता है। घर में नहीं लगाना चाहिए। घर से बाहर ईशान और पूर्व के बीच में होने पर शुभ माना गया है।

तुलसी : तुलसी का पौधा घर के आंगन में होना शुभ माना जाता है। हिन्दु परिवार में इसे श्रद्धा के साथ इसकी पूजा करते हैं। इसकी पूजा करने से भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। तुलसी कड़वी, गरम और कफ नाशक होती है। तुलसी के पत्ते और पत्तों का रस अत्यंत ही गुणकारी होता है। किसी भी प्रकार के काँटे वाले पेड़ पौधे या बड़े वृक्ष घर में नहीं लगाने चाहिए घर की शान्ति और शुभता नष्ट होती है।

***

गणेश साधना

किसी भी शुभ कार्य में सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा होती है, क्योंकि शास्त्रों में उन्हें विघ्नहर्ता और ऋद्धि–सिद्धि का स्वामी कहा गया है। इनके स्मरण, ध्यान और आराधना करने मात्र से कामनाओं की पूर्ति होती है, विघ्नों का विनाश होता है। गणेश जी विद्या के देवता हैं। साधना के समय दूरदर्शिता आ जाए, उचित–अनुचित, कर्तव्य अकर्तव्य की पहचान हो जाए, इसीलिए सभी शुभ कार्यों में गणेश पूजन का विशेष महत्व है। यही वजह है कि प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व 'श्री गणेशाय नमः का उच्चारण कर, निम्न मंत्र को बोला जाता है–

वक्रतुंड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभः।
निर्विघ्नं कुरू मे देव सर्व कार्येषु सर्वदा।।

विघ्नहर्ता श्रीगणेश की जल तत्व की अधिपति कहा गया है, इसलिए उनकी सर्वप्रथम पूजा का विधान है। मनुस्मृति के अनुसार सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले तत्वों में 'जल' का अधिपति देव होने के कारण, गणेशजी ही प्रथम पूज्य के अधिकारी होते हैं। हालांकि प्रथम पूज्य को लेकर विभिन्न पुराणों में कई प्रसंग मिलते हैं। पद्म पुराण के अनुसार, एक दिन व्यास जी के शिष्य महामुनि संजय ने अपने गुरुदेव से उत्सुकता वश प्रश्न किया– हे गुरुदेव! कृपा कर आप मुझे देवताओं के पूजन का सुनिश्चित क्रम बताइए। अर्थात् प्रतिदिन की पूजा में सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिए? व्यासजी ने कहा– नित्य पूजा में विघ्नों को दूर करने गणेशजी की पूजा सर्वप्रथम करनी चाहिए। मैं इसके पीछे की कहानी बताता हूँ, इसे ध्यान से सुनो। एक बार पार्वती देवी को देवताओं ने अमृत से तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक दिया। मोदक देखकर दोनों बालक स्कन्द तथा गणेश माता से मांगने लगे। तब माता ने उन दोनों से कहा कि तुममें से जो धर्माचरण के द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आएगा, उसी को मैं वह मोदक दूंगी। फिर क्या था दोनों अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए निकल पड़े। स्कन्द मयूर पर आरूढ़ होकर सारे तीर्थों का स्नान कर लिया।

इधर गणेशजी माता–पिता की परिक्रमा करके पिताजी के सम्मुख खड़े हो गए। तब पार्वती जी ने कहा– समस्त तीर्थों में किया हुआ

स्नान, सम्पूर्ण देवताओं को किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञों का अनुष्ठान तथा सब प्रकार के व्रत, मंत्र योग और संयम का पालन– ये सभी साधन माता–पिता के पूजन के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकते। गणेश ने हम दोनों (माता–पिता) की पूजा की है, इसलिए गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणों में भी बढ़कर है अतः मोदक का अधिकारी गणेश ही है और यह मोदक में गणेश को ही अर्पण करती हूँ। तत्पश्चात् महादेवजी बोले– माता–पिता की भक्ति के कारण ही इसकी प्रत्येक में सबसे पहले पूजा होगी। उसके बाद से ही गणेश जी को पूजा जाने लगा। किंवदंतियां कुछ भी हो लेकिन हिन्दू धर्म में गणेश को गणों का देव माना गया है और इसी मान्यता के साथ इनकी प्रथम पूजा होती है। ताकि किसी भी कार्य में कोई बाधा नहीं आए।

किससे प्रसन्न होते हैं गणेश– गणेश जी को तुलसी छोड़कर सभी पत्र–पुष्प प्रिय है। सभी अनिषिद्ध पत्र–पुष्प इन पर चढ़ाए जा सकते हैं। साथ ही गणपति को दूर्वा अधिक प्रिय है। सफेद या हरी दूवी अवश्य चढ़ानी चाहिए। दुर्वा की फुनगी में तीन या पाँच पत्ती होना अति शुभ माना जाता है। वहीं तीन या पांच गांठ सवाली दूर्वा (दूब–घास) अर्पण करने से गणेश जी शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और भक्तों को मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। इसके अलावा विघ्नहर्ता गणेश जी को शम्मी–वृक्ष का पता भी पसन्द है। शास्त्रों के अनुसार इसे विनायक को पूजने में मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त कर सकता है। नैवेद्य में गणेशजी को मोदक सबसे प्रिय है। पुराणों में मोदक को महाबुद्धि का प्रतीक बताया गया है।

किस रूप में किसकी पूजा- भगवान शिव पृथ्वी तत्व के अधिपति माने गए हैं इसलिए उनकी पार्थिव–पूजा का विधान है। वहीं भगवान विष्णु आकाश तत्व के अधिपति हैं, उनकी शब्दों द्वारा स्तुति का विधान है जबकि शक्ति को अग्नि तत्व का अधिपति माना गया है इसलिए भगवती की पूजा हो अग्निकंड में हवनादि के द्वारा पूजा का विधान है। गणपति को जल तत्व का अधिपति माना गया है। चूंकि पंच तत्वों में जल की उत्पत्ति सबसे पहले हुई है इसलिए प्रथम पूजा के रूप में विनायक की पूजा पहले होती है।

सौन्दर्य और सम्पत्ति की देवी भगवती महालक्ष्मी

प्रज्ञा की देवी हैं महासरस्वती और शक्ति की अधिष्ठात्री हैं, भगवती महाकाली। परन्तु प्रकृति का एक और भी सूक्ष्म रहस्य है, जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण ही रह जाती है। माहेश्वरी इतनी प्रशान्त, महीयसी और दूर लगती हैं कि पार्थिव शरीर की लघुता उस तक पहुँचने या उसे अपनाने में अपने को असमर्थ पाती है। महाकाली इतनी भयानक और बेगिनी है कि दुर्बल पार्थिव प्रकृति के लिए उसको सहना कठिन होता है। पर सभी पार्थिव सत्ताएं अबाध आनन्द और कामना लेकर सहज ही महालक्ष्मी की ओर उन्मुख होती हैं। क्योंकि वह भगवान के माधुर्य का जादू फेंकती हैं। उसके सान्निध्य में सुख–सागर लहराता है। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश प्रर्किण होता है उसी प्रकार महालक्ष्मी के भीतर से शोभा, सम्मोहन और मार्दब प्रवाहित होते हैं। जहां भी वह अपनी अद्भुत दृष्टि डालती हैं या अपनी मधुर मुस्कान का सौन्दर्य बिखेर देती हैं, वहां आत्माकीलित और बन्दिनी हो जाती हैं और अथाह आनन्द–सागर लहरा जाता है।

ऋग्वेद में 'श्री' शब्द आत्मिक तेज और भौतिक प्रकाश की अग्रदूत भगवती उषा के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'श्री' शब्द जिन–जिन अर्थों का वाचक है उन अर्थों में सौन्दर्य की गणना आज भी होती है। 'श्री' का स्वतंत्र देवता के रूप में मूल ऋग्वेद में कहीं भी वर्णन नहीं मिलता है। वहां श्री का प्रयोग सब जगह तेजस् तत्व–सूचक भाववाचक संज्ञा के रूप में अथवा अन्य विशेषणों के रूप में हुआ है। यही बात 'लक्ष्मी' शब्द के विषय में है। सम्पत्ति के अर्थ में भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग देखने मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर जामाता को 'अश्रीकर्ता' अर्थात् धन को हरने वाला कहा गया है। ऋग्वेद में सामान्य संज्ञा के रूप में एक स्थान पर लक्ष्मी शब्द का प्रयोग हुआ है। वहां कहा गया है कि जो धीरपुरुष विवेकपूर्वक, अच्छी तरह विचारकर शब्दों का प्रयोग करता है उसकी वाणी में लक्ष्मी का वास होता है। 'भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधिवाधि।'

श्री और लक्ष्मी शब्द के इन प्रयोगों में उन शब्दों के अर्थ में सम्पत्ति का भाव भी संलग्न होता है, परन्तु श्री अथवा लक्ष्मी को धन–सम्पत्ति की अधिष्ठाती, केवल धन–सम्पत्ति में ही रहनेवाली नहीं माना जाता है।

ऋग्वेद में धन सम्पत्ति पर किसी एक देव का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया गया है। पूषा, वरुण, अश्विनीकुमार, इन्द्र और वैश्वानर–अग्नि इन सबों को ऐश्वर्य एवं धन– सुवर्ण इत्यादि का दाता कहा गया है। विष्णु पत्नी के रूप में श्री अथवा लक्ष्मी का उल्लेख केवल ऋग्वेद के परिविशष्ट में आये श्री सूक्त के छब्बीसवें मंत्र में मिलता है। लक्ष्मी की गायत्री का यह मंत्र इस प्रकार है :–

महालक्ष्मी च विद्महे। विष्णुपत्नीं च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।

यजुर्वेद में 'श्री' और लक्ष्मी दोनों को दो शक्तियाँ बताया गया है और उन्हें एक ही परम पुरुष की पत्नियों के रूप में वर्णित किया गया है–श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते सपत्न्यौ। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि 'श्री' का अर्थ तेज और लक्ष्मी का अर्थ सम्पदा हो गया था और परमपुरुष को दोनों का स्वामी मान लिया गया।

अथर्ववेद में श्री विष्णुपत्नी के रूप में है जिसका स्वरूप भूमि से अधिक मिलता है। शतपथ में कहा गया है कि जिन देवताओं में श्री बसती हैं, वे ज्योतिर्मय होते हैं। इस श्री या लक्ष्मी का वैदिकस्वरूप आधिभौतिक है। श्री हस्तिनाद से प्रबुद्ध होती है और सुवर्ण घट से गजेन्द्र उसका अभिषेक करता है। 'सरोवर में कमलों से घिरी हुई कमल वन्दना, कमल के सदृश नेत्रों वाली, कमल से ही उत्पन्न, विष्णुप्रिया महालक्ष्मी अपने चरणकमलहृदय स्थल में स्थित करें।

इस प्रकार लक्ष्मी सौन्दर्य और समृद्धि की प्रतीक हैं। गजेन्द्र मेघों का प्रतीक है। पृथ्वी की श्री मेघों के जल पर ही निर्भर करती है। अतः उर्वरता के प्रतीक कमल से उत्पन्न लक्ष्मी पर गजेन्द्र उसी श्री की वर्षा करते वर्णन किये गये है। कमल, उनका आसन शील का द्योतक है। अतः श्री श्रीलक्ष्मी सौन्दर्य समृद्धि के साथ शील की भी अधिष्ठात्री है।

श्री अथवा लक्ष्मी का यह अर्थ वेदात्तर काल के आर्य धर्म में और संस्कृत भाषा में आज भी सजीव है। जो श्रीप्रद है वह श्री अथवा श्लील है। उसके विपरीत जो है वह अश्री (अथवा अश्लील है) समस्त शुभ अथवा मंगल का प्रतीक है 'श्री' है और 'श्री' चार पुरुषार्थों में से 'अर्थ' का भी प्रतीक है। श्री शब्द रमणीयता का द्योतक है और रमणीयता, रति और काम ये एक ही श्रृंखला की कड़ियाँ हे। इसके अतिरिक्त संसार की

समस्त कामनाओं से विरक्त श्रेया साधक ब्रह्मनिष्ठों के आगे भी यह 'श्री' शब्द का प्रयोग होता है। इससे 'श्री' शब्द ऋतभरा (सत्य का धारण करनेवाली) प्रज्ञा का भी द्योतक है। यह प्रज्ञा निःश्रेयम् (परमकल्याण) का मूल है।

भारतीय स्थापत्य कला में– श्री लक्ष्मी की अभिव्यक्ति भारतीय स्थापत्यकला में भी मिलती है। कमल से संयुक्त उनकी आकृतियाँ तीन रूपों में मिलती है। (1) पद्म हस्ता–जिसमें ऊपर को उठे हुए दाहिने हाथ में कमलाधारण किये हुए, (2) पद्मासना–खिले हुए कमलदल पर बैठी या खड़ी (3) पद्मवासिनी कमलदल में खड़ी या कमलनाल और पत्रों से घिरी। कहीं–कहीं हाथों में खिले हुए कमल लिये हुए भी मिलती है।

प्राचीन वेदकाल से लेकर आज तक के इतिहास के हम देख सकते हैं कि प्रारम्भ में श्री केवल सौन्दर्य भावना का द्योतक थी, आगे चलकर उसी भावना ने मूर्त रूप धारण कर लिया। फिर, श्री और लक्ष्मी के व्यक्तित्वों का एकीकरण हुआ–दोनों एक हो गयीं। यह उस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात है। इस देश में मातृपूजा सिन्धु सभ्यता के काल से ही प्रचलित थी जिसके साथ सौन्दर्य प्रतीक 'श्री' का सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया। इस प्रकार वैदिक और अवैदिक भावनाओं के एकीकरण से मूर्त–रूप की कल्पना साकार हुई, जो भारतीय धर्म, संस्कृति और कला में आज भी विद्यमान है और यह सौन्दर्य सौभाग्य, सम्पत्ति और समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी के रूप में पूजनीया बनीं जिनका अनुग्रह पाने के लिए सभी लालायित रहते है।

***

ग्रंथ-सार

- भारतीय अध्यात्म का मुख्य विषय है- योग और तंत्र। इस विश्व ब्रह्मण्ड में दो सत्ताएँ हैं- आत्म परक सत्ता और वस्तु परक सत्ता। पहली सत्ता आतंरिक है और दूसरी सत्ता बाह्म।

- तंत्र साधना का मतलब है 'शक्ति साधना' यानि हजारों-लाखों वोल्ट के बिजली के नंगे तार का छूना। शक्ति का दूसरा नाम है विनाश। उसे अनुकूल और रक्षा व निर्माण में प्रयुक्त करने का नाम है तंत्र।

- वेद का जो आध्यात्मिक ज्ञान है उसे कर्म में आयत्त करने की क्रिया का नाम तंत्र है। तंत्र का एक मात्र उद्देश्य है अद्वैत लाभ यानि दो का एक दूसरे में लीन हो जाना।

- हिमालय में रमणीक घाटी है। बड़ा ही सुन्दर स्थान है वह जो यक्षों का उपनिवेश है। "क्या तुम मेने साथ चलकर मेरे उपनिवेश को देखना स्वीकार करोगे?" मंद-मंद मुस्कुराती हुई पूछी उस यक्ष बाला ने।



अरुण कुमार शर्मा

की अन्य कृत्तियाँ

मारणपात्र
तीसरा नेत्र (प्रथम खण्ड)
तीसरा नेत्र (द्वितीय खण्ड)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
परलोक विज्ञान
कारणपात्र
कुण्डलिनी शक्ति
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
वक्रेश्वर की भैरवी
वह रहस्यमय संन्यासी
रहस्य
आवाहन
आकाशचारिणी
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी
मृतात्माओं से सम्पर्क
योग तांत्रिक साधना प्रसंग
परलोक के खुलते रहस्य

आस्था प्रकाशन
बी. 5/23 अवधगर्वी हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी-0221001 (उ.प्र.)
दूरभाष : (0542) 3297913, 9336915807
www.arun kumar sharms


Rs. 200.00
ISBN : 978-81-906796-6-4